प्राक्कथन

बोधगया में बोधि प्राप्ति के बाद सम्यक संबुद्ध गौतमबुद्ध ने पैंतालीस वर्षों तक गांव, निगम, नगर, जनपद में चारिका करते हुए भिन्न-भिन्न लोगों से अकेले तथा समूह में मिलकर दुःख को दूर करने तथा सुखमय और शांतिमय जीवन जीने की कला सिखाने के लिए जो उपदेश दिये उनका वर्गीकरण बाद में तीन पिटकों के रूप में किया गया। ये तीन पिटक हैं –विनय पिटक, सुत्त पिटक तथा अभिधम्म पिटक। विनय पिटक में भिक्षु तथा भिक्षुणी जीवन को सम्यक रूप से शीलपूर्वक बिताने के लिए तथा संघ को सुचारु रूप से चलाने के लिए बनाये गये नियम तथा समय-समय पर उनमें किये गये परिवर्तन संगृहीत हैं। इसलिए विनय पिटक को 'आणा (आज्ञा) देसना' कहते हैं। सुत्तपिटक को 'वोहार (व्यवहार) देसना' इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसमें प्रमुखतः बुद्ध के और उनके प्रधान शिष्यों के जीवन में व्यवहार में लाये जाने वाले उपदेशों का संग्रह है। इन उपदेशों में जो सुत्त (सु+उक्त) कहे जाते हैं उन्हें सरल शैली में उपयुक्त उपमाओं तथा रूपकों के माध्यम से आध्यात्मिक जीवन जीने के लिए बताया गया है। साथ ही ऐसा जीवन बिताने में कौन-कौन-सी बाधाएं आ सकती हैं, उन्हें कैसे दूर किया जा सकता है –इन बातों पर प्रभूत प्रकाश डाला गया है। सिर्फ आध्यात्मिक जीवन के बारे में ही नहीं, बल्कि भौतिक जीवन को भी कैसे अच्छी तरह जीया जा सकता है तथा सामाजिक जीवन में शांति और समरसता कैसे लायी जा सकती है –इन सभी बातों पर भी प्रकाश डाला गया है। अभिधम्म पिटक में परमार्थ सत्य से संबंधित बातें हैं इसलिए इसे 'परमत्थ देसना' कहते हैं। अभिधर्म के अनुसार परमार्थ चार हैं –चित्त, चैतसिक, रूप तथा निर्वाण। इस पिटक में इन्हीं परमार्थों का विस्तार से वर्णन है।

सुत्तपिटक पांच निकायों में विभक्त है –दीघ निकाय, मज्झिम निकाय, संयुत्त निकाय, अंगुत्तर निकाय और खुद्दक निकाय।

दीघ निकाय में बड़े आकार के चौंतीस सुत्त, मज्झिम निकाय में मध्यम आकार के एक सौ बावन सुत्त संगृहीत हैं। संयुत्त निकाय में सात हजार सात सौ बासठ सुत्त हैं और इसे संयुत्त इसलिए कहा जाता है कि इसके पहले भाग में गाथा और गद्य दोनों मिले हुए हैं। अंगुत्तर निकाय में नौ हजार पांच सौ सत्तावन सुत्त हैं जो ग्यारह निपातों में संगृहीत हैं। खुद्दक निकाय में छोटे-छोटे उन्नीस प्रकरणों का संग्रह है जैसे खुद्दक पाठ, धम्मपद, उदान, इतिवुत्तक, सुत्तनिपात आदि।

इन निकायों के सुत्तों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि इनमें अभिधर्म के तत्त्व हैं। दीघ निकाय के सामञ्ञफलसुत्त में चार रूपावचर ध्यानों का, पांच ध्यानांगों

का, पांच नीवरणों का उल्लेख है तो मज्झिम निकाय के सम्मादिट्ठि सुत्त में कुशल-अकुशलधर्मों का, उनके मूलों - जैसे अलोभ, अद्वेष, अमोह तथा लोभ, द्वेष, मोह का, अष्टांगिक मार्ग के आठ अंगों का, प्रतीत्यसमुत्पाद के बारह निदानों का तथा चार आर्य सत्यों का उल्लेख है। उसी तरह संयुत्त निकाय तथा खुद्दक निकाय के उदान, इतिवुत्तक, धम्मपद आदि प्रकरणों में भी अभिधर्म के तत्त्व बिखरे पड़े हैं।

अंगुत्तर निकाय के एकक निपात से लेकर एकादशक निपात में एक से लेकर उत्तरोत्तर बढ़ते क्रम से ग्यारह धर्मों के संबंध में भगवान बुद्ध के उपदेश संगृहीत हैं। वह काम दीघ निकाय के 'दसुत्तर' और 'संगीतिपरियाय' सुत्तों में तो किया ही गया है, अंगुत्तर निकाय में और भी विस्तार से किया गया है। इसके निपातों में एकक से लेकर एकादशक निपात में अंकोत्तर वृद्धि होती चली गयी है और एक से, दो से, तीन से... इस तरह क्रमशः ग्यारह धर्मों के संबंध में बुद्ध के उपदेश पाये जाते हैं – इसलिए इसे अंगुत्तर निकाय कहते हैं जो सार्थक है। एकक निपात में ही हम देखते हैं कि यहां पांच इंद्रियों तथा उनके पांच विषय जैसे रूप, शब्द, गंध, रस और स्प्रष्टव्य के बारे में कहा गया है –

'भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरे रूप को, शब्द को, गंध को, रस को, स्पर्श को नहीं जानता जो पुरुष के चित्त को इस प्रकार बांध लेता है जैसे, भिक्षुओ, स्त्री का रूप, शब्द, गंध, रस और स्पर्श।'

'भिक्षुओ, मैं और कोई ऐसा दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न कामेच्छा उत्पन्न होती है अथवा उत्पन्न कामेच्छा अत्यधिक विपुल होती है जैसे, भिक्षुओ, यह शुभ निमित्त (राग पैदा करने वाला निमित्त)।'

एक धर्म चित्त की भावना करने के क्या लाभ हैं, इसका दमन न करने से क्या हानि होती है एक धर्म प्रज्ञा की परिहानि धन की परिहानि से अधिक चिंतनीय है; कायिक, वाचिक तथा मानसिक कर्म की शुद्धता से कभी भी अनिष्ट व अप्रिय विपाक के उत्पन्न होने की संभावना नहीं है, दस अनुस्मृतियों जैसे बुद्धानुस्मृति, धर्मानुस्मृति आदि की भावना करने से विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संबोधि तथा निर्वाण की प्राप्ति होती है; मिथ्या दृष्टि से क्या हानि है, सम्यक दृष्टि के क्या लाभ हैं; सतिपट्ठान (स्मृति उपस्थान) की चारों अनुपश्यनाओं जैसे कायानुपश्यना, वेदनानुपश्यना, चित्तानुपश्यना और धर्मानुपश्यना की संप्रज्ञ तथा स्मृतिमान होकर तथा राग और द्वेष का विनयन करके कैसे भावना की जाती है, कायगत स्मृति से अमृत (निर्वाण) की प्राप्ति कैसे होती है आदि बातों (धर्मों) का यहां उल्लेख है।

द्विक निपात में दो कृष्ण धर्मों (अहिरिक तथा अनोत्तप्प) और दो शुक्ल धर्मों (हिरि तथा ओत्तप्प) का उल्लेख है। दो धर्म (शमथ तथा विपश्यना) विद्याभागीय हैं। शमथ की भावना करने से राग का प्रहाण होता है और विपश्यना की भावना करने से अविद्या का प्रहाण होता है जिन्हें, क्रमशः, चित्त विमुक्ति और प्रज्ञा विमुक्ति कहते

हैं। इसी निपात के सुखवर्ग में भिन्न-भिन्न प्रकार के सुखों का उल्लेख है तथा यहां यह भी कहा गया है कि प्रव्रज्या सुख, नैष्क्रम्य सुख तथा अनाश्रव सुख; गृही सुख, काम सुख तथा साश्रव सुख से श्रेष्ठ है। दो प्रकार के मूर्ख, दो प्रकार के पंडित, दो प्रकार के बल, दो प्रकार के मनुष्य तथा दो प्रकार की परिषदों का भी उल्लेख यहां है। धर्मवर्ग में दो-दो धर्म जैसे चित्त विमुक्ति तथा प्रज्ञा विमुक्ति, नाम तथा रूप, हिरि तथा ओत्तप्प आदि का भी उल्लेख है। दानवर्ग में दान, यज्ञ, त्याग, परित्याग, भोग, संभोग आदि के दो-दो भेद बताये गये हैं – जिनमें एक भौतिक है और दूसरा आध्यात्मिक।

त्रिक निपात में तीन प्रकार के कर्म जैसे कायिक, वाचिक तथा मानसिक; तीन प्रकार के पुद्गल जैसे शून्याश, आशावान तथा पूर्णाश; कायसाक्षी, दृष्टिप्राप्त तथा श्रद्धाविमुक्त; अवकुब्जप्रज्ञ, उत्संगप्रज्ञ तथा पृथुप्रज्ञ; तीन प्रकार के संस्कार जैसे कायिक, वाचिक तथा मानसिक; तीन प्रकार के अकुशलमूल जैसे लोभ, द्वेष तथा मोह; तीन प्रकार के कुशलमूल जैसे अलोभ, अद्वेष तथा अमोह; तीन प्रकार के देवदूत जैसे जरा, व्याधि तथा मृत्यु; तीन प्रकार के मद जैसे यौवन मद, आरोग्य मद तथा जीवित मद आदि धर्मों का उल्लेख है।

इसी निपात के महावर्ग में (विभिन्नवाद सुत्त में) भगवान ने कहा है कि तैर्थिकों के मत में अकर्मण्यतावाद एक पारंपरिक अकर्मण्यतावाद है। उनके अनुसार मनुष्य जो भी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है वह या तो पूर्वकर्मों का फल है या ईश्वर निर्मित है या बिना कारण के उत्पन्न है। इन मतों को सारभाव से ग्रहण करनेवालों में 'न तो कामना ही जगती है और न वे प्रयत्न करते हैं और न इस काम को करने का या उस काम को न करने का उत्साह ही होता है। तब क्रियावादिता या अक्रियावादिता की वास्तव में आवश्यकता ही नहीं दिखाई पड़ती।' इसलिए उन्हें 'श्रमण' कैसे कहा जाय? इसके विपरीत भगवान बुद्ध के उपदेशों में प्रयत्न का महत्त्व है और सुधार का अवकाश भी, क्योंकि उन्होंने जो उपदेश दिया उसका सार यह है कि 'छः धातुओं के होने से गर्भ होता है, गर्भ होने से नाम-रूप, नाम-रूप होने से छः आयतन, छः आयतन होने से स्पर्श तथा स्पर्श होने से वेदना। जिसे वेदना की अनुभूति होती है उसी के संबंध में, भिक्षुओ, मैं 'यह दुःख है' ऐसा प्रज्ञापन करता हूं... 'यह दुःख निरोध की ओर ले जाने वाली प्रतिपदा है' ऐसा प्रज्ञापन करता हूं।

इसी निपात में प्रसिद्ध केसमुत्तिसुत्त है जिसे मानव के स्वतंत्र चिंतन का महान घोषणापत्र (Magna Carta) माना जाता है। इससे भगवान बुद्ध का बुद्धिवादी दृष्टिकोण स्पष्ट परिलक्षित होता है। उन्होंने कालामों से कहा कि अपने अनुभव से जो अच्छा लगे उसे मानो तथा उसके अनुसार आचरण करो।

'हे कालामो! आओ, तुम किसी बात को केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह अनुश्रुत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात परंपरागत ... है,

केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह हमारे धर्मग्रंथ के अनुकूल है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह तर्कसम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह अनुमान-सम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इसके कारणों की सावधानीपूर्वक परीक्षा कर ली गयी है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इस पर हमने विचार कर इसका अनुमोदन किया है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहने वाले का व्यक्तित्व भव्य (आकर्षक) है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है। हे कालामो! जब तुम स्वानुभव से अपने आप ही यह जानो कि ये बातें अकुशल हैं, ये बातें सदोष हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित हैं, इन बातों पर चलने से अहित होता है, दुःख होता है – तब हे कालामो! तुम उन बातों को छोड़ दो।'

यहां भगवान ने यह तो कहा ही है कि कितनी ही सुदीर्घ परंपरा से कोई बात क्यों न आ रही हो, कितने ही लोग उसके बारे में कहने वाले क्यों न हों, यहां तक कि धर्मग्रंथ में भी यदि वह बात क्यों न हो, तर्क-सम्मत, अनुमान-सम्मत, परीक्षित, अनुमोदित या आकर्षक व्यक्ति या पूज्य आचार्य द्वारा उपदिष्ट क्यों न हो उसे तब तक नहीं मानो जब तक अपने अनुभव से न जान लो कि यह कुशल है, दोषरहित है और अहित करने वाला तथा दुःख लाने वाला नहीं है। आजकल जब धर्माचार्य इस बात पर जोर देते हैं कि वे जो कहते हैं उसे बिना प्रश्न किये तथा हमारे पुराने शास्त्रों में जो लिखा है उसे भी बिना प्रश्न किये मानना है तो वे अंधश्रद्धा या अंधभक्ति को प्रश्रय देते हैं। भगवान का कालामों को दिया गया यह उपदेश विचारों के निबिड़तमाकाश में एक ऐसी विद्युत-रेखा है जो सर्वदा प्रकाश देती ही रहेगी।

'अन्यतैर्थिक सुत्त' में भगवान ने राग, द्वेष तथा मोह में अंतर दिखाते हुए एक अर्थ में द्वेष को राग से कम खतरनाक बताया है क्योंकि उससे मुक्ति सहज होती है – 'आयुष्मानो, राग में अल्प दोष है किंतु उससे मुक्ति सहज नहीं, द्वेष में महान दोष है किंतु उससे मुक्ति सहज है; मोह में महान दोष है और उससे भी मुक्ति सहज नहीं।' विपश्यना करते समय इस कथन की सत्यता स्पष्ट हो जाती है। दुःखद संवेदनाओं का अनुभव करते समय मनुष्य में स्वाभाविक रूप से जागरूकता और संप्रज्ञान अधिक रहता है परंतु सुखद संवेदनाओं का अनुभव करते समय उसमें आसक्त हो जाने का खतरा अधिक रहता है।

'उपोसथ सुत्त' में न केवल तीन प्रकार के उपोसथों जैसे गोपाल, निर्ग्रन्थ तथा आर्य उपोसथ का विस्तार से वर्णन है बल्कि भगवान द्वारा प्रतिपादित अष्टांग उपोसथ का भी वर्णन है। यहां भगवान ने जोर देकर कहा है कि इससे प्राप्त सुख की तुलना में कोई भी भौतिक ऐश्वर्य या मानुषी ऐश्वर्य या सुख इस सुख की सोलहवीं कला के भी बराबर नहीं है। अष्टांग उपोसथ से दिव्य सुख मिलता है।

इसी सुत्त में भगवान ने विशाखा को कहा है कि जैसे मैले बदन को शंख से, चूने से, पानी से तथा अपने प्रयत्न से साफ किया जाता है, वैसे ही अपने मैले चित्त को उपाय से जैसे बुद्ध, धर्म तथा संघ का अनुस्मरण कर, अखंड-शील, अखंड-समाधि, तथा अखंड-प्रज्ञा का अनुस्मरण कर परिशुद्ध किया जाता है और राग-द्वेष आदि जो विकार हैं उन्हें दूर किया जाता है।

'सुगंधि सुत्त' में दिखाया गया है कि तीन प्रकार की सुगंधियां जैसे मूल सुगंधि, सार सुगंधि तथा पुष्प सुगंधि वायु के अनुकूल ही जाती है, प्रतिकूल नहीं, पर उस स्त्री या पुरुष की, जो 'बुद्ध की शरण गये होते हैं, धर्म की शरण गये होते हैं, संघ की शरण गये होते हैं, प्राणि-हिंसा से विरत रहते हैं..., दान का संविभाग करते हैं', सुगंधि वायु के अनुकूल भी जाती है, प्रतिकूल भी और अनुकूल-प्रतिकूल भी जाती है।

अचेलक वर्ग में तीन प्रकार के मार्ग कहे गये हैं – शिथिल (आगाळ्ह), कठोर (निज्झाम), और मध्यम। शिथिल मार्ग 'कामेसुकाम-सुखल्लिकानुयोग' है और कठोर मार्ग 'अत्तकिलमथानुयोग'। इसके अंतर्गत जिन कठोर तपश्चर्याओं का वर्णन है वे बुद्ध के समय समाज में अवश्य प्रचलित रही होंगी।

''यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई नग्न होता है, शिष्टाचार शून्य, हाथ चाटने वाला, 'भदंत आइये' कहने पर नहीं आने वाला, 'भदंत खड़े रहें' कहने पर खड़ा न रहने वाला, लाया हुआ न खाने वाला, उद्देश्य से बनाया हुआ न खाने वाला..., न गर्भिणी का दिया लेता है, न पुरुष के पास गयी हुई का दिया लेता है..., दिन में एक बार खाने वाला, दो दिन में एक बार खाने वाला... सात दिन में एक बार खाने वाला... शाक... श्यामाक... नीवार... दद्दुल... हट... कणाज... आचाम... तिनका... गोबर... फल-मूल खाने वाला होता है..., सन के कपड़े... सन-मिश्रित कपड़े... शव-वस्त्र... अजिन... कुश का बना वस्त्र पहनता है, केश-दाढ़ी का लुंचन करने वाला, निरंतर खड़ा रहने वाला, उकडूं बैठकर प्रयत्न करने वाला, कांटों की शय्या पर सोने वाला... होता है।''

इसी निपात के 'वेनागपुर सुत्त' में भगवान ने चार ध्यानों तथा तीन विहारों (दिव्य, ब्रह्म तथा आर्य) के बारे में वहां के ब्राह्मणों को बताया है।

यहां भगवान ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कई प्रकार के पुद्गल बताये हैं। 'समिद्ध सुत्त' में कायसाक्षी, दृष्टि-प्राप्त तथा श्रद्धा-विमुक्त; 'गूथभाणीसुत्त' में गूथभाषी, पुष्पभाषी, तथा मधुभाषी; 'अंध सुत्त' में अंधा, एक चक्षु वाला तथा दो चक्षु वाला; 'अवकुज्ज सुत्त' में अवकुब्ज प्रज्ञ, उत्संग प्रज्ञ तथा पृथु प्रज्ञ और 'लेख सुत्त' में पाषाण लेखूपमो (पाषाण पर खिंची रेखा के समान), पथवी लेखूपमो (पृथ्वी पर खिंची रेखा के समान), तथा उदक लेखूपमो (पानी पर खिंची रेखा के समान) पुद्गल। इन सभी प्रकार के पुद्गलों का विस्तार से वर्णन अभिधर्म पिटक की पुस्तक 'पुग्गल पञ्ञत्ति' में है।

अंगुत्तर निकायके इन निपातों का इसलिए भी महत्त्व है कि यहां कुछ ऐसी भी बातें हैं जो आधुनिक युग में बहुत ही प्रासंगिक हैं। आजकल राजनेताओं और अपराधियों में सांठ-गांठ बढ़ गयी है। राजनीति का अपराधीकरण हो गया है और अपराधी राजनीति करने लगे हैं जिसका बड़ा कुप्रभाव जन-जीवन पर पड़ रहा है। आजकल लोगों के समक्ष यह ज्वलंत विषय बन गया है कि इसमें कैसे सुधार लाया जाय। 'महाचोर सुत्त' इस दृष्टिकोण से बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इसमें दिखाया गया है कि जो चोर राजा या राजा के महामात्यों का आश्रित होता है वह निर्भीक होकर चोरी करता है। उसे भय नहीं होता। पकड़ा जाने पर वह आश्वस्त रहता है कि उसके बचाव में राजा या राजा के महामात्य अवश्य कुछ कहेंगे।

अंगुत्तर निकाय में बहुत-सी ऐसी बातें जो उस समय के सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक जीवन पर प्रकाश डालती हैं और वे बातें जो आध्यात्मिक अभ्युत्थान के लिए आवश्यक हैं – सर्वत्र भरी पड़ी हैं।

इस अनुवाद के लिए विपश्यना विशोधन विन्यास, धम्मगिरि से प्रकाशित अंगुत्तर निकाय पालि को तथा इसे हिंदी पाठकों के लिए बोधगम्य बनाने के लिए (दिवंगत) भदंत आनंद कौसल्यायनजी के अंगुत्तर निकाय के अनुवाद को आधार बनाया गया है। इस बात पर कुछ मुद्दे प्रेषित हैं...

(१) अंगुत्तर निकाय का सर्वप्रथम हिंदी अनुवाद भदंत आनंद कौसल्यायनजी ने किया। हम उनके अत्यंत आभारी हैं जिन्होंने यह अनुवाद उस समय किया जब तिपिटक देवनागरी लिपि में प्राप्य नहीं थे तथा लोग पालि भाषा से परिचित होने की बात तो दूर रही, इसका नाम भी मुश्किल से जानते थे। किसी भी तरह के काम करने वाले पुरोगामियों को अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करने वालों को तो और भी क्योंकि अनुवाद कठिन कार्य है। एक भाषा की वाक्य संरचना, उसके मुहावरे तथा उसकी शैली दूसरी भाषा से भिन्न होती है। पालि भाषा तथा बौद्ध वाङ्मय से हिंदी पाठकों को परिचित कराने में भिक्षु-त्रयी (राहुल जी, आनंद जी तथा काश्यपजी) का बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान है।

जहां तक पालि भाषा का प्रश्न है उससे हिंदी में अनुवाद करना कई दृष्टियों से कठिन कार्य है। एक तो यह कि पालि त्रिपिटक में जो बुद्धवचन है उसमें कई ऐसे पारिभाषिक शब्द हैं जिनका समानार्थक हिंदी में नहीं मिलता। अगर ध्यान से देखा जाय तो सुत्तपिटक में अभिधर्म के तत्त्व भरे पड़े हैं और अभिधर्म मनोनैतिक तथा मनोवैज्ञानिक अध्ययन है रूप और नाम का अर्थात जिसमें पारिभाषिक शब्दों का बाहुल्य है। इसलिए सुत्तपिटक भी वैसे शब्दों से भरे पड़े हैं जो पारिभाषिक कहे जा सकते हैं। जैसे कि पहले भी सूचित किया है, अंगुत्तर निकाय में भी ऐसे बहुत सारे शब्द हैं।

(२) भदंत आनंद कौसल्यायन जी का अंगुत्तर निकाय का हिंदी अनुवाद अनुवाद के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण मील का पत्थर है। फिर भी कई दृष्टियों से इसमें सुधार की अपेक्षा थी ताकि हिंदी के पाठकों को बुद्ध-वचन समझने में कठिनाई न हो। भदंत जी के समय में विपश्यना ध्यान की जीवंत परंपरा भारत में विद्यमान न होने से ध्यानविधि के पारिभाषिक शब्दों का सही अर्थ जानना मुश्किल रहा जो कि अब संभव है।

इस अनुवाद में जिस तरह के सुधार किये गये हैं, उनके कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं।

आधुनिक हिंदी के अनुरूप बनाने के लिए जहां भदंत जी ने 'येन सावत्थियं तेन उपसङ्कमि' का अनुवाद 'जहां श्रावस्ती थी वहां गये' तथा 'येन भगवा तेन उपसङ्कमि' का अनुवाद 'जहां भगवान थे, वहां गये' किया था, उनके स्थान पर क्रमशः 'श्रावस्ती गये' और 'भगवान के पास गये' यह अनुवाद किया गया है। 'जहां भगवान थे वहां गये' –यह तो कुछ दूर तक ठीक भी लगता है क्योंकि भगवान एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते ही रहते थे, पर 'स्थान' के बारे में ऐसा कहना ठीक नहीं लगता। 'जहां श्रावस्ती थी वहां गये' से ध्वनित होता है कि श्रावस्ती भी भगवान बुद्ध की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान जाती रहती थी। अंग्रेजी में इन वाक्यांशों का अनुवाद –'वह श्रावस्ती गये' तथा 'वह भगवान के पास गये' से किया गया है जो आधुनिक हिंदी के अनुरूप है। 'येन सावत्थियं तेन उपसङ्कमि' पालि की एक शैली है। इसका अक्षरशः अनुवाद आधुनिक हिंदी के अनुरूप नहीं होगा। दूसरे तरह के सुधार, कुछ शब्दों से, विशेषकर पारिभाषिक शब्दों से संबंधित हैं। जैसे 'समनुपस्सामि, अयोनिसो मनसिकारो, पटिघनिमित्तं, ब्यापादो, पजानाति, सम्पजञ्ञं, रत्तञ्ञूनं, अप्पटिभाणता, दिट्ठधम्मिको, चेतोविमुत्ति, पञ्ञाविमुत्ति, उपधिसुखं, निरुपधिसुखं, अक्खातं तथा सन्थारा आदि। पाठकों की सुविधा के लिए इनमें से कुछेक को पादटिप्पणियों में स्पष्ट किया गया है।

इनके अतिरिक्त कुछ वाक्य खण्डों के अर्थों पर भी सम्यक विचार किया गया है –जैसे 'महतो चक्खुस्स पातुभावो होति', 'धातानं धम्मानं अत्थं उपपरिक्खन्ति', 'काये कायानुपस्सी विहरतिं आदि।

कहीं पर पालि में निहित भाव के लिए हिंदी का नया शब्द गढ़ा गया है जैसे पालि 'निरासो' के लिए हिंदी 'शून्याश'।

(३) पालि के कुछ शब्द हैं जिनका संस्कृत रूप 'बुद्धिस्ट हायब्रिड संस्कृत कोश' में दिया गया है और जो उन्हीं अर्थों में प्रयोग किये गये हैं जिनमें पालि के शब्दों का प्रयोग हुआ है। वैसे संस्कृत रूप को रख लिया गया है ताकि हिंदी भाषा समृद्ध हो सके – जैसे प्रग्रह (पा. पग्गह), प्रदास (पा. पलास), कौकृत्य(पा. कुक्कुच्च),व्यक्त (पा. व्यत्त), प्रत्युपस्थान (पा. पच्चुपट्ठान) आदि रखे गये हैं।

यद्यपि कौकृत्य(पा. कुक्कुच्च),व्यक्त (पा. व्यत्त), प्रत्युपस्थान (पा. पच्चुपट्ठान) आदि शब्द हिंदी कोश में नहीं मिलते, पर एडगर्टन के बुद्धिस्ट संस्कृत कोश में मिलते हैं। अतः इन्हें अनुवाद में रखना उचित है। हिंदी भाषा इन पारिभाषिक शब्दों को आत्मसात कर समृद्ध ही होगी। पालि के बाद के संस्कृत बौद्ध वाङ्मय में इन शब्दों का प्रयोग उन्हीं अर्थों में हुआ है जिनमें उनके पालि शब्दों का हुआ है।

(४) इनके अतिरिक्त यहां कुछ और शब्दों की व्याख्या दी जा रही है जिससे पाठकों को अनुवाद समझने में आसानी होगी।

नीवरण – ध्यान आदि कुशल धर्मों के उत्पन्न होने में जो बाधक हैं, जो निवारण करने वाले धर्म हैं उन्हें नीवरण कहते हैं। **'ज्ञानादिकं निवारेन्तीति नीवरणानि'**। नीवरण पांच हैं – कामच्छन्द (कामेच्छा, लोभ), व्यापाद (द्वेष), थीनमिद्ध (आलस्य), उद्धच्चकुक्कुच्च(उद्धतपन तथा पश्चात्ताप) और विचिकिच्छा (संदेह, संशय)।

शमथ और विपश्यना – **'किलेसे समेतीति समथो'** अर्थात कामच्छन्द आदि नीवरण क्लेशों का शमन करने वाला धर्म शमथ है। **'विसेसेन पस्सतीति विपस्सना'** अर्थात धर्मों को विशेष रूप से देखनेवाली प्रज्ञा विपश्यना है। शमथ चित्त की एकाग्रता को कहते हैं –'**समथोति चित्तेकग्गता'**। विपश्यना संस्कार को पूर्णतः समझने वाला ज्ञान है –'**विपस्सनाति सङ्खारपरिग्गाहक ञाणं'**।

(५) **'अयोनिसो मनसिकारो'** का अर्थ गलत ढंग से चिंतन है, बेढंगा विचार करने से है, अयथार्थ को यथार्थ समझना है। अनित्य को नित्य समझना, दुःख को सुख, अनात्म को आत्मा और अशुभ को शुभ समझना अयोनिसो मनसिकार है। इसके विपरीत चिंतन को 'योनिसो मनसिकारो' कहा जाता है।

कई जगहों पर कुछ शंकाओं का समाधान नहीं मिलने पर उन मुद्दों को पू. गोयन्काजी के समक्ष रखा गया और उन्होंने आनुभूतिक स्तर पर प्राप्त किये ज्ञान से जो बहुमूल्य सुझाव दिये उसी के आलोक में यह सुधारा हुआ अनुवाद प्रस्तुत है। अगर पाठकों को कहीं भी शंकास्थल दिखे या भाषा की भूल दिखाई पड़े तो अवश्य सूचित करें ताकि उनका यथाशीघ्र सुधार किया जा सके।

सब के प्रति मंगल कामना करते हुए यह अनुवाद हम आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं। आशा है सद्धर्म को समझने व धारण करने में यह पाठकों के लिए प्रेरणास्पद सिद्ध होगा।

विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी

विषय-सूची

एक क -निपात(१-१३)

अंगुत्तर निकाय

उन भगवान अर्हत सम्यक संबुद्ध को नमस्कार है।

एकक-निपात

१. रूप आदि वर्ग

१. ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान[१] श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे।

तब भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया–

"भिक्षुओ !"

"भदंत !" कहकर भिक्षुओं ने प्रतिवचन दिया। भगवान ने यह कहा–

---

१ **भगवाति वचनं सेट्ठं, भगवाति वचनमुत्तमं।**
गरुगारवयुत्तो सो, भगवा तेन वुच्चति॥

['भगवान' श्रेष्ठ वचन है, 'भगवान' उत्तम वचन है, गौरव-युक्त होने से वे (तथागत) भगवान कहलाते हैं।]

"भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरे रूप को नहीं जानता[1] जो पुरुष के चित्त को इस प्रकार बांध लेता है जैसे भिक्षुओ, स्त्री का रूप।

"स्त्री का रूप, भिक्षुओ! पुरुष के चित्त को बांध लेता है।

२. "भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरे शब्द (दूसरी आवाज़) को नहीं जानता जो पुरुष के चित्त को इस प्रकार बांध लेता है जैसे भिक्षुओ, स्त्री का शब्द (आवाज़)।

"स्त्री का शब्द, भिक्षुओ! पुरुष के चित्त को बांध लेता है।

३. "भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरी गंध को नहीं जानता जो पुरुष के चित्त को इस प्रकार बांध लेती है जैसे भिक्षुओ, स्त्री की गंध।

"स्त्री की गंध, भिक्षुओ! पुरुष के चित्त को बांध लेती है।

४. "भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरे रस को नहीं जानता जो पुरुष के चित्त को इस प्रकार बांध लेता है जैसे भिक्षुओ, स्त्री का रस।

"स्त्री का रस, भिक्षुओ! पुरुष के चित्त को बांध लेता है।

५. "भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरे स्पर्श को नहीं जानता जो पुरुष के चित्त को इस प्रकार बांध लेता है जैसे भिक्षुओ, स्त्री का स्पर्श।

"स्त्री का स्पर्श, भिक्षुओ! पुरुष के चित्त को बांध लेता है।

६. "भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरे रूप को नहीं जानता जो स्त्री के चित्त को इस प्रकार बांध लेता है जैसे भिक्षुओ, पुरुष का रूप।

"पुरुष का रूप, भिक्षुओ! स्त्री के चित्त को बांध लेता है।

७. "भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरे शब्द (आवाज़) को नहीं जानता जो स्त्री के चित्त को इस प्रकार बांध लेता है जैसे भिक्षुओ, पुरुष का शब्द।

---

१ पालि में यहां **'समनुपस्सामि'** शब्द का प्रयोग किया है, जिसका **'जानना'** अर्थ करना ही अधिक समीचीन होगा। जानना अर्थात अनुभूति के स्तर पर जानना, जैसे कि पूज्य श्री सत्यनारायण गोयन्काजी ने कहा है। उन्होंने 'जान्यता' और 'मान्यता' में अंतर दिखाया है। मान्यता सिर्फ मानना है, परंतु जान्यता अनुभूति के स्तर पर जानना अर्थात, प्रत्यक्ष अनुभव करना है। 'देखना' का प्रयोग हिंदी में इस अर्थ में नहीं होता। हां, इसका अर्थ भी अनुभूति के स्तर पर जानना हो सकता है बशर्ते इसके पहले कुछ रहे। इसे पू. गोयन्काजी ने एक उदाहरण से समझाया कि 'रसगुल्ले खाकर तो देख'। इस वाक्य में देखने का भाव अनुभव करना है। अट्ठकथा में समनुपस्सना दो प्रकार की कही गयी है – **ञाणसमनुपस्सना** और **दिट्ठिसमनुपस्सना**। सभी संस्कार अनित्य हैं, नित्य नहीं; ऐसा देखना ञाणसमनुपस्सना है। 'रूप' आदि को आत्मा के रूप में मानना **'दिट्ठिसमनुपस्सना'** है। यहां **'ञाणसमनुपस्सना'** अभिप्रेत है । **'समनुपस्सामि'** का अर्थ सर्वज्ञता ज्ञान से जानना, देखना है। किंतु सब जगह 'सर्वज्ञता ज्ञान से जानता हूं' लिखने से भाषा बोझिल हो जायगी। इसलिए केवल 'जानता हूं' रखना तय किया गया।

"पुरुष का शब्द, भिक्षुओ! स्त्री के चित्त को बांध लेता है।

८. "भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरी गंध को नहीं जानता जो स्त्री के चित्त को इस प्रकार बांध लेती है जैसे भिक्षुओ, पुरुष की गंध।

"पुरुष की गंध, भिक्षुओ! स्त्री के चित्त को बांध लेती है।

९. "भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरे रस को नहीं जानता जो स्त्री के चित्त को इस प्रकार बांध लेता है जैसे भिक्षुओ, पुरुष का रस।

"पुरुष का रस, भिक्षुओ! स्त्री के चित्त को बांध लेता है।

१०. "भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरे स्पर्श को नहीं जानता जो स्त्री के चित्त को इस प्रकार बांध लेता है जैसे भिक्षुओ, पुरुष का स्पर्श।

"पुरुष का स्पर्श, भिक्षुओ! स्त्री के चित्त को बांध लेता है।"

* * * * *

२. नीवरण-प्रहाण वर्ग

११. "भिक्षुओ, मैं और कोई ऐसा दूसरा धर्म[१] (बात) नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न कामेच्छा उत्पन्न होती है अथवा उत्पन्न कामेच्छा

१ 'धर्म' शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त किया गया है जैसे अच्छा आचरण, देशना अर्थात नैतिक शिक्षा, सनातन नियम (कानून) आदि। इसका अर्थ हेतु, कारण, नैतिक गुण, तथा तथ्य भी है जो पारमार्थिक सत्य, परासत्ता का विलोम है। धर्म का अर्थ कहीं सिद्धांत भी होता है तो कहीं इसका अर्थ बात भी होता है। **'सब्बे धम्मा अनिच्चा**ति' में धर्म का अर्थ सभी संवृति सत्य है अर्थात प्रत्यक्ष जगत है। **'दिट्ठेव धम्मे'** में धर्म इस जीवन को, इस लोक को द्योतित करता है, जो सम्परायिक अर्थात लोकोत्तर (परलोक) का विलोम है। **'लोक धम्मा'** में धर्म का अर्थ इस दुनिया में प्राप्त होने वाली चीजें जैसे लाभ-हानि, यश-अपयश, निंदा-प्रशंसा और सुख-दुःख इत्यादि हैं जो लोकधर्म कहे जाते हैं। **'उत्तरिमनुस्सधम्मा'** से अभिप्रेत हैं अलौकिक बातें। **'गामधम्मा'** से मतलब है गांव के लोगों द्वारा बोली जाने वाली बातें या उनके द्वारा किया जाने वाला आचरण। **'वयधम्मा सङ्खारा'** में धर्म का अर्थ स्वभाव है अर्थात सभी संस्कार व्ययधर्मा, क्षयधर्मा हैं।

धर्म से अभिप्राय नाम तथा रूप संबंधी सभी बातों से है। चित्त धर्म है तो चैतसिक भी धर्म हैं। रूप धर्म है तो इसकी अनित्यता भी धर्म है। कुशल तथा अकुशल चित्त वृत्तियां भी धर्म हैं।

धर्म का अर्थ नैतिकता, न्याय, उचित व्यवहार, आचरण, कर्त्तव्य आदि है। **'ञातिधम्मा'** का अर्थ संबंधियों के प्रति कर्त्तव्य से है। **'देय्यधम्म'** का अर्थ दान से है। **'पापधम्मा'** बुरा आचरण है और **'लोभधम्मा'** लालची स्वभाव को बताता है। धर्म का अर्थ 'विषय' भी होता है जैसे एकक निपात में एक ही एक धर्म का वर्णन है, द्विक निपात में दो-दो धर्मों का और त्रिक निपात में तीन-तीन धर्मों का। इसी तरह और निपातों में भी बढ़ते क्रम से धर्मों का वर्णन है।

अत्यधिक विपुल होती है जैसे, भिक्षुओ, यह शुभ-निमित्त (राग पैदा करने वाला निमित्त)।

"शुभ-निमित्त का ही, भिक्षुओ, गलत ढंग से (अयथार्थ) चिंतन करने से अनुत्पन्न कामेच्छा उत्पन्न होती है और उत्पन्न कामेच्छा... होती है।

१२. "भिक्षुओ, मैं और कोई ऐसा दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न होता है अथवा उत्पन्न द्वेष अत्यधिक विपुल होता है जैसे, भिक्षुओ, यह प्रतिकूल निमित्त (द्वेष जगाने वाला निमित्त)।

"प्रतिकूल निमित्त का ही, भिक्षुओ, अयथार्थ चिंतन करने से अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न होता है और उत्पन्न द्वेष... होता है।

१३. "भिक्षुओ, मैं और कोई ऐसा दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न आलस्य उत्पन्न होता है अथवा उत्पन्न आलस्य अत्यधिक विपुल होता है जैसे, भिक्षुओ, यह अरुचि, तंद्रा, जम्हाई लेना, भोजनांतर की तंद्रा तथा चित्त की सुस्ती।

"जिसका चित्त सुस्ती-ग्रस्त है, भिक्षुओ, उसी में अनुत्पन्न आलस्य उत्पन्न होता है और उत्पन्न आलस्य... होता है।

१४. "भिक्षुओ, मैं और कोई ऐसा दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न उद्धतपन तथा अनुताप उत्पन्न होता है अथवा उत्पन्न उद्धतपन तथा अनुताप अत्यधिक विपुल होता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त की अशांति।

"अशांत-चित्त में ही भिक्षुओ, अनुत्पन्न उद्धतपन तथा अनुताप उत्पन्न होता है और उत्पन्न उद्धतपन तथा अनुताप... होता है।

१५. "भिक्षुओ, मैं और कोई ऐसा दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न संशय उत्पन्न होता है अथवा उत्पन्न संशय अत्यधिक विपुल होता है जैसे, भिक्षुओ, यह अयथार्थ चिंतन करना।

"अयथार्थ चिंतन होने से ही भिक्षुओ, अनुत्पन्न संशय उत्पन्न होता है और उत्पन्न संशय... होता है।

१६. "भिक्षुओ, मैं और कोई ऐसा दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न कामेच्छा अनुत्पन्न रहती है अथवा उत्पन्न कामेच्छा का प्रहाण होता है जैसे, भिक्षुओ, यह अशुभ-निमित्त (जुगुप्सा जगाने वाला निमित्त)।

"अशुभ-निमित्त पर भिक्षुओ, सही ढंग से (यथार्थ) चिंतन करने से अनुत्पन्न कामेच्छा उत्पन्न नहीं होती और उत्पन्न कामेच्छा का प्रहाण होता है।

१७. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न द्वेष अनुत्पन्न रहता है अथवा उत्पन्न द्वेष का प्रहाण होता है जैसे, भिक्षुओ, यह मैत्री[1] के आधार पर चित्त की विमुक्ति।

"मैत्री के आधार पर चित्त की विमुक्ति पर यथार्थ चिंतन करने से अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न द्वेष का प्रहाण होता है।

१८. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न आलस्य उत्पन्न नहीं होता अथवा उत्पन्न आलस्य का प्रहाण होता है जैसे, भिक्षुओ, यह आरंभिक प्रयत्न, आयास और प्रयास (अधिक-प्रयत्न और सर्वाधिक-प्रयत्न)[2]।

"जो प्रयत्नशील है, भिक्षुओ, उसमें अनुत्पन्न आलस्य उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न आलस्य का प्रहाण होता है।

१९. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न उद्धतपन तथा अनुताप उत्पन्न नहीं होता अथवा उत्पन्न उद्धतपन तथा अनुताप का प्रहाण होता है, जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त की शांति।

"उपशांत चित्त में भिक्षुओ, अनुत्पन्न उद्धतपन तथा अनुताप उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न उद्धतपन तथा अनुताप का प्रहाण होता है।

२०. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न संशय उत्पन्न नहीं होता अथवा उत्पन्न संशय का प्रहाण होता है जैसे, भिक्षुओ, यह यथार्थ चिंतन करना।

"यथार्थ चिंतन करने से भिक्षुओ, अनुत्पन्न संशय उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न संशय का प्रहाण होता है।"

* * * * *

---

१ **'मेत्ता चेतोविमुत्ति'** -- मैत्री के आधार पर चित्त विमुक्ति का अभ्यास करता है, मैत्री भरे चित्त से चित्त विमुक्ति का अभ्यास करता है जैसा पू. श्री गोयन्काजी ने बताया है। अट्ठकथाकार के अनुसार भी मैत्री से युक्त चित्त नीवरण आदि विरोधी धर्मों से विमुक्त होता है। हम चार ब्रह्मविहारों की भावना करते हैं जिनमें मेत्ता एक ब्रह्मविहार है। मेत्ता भावना से व्याप्त चित्त से चित्त-विमुक्ति होती है जिसका साधक अभ्यास करता है।

२ **आरम्भधातु, निक्कमधातु** और **परक्कमधातु** का अर्थ, क्रमशः, आरंभिक प्रयत्न, आयास (अधिक प्रयत्न) और प्रयास (सर्वाधिक प्रयत्न) किया गया है।

३. अकर्मणीय वर्ग

२१. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म (वस्तु) नहीं जानता जो अभ्यास (भावना) न करने से इस प्रकार निकम्मा हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अभ्यास न करने से चित्त निकम्मा हो जाता है।

२२. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जो अभ्यास करने से इतना काम का हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अभ्यास करने से चित्त काम का हो जाता है।

२३. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जो अभ्यास न करने से इतना महान अनर्थकारी हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अभ्यास न करने से चित्त महान अनर्थकारी हो जाता है।

२४. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जो अभ्यास करने से इतना महान कल्याणकारी हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अभ्यास करने से चित्त महान कल्याणकारी हो जाता है।

२५. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो अभ्यास न करने से, जिसके अप्रकट[१] रहने से (आविर्भाव न होने से) इतना महान अनर्थकारी हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अभ्यास न करने से, अप्रकट रहने से चित्त महान अनर्थकारी हो जाता है।

२६. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो अभ्यास करने से, जिसके प्रकट होने से (आविर्भाव होने से) इतना महान कल्याणकारी हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अभ्यास करने से, प्रकट होने से चित्त महान कल्याणकारी हो जाता है।

२७. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो अभ्यास न करने से, बहुलीकरण[२] (बार-बार अभ्यास) न करने से इतना महान अनर्थकारी हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

---

१ जिस चित्त की शक्तियां अप्रकट हैं, उस चित्त को भी अप्रकट ही जानना चाहिए।

२ यहां पालि में **'बहुलीकतं'** शब्द है। इसका अर्थ बार-बार अभ्यास से है पर अच्छा होगा इसके लिए 'बहुलीकरण' या 'भावना करना' शब्द रखना। कहा भी गया है – **चित्तं, भिक्खवे, भावितं बहुलीकतन्ति एत्थ समथविपस्सनावसेन भावितञ्चेव पुनप्पुनकतञ्च चित्तं अधिपेतं।**

"भिक्षुओ, अभ्यास न करने से, बहुलीकरण न करने से चित्त महान अनर्थकारी हो जाता है।

२८. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो अभ्यास करने से, बहुलीकरण करने से इतना महान कल्याणकारी हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अभ्यास करने से, बहुलीकरण करने से चित्त महान कल्याणकारी हो जाता है।

२९. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो अभ्यास न करने से, बहुलीकरण न करने से इस प्रकार दुःखदायी हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अभ्यास न करने से, बहुलीकरण न करने से चित्त दुःखदायी हो जाता है।

३०. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो अभ्यास करने से, बहुलीकरण करने से इतना सुखदायी हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अभ्यास करने से, बहुलीकरण करने से चित्त सुखदायी हो जाता है।"

* * * * *

४. अदान्त (दमन न किया हुआ) वर्ग

३१. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म (वस्तु) नहीं जानता जिसका यदि दमन न किया जाय तो ऐसा महान अनर्थकारी होता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, दमन न किया गया चित्त महान अनर्थकारी होता है।

३२. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जिसका दमन किये जाने पर इतना महान कल्याणकारी (अर्थ सिद्ध करने वाला) होता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, दमन किया गया चित्त महान कल्याणकारी होता है।

३३. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो अरक्षित रहने पर ऐसा महान अनर्थकारी होता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अरक्षित चित्त महान अनर्थकारी होता है।

३४. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो संरक्षित रहने पर ऐसा महान कल्याणकारी होता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, संरक्षित चित्त महान कल्याणकारी होता है।

३५-३६. ...अरक्षित... रक्षित... (शब्दों की भिन्नता है, अर्थ-भेद नहीं है)।

३७. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो असंयत होने पर महान अनर्थकारी होता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, असंयत चित्त महान अनर्थकारी होता है।

३८. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो संयत रहने पर ऐसा कल्याणकारी होता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, संयत चित्त महान कल्याणकारी होता है।

३९. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जिसका दमन न करने पर, जिसके अरक्षित रहने पर और असंयत रहने पर ऐसा महान अनर्थकारी होता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, चित्त का दमन न करने पर, इसके अरक्षित रहने पर और असंयत रहने पर यह महान अनर्थकारी होता है।

४०. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जिसका दमन करने पर, जिसके सुरक्षित रहने पर, और संयत रहने पर ऐसा महान कल्याणकारी होता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, चित्त का दमन करने पर, इसके सुरक्षित रहने पर और संयत रहने पर महान कल्याणकारी होता है।"

* * * * *

५. प्रणिहित एवं पारभाषी (सुबोध) वर्ग

४१. "जैसे भिक्षुओ, शालि (धान) की बाली हो अथवा जौ की बाली हो और वह ठीक ढंग से न रखी गई (मिथ्या प्रणिहित) हो और वह हाथ या पैर से दब जाय तो इसकी संभावना नहीं है कि वह हाथ या पैर को बींधेगा या खून निकालेगा। यह ऐसा क्यों? भिक्षुओ, बाली के ठीक से न रखे होने के कारण। इसी प्रकार भिक्षुओ, यह संभव नहीं है कि कोई भिक्षु ठीक से न रखे गये (सम्यक प्रणिहित) चित्त से अविद्या को बींध सकेगा, विद्या का उपार्जन कर

सकेगा तथा निर्वाण का साक्षात्कार कर सकेगा। यह ऐसा क्यों? चित्त के ठीक से रखे न रहने के कारण।

४२. "जैसे भिक्षुओ, शालि की बाली हो अथवा जौ की बाली हो और वह ठीक से रखी गई (सम्यक प्रणिहित) हो और वह हाथ या पैर से दब जाय तो इसकी संभावना है कि वह हाथ या पैर को बींधेगा या खून निकालेगा। यह ऐसा क्यों? भिक्षुओ, शालि की बाली के ठीक से रखे होने के कारण। इसी प्रकार, भिक्षुओ, यह संभव है कि वह भिक्षु ठीक से रखे गये चित्त से अविद्या को बींध सकेगा, विद्या का उपार्जन कर सकेगा तथा निर्वाण का साक्षात्कार कर सकेगा। यह ऐसा क्यों? चित्त के ठीक से रखे रहने के कारण।

४३. "यहां भिक्षुओ, मैं एक प्रदुष्ट-चित्त आदमी के चित्त को अपने चित्त से यथाभूत जानता[१] हूं कि यदि यह व्यक्ति इसी समय मर जाये तो ऐसा होगा जैसे कि लाकर नरक में डाल दिया गया हो। यह ऐसा क्यों? भिक्षुओ, इसका चित्त ही प्रदुष्ट है। भिक्षुओ, चित्त के प्रदुष्ट होने के कारण ही यहां कुछ प्राणी शरीर के न रहने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति को प्राप्त कर नरक में पैदा होते हैं।

४४. "यहां भिक्षुओ, मैं एक प्रसन्नचित्त आदमी के चित्त को अपने चित्त से यथाभूत जानता हूं कि यदि यह व्यक्ति इसी समय मर जाये तो ऐसा होगा जैसे कि लाकर स्वर्ग में डाल दिया गया हो। यह ऐसा क्यों? भिक्षुओ, इसका चित्त ही प्रसन्न है। भिक्षुओ, चित्त के प्रसन्न होने के कारण ही यहां कुछ प्राणी शरीर के न रहने पर, मरने के बाद सुगति प्राप्त कर स्वर्ग-लोक में उत्पन्न होते हैं।

४५. "जैसे भिक्षुओ, पानी का तालाब मैला हो, (पानी) चंचल हो और कीचड़-युक्त हो, वहां किनारे पर खड़े आंख वाले आदमी को न सीपी दिखाई दे, न शंख, न कंकड़ दिखाई दे, न पत्थर और न चलती हुई अथवा स्थिर मछलियां ही दिखाई दें। यह ऐसा क्यों? भिक्षुओ, पानी के मलिन (आविल) होने के कारण। इसी प्रकार भिक्षुओ, इसकी संभावना नहीं है कि वह भिक्षु मैले चित्त से स्व-हित को जान सकेगा, पर-हित को जान सकेगा, उभय-हित को

१ यहां पालि में **'पजानाति'** शब्द है। इसका अर्थ यथाभूत जानने से है। जैसे-जैसे साधक साधना के क्षेत्र में उत्तरोत्तर विकास करता है, उसके ज्ञान का क्षेत्र बढ़ता जाता है। **'जानाति'** का अर्थ 'जानता है', **'विजानाति'** का अर्थ 'बहुतों में से अलग कर जानता है'; **'पजानाति'** का अर्थ 'यथाभूत जानता है'; **'परिजानाति'** का अर्थ 'जहां तक जानने की परिधि है वहां तक जानता है अर्थात परिपूर्ण रूप से जानता है', **'अभिजानाति'** का अर्थ 'सम्यक रूप से जानता है।' और **'सञ्जानाति'** का अर्थ 'पहचानता है।' पालि में आये ये शब्द पारिभाषिक हैं और ये साधक की भिन्न-भिन्न अवस्थाएं बताते हैं।

जान सकेगा और सामान्य मनुष्य-धर्म से श्रेष्ठतर विशिष्ट आर्य-ज्ञान-दर्शन को साक्षात कर सकेगा। यह ऐसा क्यों? भिक्षुओ, चित्त के मैले होने के कारण।

४६. "जैसे भिक्षुओ, पानी का तालाब अच्छा हो, स्वच्छ हो, निर्मल हो, वहां किनारे पर खड़े आंख वाले आदमी को सीपी भी दिखाई दे, शंख भी दिखाई दे, कंकड़ भी दिखाई दे, पत्थर भी दिखाई दे और चलती हुई अथवा स्थिर मछलियां भी दिखाई दें। यह ऐसा क्यों? भिक्षुओ, पानी के निर्मल (अनाविल) होने के कारण। इसी प्रकार भिक्षुओ, इसकी संभावना है कि वह भिक्षु निर्मल चित्त से स्व-हित को जान सकेगा, पर-हित को जान सकेगा, उभय-हित को जान सकेगा और सामान्य मनुष्य-धर्म से श्रेष्ठतर विशिष्ट आर्य-ज्ञान-दर्शन को साक्षात कर सकेगा। यह ऐसा क्यों? भिक्षुओ, चित्त के निर्मल होने के कारण।

४७. "भिक्षुओ, जितने भी वृक्ष हैं उनमें कोमलता (मृदुता) तथा कमनीयता की दृष्टि से स्पंदन ही श्रेष्ठ कहलाता है। उसी प्रकार भिक्षुओ, मैं एक भी ऐसा धर्म नहीं जानता जो भावित करने से ऐसा मृदु तथा कमनीय हो जाता हो, जैसे यह चित्त।

"भिक्षुओ, चित्त भावना करने से, बार-बार[1] भावना करने से मृदु हो जाता है तथा कमनीय हो जाता है।

४८. "भिक्षुओ, मैं दूसरा कोई भी ऐसा एक धर्म (वस्तु) नहीं जानता जो इतना शीघ्र परिवर्तनशील हो जैसे कि यह चित्त। भिक्षुओ, चित्त इतना शीघ्र परिवर्तनशील है कि इसकी उपमा देना भी सहज नहीं है।

४९. "भिक्षुओ, यह चित्त प्रभास्वर है। (स्वाभाविक रूप से विशुद्ध है।) यह बाह्यमल से दूषित है।

५०. "भिक्षुओ, यह चित्त प्रभास्वर है। यह बाह्यमल से पूरी तरह से मुक्त है।"

* * * * *

६. क्षणिक वर्ग

५१. "भिक्षुओ, यह चित्त (स्वाभाविक रूप से) प्रभास्वर है। यह बाह्यमल से दूषित है। इस बात को अश्रुत (अज्ञानी) पृथग्जन यथार्थ रूप से (यथाभूत)

---

१ यहां पालि में **'भिय्योभावाय वेपुल्लाय संवत्तति'** है । **'भिय्योभावाय'** का अर्थ 'अधिक होता है, कई गुणा होता है'। **'भिय्योभावाय वेपुल्लाय'** का अर्थ अधिक मात्रा में विपुलता को प्राप्त करता है। **'भिय्योभावाय'** का अर्थ बार-बार बढ़ना है।

नहीं जानता है। इसलिए 'अश्रुत पृथग्जन को चित्त-भावना (चित्ताभ्यास) होती ही नहीं ऐसा मैं कहता हूं।'

५२. "भिक्षुओ, यह चित्त (स्वाभाविक रूप से) प्रभास्वर है। यह बाह्यमल से पूरी तरह से मुक्त है। इस बात को श्रुत (ज्ञानी) आर्य-श्रावक यथार्थ रूप से जानता है। इसलिए 'श्रुतवान आर्य-श्रावक को चित्त-भावना होती है ऐसा मैं कहता हूं।'

५३. "भिक्षुओ, यदि भिक्षु चुटकी बजाने भर (उतने से समय भर) भी मैत्री-भावना करता है तो भिक्षुओ, ऐसा भिक्षु ध्यान से रिक्त नहीं होकर (अरित्तज्झानी=ध्यान से अरिक्त) विचरण करता है, शास्ता के अनुशासन में रहने वाला, शास्ता के उपदेश के अनुसार आचरण करने वाला; वह भिक्षु व्यर्थ ही राष्ट्र-पिंड[1] खाने वाला नहीं होता। जो बार-बार मैत्री-भावना करता है उसका तो कहना ही क्या।

५४-५५. ऐसे ही मैत्री भावित करना... मन में धारण करना...।

५६. "भिक्षुओ, जितने भी अकुशल-धर्म (बुरी बातें) हैं, अकुशल के सहायक हैं, अकुशल-पक्षीय हैं, वे सभी मन से निःसृत हैं। मन उनमें पहले उत्पन्न होता है और अकुशल-धर्म पीछे।

५७. "भिक्षुओ, जितने भी कुशल-धर्म (अच्छी बातें) हैं, कुशल के सहायक हैं, कुशलपक्षीय हैं वे सभी मन से निःसृत हैं। मन उनमें पहले उत्पन्न होता है और कुशल-धर्म पीछे।

५८. भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म (बात) नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न होते हैं अथवा उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह प्रमाद।

"भिक्षुओ, प्रमादी के अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानिहोती है।

५९. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि भिक्षुओ, यह अप्रमाद।

---

१ **रट्ठपिण्ड** (राष्ट्र-पिंड) – **ञातिपरिवट्टं पहाय रट्ठं निस्साय पब्बजितेन परेसं गेहतो पटिलद्धत्ता पिण्डपातो रट्ठपिण्डो नाम वुच्चति।**

रिश्तेदारों की मंडली को छोड़ राष्ट्र पर निर्भर हो प्रव्रजित द्वारा दूसरे के घर से भोजन प्राप्त करने के कारण वह भोजन राष्ट्र-पिंड कहलाता है।

"भिक्षुओ, अप्रमादी के अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है।

६०. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह आलस्य।

"भिक्षुओ, आलसी के अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है।"

* * * * *

७. प्रयत्नारंभ आदि वर्ग

६१. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म (बात) नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह प्रयत्न[1] का आरंभ।

"भिक्षुओ, प्रयत्नशील के अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है।

६२. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह इच्छा की अधिकता।

"भिक्षुओ, अधिक इच्छा करने वाले के अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है।

६३. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह अल्पेच्छता।

"भिक्षुओ, अल्पेच्छ व्यक्ति के अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है।

६४. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह असंतोष।

"भिक्षुओ, असंतुष्ट के अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है।

---

१ यहां पालि में **वीर्य** शब्द है। इसका अर्थ 'प्रयत्न' किया गया है।

६५. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह संतोष।

"भिक्षुओ, संतुष्ट के अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानिहोती है।

६६. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह अयथार्थ चिंतन करना।

"भिक्षुओ, अयथार्थ चिंतन करनेवाले के अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानिहोती है।

६७. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कुशलधर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह यथार्थ चिंतन करना।

"भिक्षुओ, यथार्थ चिंतन करने वाले के अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानिहोती है।

६८. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह असंप्रज्ञान।

"भिक्षुओ, असंप्रज्ञानी व्यक्ति के अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानिहोती है।

६९. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह संप्रज्ञान[१]।

"भिक्षुओ, संप्रज्ञानी के अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानिहोती है।

७०. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह कुसंगति(पापमित्रता)।

---

१ यहां पालि में **'सम्पजञ्ञं'** शब्द है (बु. सं. 'संप्रज्ञान')। यह 'ज्ञान' से भिन्न है। ज्ञान बौद्धिक धरातल पर भी हो सकता है, बल्कि इसी धरातल पर बहुधा होता है। 'संप्रज्ञान' का अर्थ प्रत्यक्ष ज्ञान अथवा अनुभूति के स्तर पर का ज्ञान है जहां लंबे समय तक वेदनाओं के उत्पाद, स्थिति और भंग को अनुभव के स्तर पर जाना जाता है।

"भिक्षुओ, पापमित्र के संग में रहने वाले के अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है।"

* * * * *

८. कल्याणमित्रादि वर्ग

७१. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म (बात) नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह सुसंगति (कल्याणमित्रता)।

"भिक्षुओ, कल्याणमित्र का संग करने वाले के अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है।

७२. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह अकुशल-धर्मों में लगना और कुशल-धर्मों में न लगना।

"भिक्षुओ, अकुशल-धर्मों में लगने और कुशल-धर्मों में न लगने से अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल धर्मों की परिहानि होती है।

७३. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह कुशल-धर्मों में लगना और अकुशल-धर्मों में न लगना।

"भिक्षुओ, कुशल-धर्मों में लगने और अकुशल-धर्मों में न लगने से अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है।

७४. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न बोधि-अंग[१] उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न बोधि-अंग भावना[२] की पूर्णता को नहीं प्राप्त होते जैसे कि, भिक्षुओ, यह यथार्थ चिंतन न करना।

---

१ **बोज्झंग** (बोध्यंग) – **बुज्झति एतायाति बोधि, बोधिया अङ्गो बोज्झङ्गो –** जिन धर्मों द्वारा आर्य-सत्य जाने जाते हैं उन्हें बोधि कहते हैं। बोधि के अंग को बोध्यंग कहते हैं। बोध्यंग सात हैं जैसे स्मृति, धर्मविचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि तथा उपेक्षा।

२ **भावना**= बार-बार अनुभूति के स्तर पर जानना।

"भिक्षुओ, अयथार्थ चिंतन करनेवाले के अनुत्पन्न बोधि-अंग उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न बोधि-अंग भावना[१] की पूर्णता को नहीं प्राप्त होते।

७५. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न बोधि-अंग उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न बोधि-अंग भावना की पूर्णता को प्राप्त होते हैं जैसे कि, भिक्षुओ, यह यथार्थ चिंतन करना।

"भिक्षुओ, यथार्थ चिंतन करने से अनुत्पन्न बोधि-अंग उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न बोधि-अंग भावना की पूर्णता को प्राप्त होते हैं।

७६. "भिक्षुओ, यह जो सगे-संबंधियों का न रहना है, यह कोई बड़ी परिहानि नहीं है। भिक्षुओ, यह जो प्रज्ञा की परिहानि है यही सबसे बड़ी परिहानि है।

७७. "भिक्षुओ, यह जो सगे-संबंधियों की वृद्धि है, यह कोई बड़ी वृद्धि नहीं है। भिक्षुओ, यह जो प्रज्ञा की वृद्धि है यही सबसे बड़ी वृद्धि है। इसलिए, भिक्षुओ, यही सीखना चाहिए कि हम प्रज्ञा-वृद्धि द्वारा उन्नति करेंगे। ऐसा ही, भिक्षुओ, सीखना चाहिए।

७८. "भिक्षुओ, यह जो भोग-सामग्री की परिहानि है, यह कोई बड़ी परिहानि नहीं है। भिक्षुओ, यह जो प्रज्ञा की परिहानि है यही सबसे बड़ी परिहानि है।

७९. "भिक्षुओ, यह जो भोग-सामग्री की वृद्धि है, यह कोई बड़ी वृद्धि नहीं है। भिक्षुओ, यह जो प्रज्ञा की वृद्धि है यही सबसे बड़ी वृद्धि है। इसलिए, भिक्षुओ, यही सीखना चाहिए कि हम प्रज्ञा-वृद्धि द्वारा उन्नति करेंगे। ऐसा ही, भिक्षुओ, सीखना चाहिए।

८०. "भिक्षुओ, यह जो यश की हानि है, यह कोई बड़ी हानि नहीं है। भिक्षुओ, यह जो प्रज्ञा की हानि है यही सबसे बड़ी हानि है।"

* * * * *

९. प्रमादादि वर्ग

८१. "भिक्षुओ, यह जो यश की वृद्धि है, यह कोई बड़ी वृद्धि नहीं है। भिक्षुओ, यह जो प्रज्ञा की वृद्धि है यही सबसे बड़ी वृद्धि है। इसलिए, भिक्षुओ, यही सीखना चाहिए कि हम प्रज्ञा-वृद्धि द्वारा उन्नति करेंगे। ऐसा ही, भिक्षुओ, सीखना चाहिए।

---

१ **भावना** = बार-बार अनुभूति के स्तर पर जानना।

८२. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो इतना महान अनर्थकारी हो जैसे कि, भिक्षुओ, यह प्रमाद।

"भिक्षुओ, प्रमाद महान अनर्थकारी है।

८३. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो इतना महान कल्याणकारीहो जैसे कि, भिक्षुओ, यह अप्रमाद।

"भिक्षुओ, अप्रमाद महान कल्याणकारीहै।

८४-८५. इसी प्रकार आलस्य... प्रयत्नारंभ।

८६-८७. इसी प्रकार इच्छा की अधिकता... अल्पेच्छता।

८८-८९. इसी प्रकार असंतोष... संतोष।

९०-९१. इसी प्रकार गलत ढंग से (अयथार्थ) चिंतन करना...सही ढंग से (यथार्थ) चिंतन करना।

९२-९३. इसी प्रकार असंप्रज्ञान... संप्रज्ञान।

९४-९५. इसी प्रकार कुसंगति... सुसंगति।

९६-९७. इसी प्रकार अकुशल धर्मों का अभ्यास तथा कुशल धर्मों का अनभ्यास करना...कुशल धर्मों का अभ्यास तथा अकुशल धर्मों का अनभ्यास करना।

* * * * *

१०. द्वितीय प्रमादादि वर्ग

९८. "अपने से संबंधित बातों में (व्यक्तिनिष्ठ बातों में), भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरी बात नहीं जानता जो इतनी महान अनर्थकारी हो जैसे कि, भिक्षुओ, यह प्रमाद।

"भिक्षुओ, प्रमाद महान अनर्थकारी है।

९९. "अपने से संबंधित बातों में, भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरी बात नहीं जानता जो इतनी महान कल्याणकारीहो जैसे कि, भिक्षुओ, यह अप्रमाद।

"भिक्षुओ, अप्रमाद महान कल्याणकारीहै।

१००-१०१. इसी प्रकार आलस्य... प्रयत्नारंभ।

१०२-१०९. इसी प्रकार इच्छा की अधिकता... अल्पेच्छता।

इसी प्रकार असंतोष... संतोष।

इसी प्रकार अयथार्थ चिंतन करना... यथार्थ चिंतन करना।

इसी प्रकार असंप्रज्ञान... संप्रज्ञान।

११०. “बाह्य से संबंधित बातों में (वस्तुनिष्ठ बातों में), भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरी बात नहीं जानता जो इतनी महान अनर्थकारी हो जैसे कि, भिक्षुओ, यह पापमित्रता (कुसंगति)।

“भिक्षुओ, पापमित्रता महान अनर्थकारी है।

१११. “बाह्य से संबंधित बातों में, भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरी बात नहीं जानता जो इतनी महान कल्याणकारी हो जैसे कि, भिक्षुओ, यह कल्याणमित्रता (सुसंगति)।

“भिक्षुओ, कल्याणमित्रता महान कल्याणकारी है।

११२. “बाह्य से संबंधित बातों में, भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरी बात नहीं जानता जो इतनी महान अनर्थकारी हो जैसे कि, भिक्षुओ, यह अकुशल-धर्मों का अभ्यास तथा कुशल-धर्मों का अनभ्यास करना।

“अकुशल-धर्मों का अभ्यास तथा कुशल-धर्मों का अनभ्यास करना, भिक्षुओ, बहुत अनर्थकारी है।

११३. “अपने से संबंधित बातों में, भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरी बात नहीं जानता जो इतनी महान कल्याणकारी हो जैसे कि भिक्षुओ, यह कुशल धर्मों का अभ्यास तथा अकुशलधर्मों का अनभ्यास करना।

“कुशल-धर्मों का अभ्यास तथा अकुशल-धर्मों का अनभ्यास करना, भिक्षुओ, महान कल्याणकारी है।

११४. “भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म (बात) नहीं जानता जो इस प्रकार सद्धर्म के भूल जाने (उलझनें पैदा करने, लोप हो जाने), सद्धर्म के अंतर्धान होने का कारण हो जैसे कि, भिक्षुओ, यह प्रमाद।

“भिक्षुओ, प्रमाद सद्धर्म के भूलने, सद्धर्म के अंतर्धान होने का कारण होता है।

११५. “भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जो इस प्रकार सद्धर्म के स्थित रहने का (कायम रहने का), नहीं भूलने का, अंतर्धान न होने का कारण हो जैसे कि, भिक्षुओ, यह अप्रमाद।

“भिक्षुओ, अप्रमाद, सद्धर्म के स्थित रहने का, न भूलने का, अंतर्धान न होने का कारण होता है।

११६-११७. इसी प्रकार आलस्य... प्रयत्नारंभ।

११८-१२९. इसी प्रकार इच्छा की अधिकता... अल्पेच्छता।

इसी प्रकार असंतोष... संतोष।

इसी प्रकार अयथार्थ चिंतन करना... यथार्थ चिंतन करना।

इसी प्रकार असंप्रज्ञान... संप्रज्ञान।

इसी प्रकार पापमित्रता... कल्याणमित्रता।

इसी प्रकार अकुशल-धर्मों का अभ्यास तथा कुशल-धर्मों का अनभ्यास करना।...कुशल-धर्मों का अभ्यास तथा अकुशल-धर्मों का अनभ्यास करना।

१३०. "भिक्षुओ, जो भिक्षु अधर्म को धर्म बताते हैं वे भिक्षु बहुत जनों के अहित (अकल्याण) में लगे हैं, बहुत जनों के असुख में लगे हैं; बहुत जनों के तथा देव-मनुष्यों के अनर्थ, अहित तथा दुःख में लगे हैं और वे भिक्षु बहुत अपुण्य उपार्जित करते हैं तथा इस सद्धर्म के अंतर्धान होने में सहायता करते हैं।

१३१. "भिक्षुओ, जो भिक्षु धर्म को अधर्म बताते हैं वे... करते हैं।

१३२-१३९. "भिक्षुओ, जो भिक्षु अविनय (भिक्षु-अनियम) को विनय (भिक्षु-नियम) बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु विनय को अविनय बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा अभाषित को, तथागत द्वारा अकथित वचन को, तथागत द्वारा भाषित, तथागत द्वारा कथित वचन बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा भाषित को, तथागत द्वारा कथित वचन को, तथागत द्वारा अभाषित, तथागत द्वारा अकथित वचन बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा अनाचरित को, तथागत द्वारा आचरित बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा आचरित को तथागत द्वारा अनाचरित बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त को, तथागत द्वारा प्रज्ञप्त बताते हैं, वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा प्रज्ञप्त को, तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त बताते हैं वे बहुत जनों के अहित में लगे हैं, बहुत जनों के असुख में लगे हैं, बहुत जनों के तथा देव-मनुष्यों के अनर्थ, अहित तथा दुःख में लगे हैं और वे भिक्षु बहुत अपुण्य उपार्जित करते हैं तथा इस सद्धर्म के अंतर्धान होने में सहायता करते हैं।"

* * * * *

११. अधर्म वर्ग

१४०. "भिक्षुओ, जो भिक्षु अधर्म को अधर्म बताते हैं वे बहुत जनों के हित (कल्याण) में लगे हैं, बहुत जनों के सुख में लगे हैं, बहुत जनों के तथा देव-मनुष्यों के अर्थ, हित तथा सुख में लगे हैं और वे भिक्षु बहुत पुण्य उपार्जित करते हैं और वे इस सद्धर्म की स्थापना करते हैं।

१४१. "भिक्षुओ, जो भिक्षु धर्म को धर्म बताते हैं वे... करते हैं।

१४२-१४८. "भिक्षुओ, जो भिक्षु अविनय को अविनय बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु विनय को विनय बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा अभाषित को तथा अकथित वचन को, तथागत द्वारा अभाषित तथा अकथित वचन बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा भाषित को तथा कथित वचन को, तथागत द्वारा भाषित तथा कथित वचन बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा अनाचरित को तथागत द्वारा अनाचरित बताते है वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा आचरित को तथागत द्वारा आचरित बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त को, तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त बताते हैं वे... करते हैं।

१४९. "भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा प्रज्ञप्त को, तथागत द्वारा प्रज्ञप्त बताते हैं वे बहुत जनों के हित में लगे हैं, बहुत जनों के सुख में लगे हैं, बहुत जनों के तथा देव-मनुष्यों के अर्थ, हित तथा सुख में लगे हैं और वे भिक्षु बहुत पुण्य उपार्जित करते हैं और वे इस सद्धर्म की स्थापना करते हैं।"

* * * * *

१२. अनपराध वर्ग

१५०. "भिक्षुओ, जो भिक्षु अनपराध को अपराध (आपत्ति) बताते हैं वे भिक्षु बहुत जनों के अहित में लगे हैं, बहुत जनों के असुख में लगे हैं, बहुत जनों के तथा देव-मनुष्यों के अनर्थ, अहित तथा दुःख में लगे हैं और वे भिक्षु बहुत अपुण्य उपार्जित करते हैं तथा इस सद्धर्म के अंतर्धान होने में सहायता करते हैं।

१५१. "भिक्षुओ, जो भिक्षु अपराध को अनपराध बताते हैं वे... करते हैं।

१५२-१५९. "भिक्षुओ, जो भिक्षु हलके अपराध[1] को भारी अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु भारी अपराध[2] को हलका अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु संगीन अपराध[3] को अ-संगीन अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु अ-संगीन अपराध[4] को संगीन अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु सावशेष (आंशिक) अपराध[5] को निर्विशेष (सर्वांगिक) अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु सर्वाङ्गिक अपराध[6] को सावशेष अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु प्रायश्चित्त की जा सकने वाली आपत्ति (सप्रतिकर्म-आपत्ति) को प्रायश्चित्त न की जा सकने वाली आपत्ति बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु प्रायश्चित्त न की जा सकने वाली आपत्ति को प्रायश्चित्त की जा सकने वाली आपत्तिबताते हैं वे... करते हैं।

१६०. "भिक्षुओ, जो भिक्षु अनपराध को अनपराध बताते हैं वे भिक्षु बहुत जनों के हित में लगे हैं, बहुत जनों के सुख में लगे हैं, बहुत जनों के तथा देव-मनुष्यों के अर्थ, हित तथा सुख में लगे हैं और वे भिक्षु बहुत पुण्य उपार्जित करते हैं तथा इस सद्धर्म की स्थापना करते हैं।

१६१. "भिक्षुओ, जो भिक्षु अपराध कोअपराध बताते हैं वे... करतेहैं।

१६२-१६९. "भिक्षुओ, जो भिक्षु हलके अपराध को हलका अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु भारी अपराध को भारी अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

---

१ **'लहुकं आपत्ति'** (पालि) = हलका अपराध

२ **'गरुका आपत्ति'** (पालि) = भारी अपराध

३ **'दुट्ठुल्ल आपत्ति'** (पालि) = संगीन अपराध

४ **'अदुट्ठुल आपत्ति'** (पालि) = अ-संगीन अपराध

५ **'सावसेस आपत्ति'** (पालि) = आंशिक अपराध

६ **'अनवसेस आपत्ति'** (पालि) = सर्वाङ्गिक अपराध

"भिक्षुओ, जो भिक्षु संगीन अपराध को संगीन अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु अ-संगीन अपराध को अ-संगीन अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु सावशेष अपराध को सावशेष अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु निर्विशेष अपराध को निर्विशेष अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु प्रायश्चित्त की जा सकने वाली आपत्ति को प्रायश्चित्त की जा सकने वाली बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु प्रायश्चित्त न की जा सकने वाली आपत्ति को प्रायश्चित्त न की जा सकने वाली आपत्ति बताते हैं वे भिक्षु बहुत जनों के हित में लगे हैं, बहुत जनों के सुख में लगे हैं, बहुत जनों के तथा देव-मनुष्यों के अर्थ, हित तथा सुख में लगे हैं और वे भिक्षु बहुत पुण्य उपार्जित करते हैं तथा इस सद्धर्म की स्थापना करते हैं।"

* * * * *

१३. एक पुद्गल वर्ग

१७०. "भिक्षुओ, लोक में एक व्यक्ति बहुत जनों के हित के लिए, बहुत जनों के सुख के लिए, लोकों पर अनुकंपा करने के लिए तथा देव-मनुष्यों के अर्थ, हित और सुख के लिए उत्पन्न होता है। कौन-सा एक व्यक्ति? तथागत अर्हत सम्यक संबुद्ध।

"भिक्षुओ, यह एक व्यक्ति लोक में बहुत जनों के हित के लिए... उत्पन्न होता है।

१७१. "भिक्षुओ, एक व्यक्ति का लोक में प्रादुर्भाव दुर्लभ है। किस एक व्यक्ति का? तथागत अर्हत सम्यक संबुद्ध का।

"भिक्षुओ, इस एक व्यक्ति का लोक में प्रादुर्भाव्दुर्लभ है।

१७२. "भिक्षुओ, एक व्यक्ति लोक में उत्पन्न होता है वह असाधारण होता है। कौन-सा एक व्यक्ति? तथागतअर्हत सम्यक संबुद्ध।

"भिक्षुओ, यह एक व्यक्ति लोक में उत्पन्न होता है जो असाधारण होता है।

१७३. "भिक्षुओ, एक व्यक्ति का शरीरांत बहुत जनों के अनुताप का कारण होता है। किस एक व्यक्ति का? तथागतअर्हत सम्यक संबुद्ध का।

"भिक्षुओ, इस एक व्यक्ति का शरीरांत बहुत जनों के अनुताप के लिए होता है।

१७४. "भिक्षुओ, लोक में एक व्यक्ति उत्पन्न होता है जो अद्वितीय होता है, आत्मनिर्भर होता है, जो अप्रतिम होता है, उसके जैसा कोई नहीं होता तथा उसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता, और जो द्विपदों में श्रेष्ठतम (अग्र) होता है। कौन-सा एक व्यक्ति? तथागतअर्हत सम्यक संबुद्ध।

"भिक्षुओ, यह एक व्यक्ति लोक में... द्विपदोंमें अग्र होता है।

१७५-१८६. "भिक्षुओ, एक व्यक्ति के प्रादुर्भाव होने से महती (व्यापक) दृष्टि मिल जाती है[१], बहुत आलोक हो जाता है, बहुत प्रकाश फैल जाता है, छः श्रेष्ठ धर्म पैदा हो जाते हैं, चारों प्रतिसंभिदाओं[२] (=मीमांसापूर्ण ज्ञान – अत्थ, धम्म, निरुत्ति, पटिभान-पटिसम्भिदा) का साक्षात्कार हो जाता है, अनेक धातुओं का प्रतिवेधन हो जाता है, नाना धातुओं का प्रतिवेधन हो जाता है, विद्या-विमुक्ति फल का साक्षात्कार हो जाता है, स्रोतापत्ति फल का साक्षात्कार हो जाता है, सकृदागामी फल का साक्षात्कार हो जाता है, अनागामी फल का साक्षात्कार हो जाता है, और अर्हत्व फल का साक्षात्कार हो जाता है। किस एक व्यक्ति के? तथागत अर्हत सम्यक संबुद्ध के।

"भिक्षुओ, इस एक व्यक्ति के प्रादुर्भाव होने से... अर्हत्वफल का साक्षात्कार हो जाता है।

१८७. "भिक्षुओ, मैं दूसरा कोई भी एक व्यक्ति ऐसा नहीं जानता जो तथागत द्वारा प्रवर्तित अनुत्तर धर्म-चक्र को सम्यक प्रकार से अनुप्रवर्तित कर सके, जैसे भिक्षुओ, यह सारिपुत्त।

---

१ **'महतो चक्खुस्स पातुभावो होति'** – **'महतो चक्खु'** का अर्थ 'महती दृष्टि' है, अर्थात इसे प्राप्त कर मनुष्य 'जानने और देखने' (जानाति, पस्सति) लगता है अर्थात वह स्पष्ट रूप से समझने लगता है। वह पूर्ण रूप से विवेकी हो जाता है। अट्ठकथा से स्पष्ट है कि इस वाक्य का अर्थ प्रज्ञा-चक्षु की उत्पत्ति होती है। **कतमस्स चक्खुस्साति**? – अर्थात किस चक्षु की? **पञ्ञाचक्खुस्सस** प्रज्ञा चक्षु की।

२ पटिसम्भिदा (सं. प्रतिसंविद्) – तार्किक विश्लेषण। तार्किक विश्लेषण के चार प्रकार हैं। **अत्थपटिसम्भिदा** – अर्थ विश्लेषण, **धम्मपटिसम्भिदा** – प्रत्ययों का विश्लेषण, **निरुत्ति पटिसम्भिदा** – परिभाषा देना, **पटिभान पटिसम्भिदा** – वह बुद्धि जिसके समक्ष उपरिकथित प्रक्रियाओं से जानने योग्य बातें रखी जाती हैं।

"भिक्षुओ, सारिपुत्त तथागत द्वारा प्रवर्तित अनुत्तर धर्म-चक्र को सम्यक प्रकार से अनुप्रवर्तित करते हैं।"

* * * * *

विषय-सूची

एक क -निपात(१४-२०)

१४. एतदग्र वर्ग

१. प्रथम वर्ग

१८८. "भिक्षुओ, मेरे भिक्षु-श्रावकों में ये अग्र (श्रेष्ठतम) हैं –

दीर्घकालीनों[1] (दीर्घ काल तक भिक्षु बने रहने वालों) में अग्र अञ्ञासिकोण्डञ्ञ[2]।

१८९. महाप्रज्ञावानों में अग्र सारिपुत्त[3]

१९०. ऋद्धिमानों में अग्र महामोग्गल्लान[4]

१९१. धुतंगधारियों में अग्र महाकस्सप[5]

१९२. दिव्यचक्षु वालों में अग्र अनुरुद्ध[6]

१९३. उच्च कुलीनों में अग्र काळिगोध-पुत्र भद्दिय[7]

---

१ एक शब्द है **'रत्तञ्ञूनं'** जिसका अनुवाद अट्ठकथा के आधार पर '(ज्ञान) रात्रि के जानकारों से किया गया है – **रत्तियो जानन्तानं**। वस्तुतः इसका अर्थ 'प्रतिष्ठित' या 'पुराना' या 'अनुभवी' है। प्रव्रजित होने के बाद जो जितनी रातें बिताता है वह उतना ही प्रतिष्ठित समझा जाता है क्योंकि वह रात्रि की शांति में ध्यान कर ज्ञान की प्राप्ति करता है। इसलिए इसे अभिधा में न अनुवाद कर लक्षणा में करना चाहिए अर्थात '(ज्ञान) रात्रि के जानकारोंसे' नहीं बल्कि 'सुप्रतिष्ठित' या 'अनुभवी' से। वस्तुतः यह शब्द उस व्यक्ति के लिए आया है जिसने प्रव्रजित होने के बाद अनेक रातें ध्यान में बितायी हैं। दूसरी बात यह है कि प्रव्रजित भिक्षु रात को व्यर्थ नहीं गँवाते, वे रात की नीरवता में ध्यान कर प्रज्ञा की प्राप्ति करते हैं जिसके फलस्वरूप वे प्रसिद्ध होते हैं। ऐसी रातों को जानने वालों को **'रत्तञ्ञू'** कहा गया है, अर्थात 'अभिज्ञात, सम्मानित, ज्ञानी' आदि। रीज डेविड्स ने इसका अनुवाद रिकोग्नाइज्ड (अभिज्ञात, सम्मानित) तथा ऑफ लॉंग स्टेन्डिंग (चिरकालिक) किया है।

२ शाक्य देश में कपिलवत्थु नगर के पास द्रोणवस्तु ग्राम में, ब्राह्मण-कुल में जन्म।

३ मगध देश में राजगृह नगर से अविदूर उपतिस्स ग्राम=नालक ग्राम (=वर्तमान सारिचक, बड़गांव-नालंदा के पास, जि० नालंदा में ब्राह्मण-कुल में जन्म।)

४ मगध-देश में राजगृह से अविदूर कोलित ग्राम में, ब्राह्मण-कुल में जन्म।

५ मगध-देश में, महातीर्थ ब्राह्मण-ग्राम में, ब्राह्मण-कुल में जन्म।

६ शाक्य देश में, कपिलवत्थु नगर में, भगवान के चाचा अमतोदन शाक्य के पुत्र; क्षत्रिय-कुल में जन्म।

७ शाक्य देश में, कपिलवत्थु नगर में, क्षत्रिय-कुल में जन्म।

१९४. मधुर-स्वर वालों में अग्र लकुण्डक-भद्दिय[१]

१९५. सिंहनाद करने वालों में अग्र पिण्डोलभारद्वाज[२]

१९६. धर्मकथिकोंमें अग्र मन्ताणि-पुत्र पुण्ण[३]

१९७. संक्षिप्त कहेका विस्तार से अर्थ करनेवालों में अग्र महाकच्चान[४]

२. द्वितीय वर्ग

१९८. "भिक्षुओ, मेरे भिक्षु-श्रावकोंमें ये अग्र हैं –

मनोमय-काया निर्माण कर सकने वालों में अग्रचूळपन्थक[५]

१९९. चित्त-विवर्त (भव-चक्र को विवर्तित करने के लिए कुशल चित्तकर्म करने वालों में) कुशलों में अग्रचूळपन्थक

२००. संज्ञा-विवर्त-कुशलों में अग्र महापन्थक[६]

२०१. शांतचित्त विहारियों में अग्र सुभूति[७]

२०२. दाक्षिणेय्यों में अग्र सुभूति

२०३. आरण्यकोंमें अग्र खदिरवनिय रेवत[८]

२०४. ध्यानियों में अग्र कङ्खारेवत[९]

२०५. अत्यधिक प्रयत्नशीलों में अग्रसोण कोळिविस[१०]

२०६. सुस्पष्ट वाणी बोलने वालों में अग्र सोण कुटिकण्ण[११]

२०७. लाभ प्राप्त करने वालों में अग्रसीवलि[१२]

२०८. श्रद्धाधिमुक्तों में (जिनकीश्रद्धा में गहरी रुचि है) अग्र वक्कलि[१३]

---

१ कोसल देश में, श्रावस्ती नगर में, धनी कुलमें।

२ मगध, राजगृह में, ब्राह्मण कुलमें।

३ शाक्य, कपिलवस्तु के समीप द्रोणवस्तु ब्राह्मण-ग्राम में, ब्राह्मणकुल।

४ अवन्ती देश, उज्जयिनी में, ब्राह्मण कुलमें।

५ मगध, राजगृह, श्रेष्ठी-कन्या-पुत्र।

६ मगध, राजगृह, श्रेष्ठी-कन्या-पुत्र।

७ कोसल, श्रावस्ती, वैश्यकुलमें।

८ मगध, नालक ब्राह्मण-ग्राम में (सारिपुत्त के अनुज)।

९ कोसल, श्रावस्ती, महाभोग-कुलमें।

१० अंगदेश, चम्पानगर में, श्रेष्ठी-कुलमें।

११ अवन्ती देश, कुररघर में, वैश्य कुलमें।

१२ शाक्य, कुंडिया (कोलीय-दुहिता सुप्पवासा का पुत्र) क्षत्रिय कुल।

१३ कोसल, श्रावस्ती, ब्राह्मण कुल।

३. तृतीय वर्ग

२०९. "भिक्षुओ, मेरे भिक्षु-श्रावकों में अग्र हैं –

शिक्षाकामियों में अग्र राहुल[१]

२१०. श्रद्धा से प्रव्रजितों में अग्र रट्ठपाल[२]

२११. प्रथम शलाका ग्रहण करने वालों में अग्रकुण्डधान[३]

२१२. क्षिप्रप्रज्ञों [प्रतिभावानों (कवियों)] में अग्र वङ्गीस[४]

२१३. सबको प्रसन्न करने वालों में अग्रवङ्गन्त-पुत्र उपसेन[५]

२१४. शयनासन व्यवस्थापकों में अग्र मल्ल-पुत्र दब्ब[६]

२१५. देवताओं के प्रियों में अग्र पिलिन्दवच्छ[७]

२१६. क्षिप्र-अभिज्ञा प्राप्त करने वालों में अग्र बाहिय दारुचीरिय[८]

२१७. धुरंधर वक्ताओं में अग्र कुमारकस्सप[९]

२१८. प्रतिसम्भिदा प्राप्त करने वालों में अग्र महाकोट्ठित[१०]

४. चतुर्थ वर्ग

२१९. भिक्षुओ, मेरे भिक्षु-श्रावकों में ये अग्र हैं –

बहुश्रुतों में अग्र – आनन्द।

२२०. स्मृतिमानों में अग्र – आनन्द।

२२१. प्रवीणों (चतुरों) में अग्र – आनन्द।

२२२. धृतिमानों में अग्र – आनन्द।

२२३. सेवकों में अग्र – आनन्द[११]।

---

१ शाक्य, कपिलवस्तु (सिद्धार्थ कुमार के पुत्र) क्षत्रिय कुल।

२ कुरुदेश, थुल्लकोट्ठित, वैश्य कुल।

३ कोसल, श्रावस्ती, ब्राह्मण कुल।

४ कोसल, श्रावस्ती, ब्राह्मण कुल।

५ मगध, नालक ब्राह्मण-ग्राम (सारिपुत्त के अनुज) ब्राह्मण कुल।

६ मल्लदेश, अनुपियानगर, क्षत्रिय कुल।

७ कोसल, श्रावस्ती, ब्राह्मण कुल।

८ बाहिय राष्ट्र (=सतलज व्यास का दोआब, जालंधर, होशियारपुर के जिले और कपूरथला राज्य) में उत्पन्न।

९ मगध, राजगृह।

१० कोसल, श्रावस्ती, ब्राह्मण कुल।

११ शाक्य, कपिलवस्तु, अमतोदन पुत्र, क्षत्रिय कुल।

२२४. महापरिषद वालों (जिनके अनुयायियों की संख्या अधिक हो) में अग्र उरुवेल कस्सप[१]

२२५. कुलों को प्रसन्न करने वालों में अग्र काळुदायी[२]

२२६. निरोगों में अग्र बाकुल[३]

२२७. पूर्वजन्म स्मरण करने वालों में अग्र सोभित[४]

२२८. विनयधरों में अग्र उपालि[५]

२२९. भिक्षुणियों को उपदेश देने में अग्र नन्दक[६]

२३०. इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करने वालों में अग्र नन्द[७]

२३१. भिक्षुओं को उपदेश देने में अग्र महाकप्पिन[८]

२३२. तेजोधातु को आलंबन बनाकर ध्यानकुशलोंमें अग्र सागत[९]

२३३. हाजिरजवाबी वक्ताओं (पटिभानेय्यकों) में अग्र राध[१०]

२३४. मोटे (रूक्ष) चीवरधारियों में अग्र मोघराज[११]

५. पंचम वर्ग

२३५. "भिक्षुओ, मेरी भिक्षुणी-श्राविकाओं में ये अग्र हैं –

दीर्घकालीनों (दीर्घकाल तक भिक्षुणी बने रहने वालियों) में अग्र महापजापतिगोतमी[१२]

२३६. महाप्रज्ञावतियों में अग्र खेमा[१३]

२३७. ऋद्धिमतियों में अग्र उप्पलवण्णा[१४]

१ काशी देश, वाराणसी नगर, ब्राह्मण कुल।

२ शाक्य, कपिलवत्थु अमात्य के घर में।

३ वत्स्य देश, कोशाम्बी, वैश्य कुल।

४ कोसल, श्रावस्ती, ब्राह्मण कुल में।

५ शाक्य, कपिलवत्थु, नाई कुल।

६ कोशल, श्रावस्ती, कुलगृह।

७ शाक्य, कपिलवत्थु (महाप्रजापतिपुत्र) क्षत्रिय कुल।

८ सीमांत (प्रत्यंत) देश कुक्कुटवतीनगर, राजवंश।

९ कोसल, श्रावस्ती, ब्राह्मण कुल।

१० मगध, राजगृह, ब्राह्मण कुल।

११ कोशल, श्रावस्ती, (बावरि शिष्य) ब्राह्मण कुल।

१२ शाक्य, कपिलवत्थु, सुद्धोदन भार्या, क्षत्रिय कुल।

१३ मद्रदेश, सागल (स्यालकोट) नगर, राजपुत्री, मगधराज बिंबिसार की भार्या।

१४ कोशल, श्रावस्ती, श्रेष्ठी कुल।

२३८. विनय-धारियों में अग्र पटाचारा[१]

२३९. धर्म-कथा कहने वालियों में अग्र धम्मदिन्ना[२]

२४०. ध्यानियों में अग्र नन्दा[३]

२४१. अत्यधिक प्रयत्नशीलों में अग्र सोणा[४]

२४२. दिव्यचक्षु वालियों में अग्र बकुला[५]

२४३. क्षिप्र-अभिज्ञा प्राप्त करने वालियों में अग्र भद्दा कुण्डलकेसा[६]

२४४. पूर्वजन्म अनुस्मरण करने वालियों में अग्र भद्दा कापिलानी[७]

२४५. महा अभिज्ञाप्राप्तों में अग्र भद्दकच्चाना[८]

२४६. मोटे (रूक्ष) चीवर धारण करने वालियों में अग्र किसागोतमी[९]

२४७. श्रद्धाधिमुक्तों में अग्र सिङ्गालक माता[१०]

६. षष्ठ वर्ग

२४८. "भिक्षुओ, मेरे उपासक श्रावकों में ये अग्र हैं –
सर्वप्रथम शरण में आने वालों में अग्र तपुस्स[११] और भल्लिक[१२] वणिक

२४९. दायकों में अग्र अनाथपिण्डिक सुदत्त गृहपति[१३]

२५०. धर्मकथिकों में अग्रमच्छिकासण्डिक चित्त गृहपति[१४]

२५१. चार संग्रह वस्तुओं से (दान, मधुर वचन, उपयोगी जीवन, न्यायपूर्ण व्यवहार) परिषद का संग्रह करने वालों में अग्र हत्थक आळवक[१५]

१ कोशल, श्रावस्ती, श्रेष्ठी कुल।

२ मगध, राजगृह, विसाख श्रेष्ठी की भार्या।

३ शाक्य, कपिलवस्तु, महाप्रजापति गोतमी की पुत्री।

४ कोसल, श्रावस्ती, कुलगृह।

५ कोसल, श्रावस्ती, कुलगृह।

६ मगध, राजगृह श्रेष्ठी कुल।

७ मद्रदेश, सागलनगर, ब्राह्मण कुल, (महाकस्सपभार्या)।

८ शाक्य, कपिलवस्तु, राहुलमाता (देवदहवासी सुप्पबुद्ध शाक्य की पुत्री), क्षत्रिय।

९ कोसल, श्रावस्ती, वैश्य।

१० मगध, राजगृह, श्रेष्ठी कुल।

११ असितञ्जन नगर, कुटुम्बिक गृह में।

१२ असितञ्जन नगर, कुटुम्बिक गृह में।

१३ कोसल, श्रावस्ती, सुमन श्रेष्ठी पुत्र।

१४ मगध, मच्छिकासंड, श्रेष्ठी कुल।

१५ पंचालदेश, आलवी, (=अरवल, जि० फर्रुखाबाद), राजकुमार।

२५२. उत्तम दान देने वालों में अग्र महानाम सक्क[१]
२५३. मनोहर वस्तुओं का दान देने वालों में अग्र वैशाली का उग्ग गृहपति[२]
२५४. संघसेवकों में अग्र उग्ग गृहपति[३]
२५५. अवेत्य (दृढ़) श्रद्धावानों में अग्र सूरम्बट्ठ[४]
२५६. लोगों द्वारा पसंद किये जाने वालों में अग्र कोमारभच्च जीवक[५]
२५७. विश्वस्त रूप से बातचीत करने वालों में अग्र नकुलपिता गृहपति[६]

७. सप्तम वर्ग

२५८. "भिक्षुओ, मेरी उपासिका श्राविकाओं में ये अग्र हैं –
प्रथम शरण आने वालियों में अग्र सेनानी दुहिता सुजाता[७]
२५९. दायिकाओं में अग्र विसाखा मिगार-माता[८]
२६०. बहुश्रुतों में अग्र खुज्जुत्तरा[९]
२६१. मैत्री विहार (=भावना) करने वालियों में अग्र सामावती[१०]
२६२. ध्यानियों में अग्र उत्तरा नन्दमाता[११]
२६३. प्रणीतदायिकाओं में अग्र सुप्पवासा कोलियधीता[१२]
२६४. रोगी सुश्रुषिकाओं में अग्र सुप्पिया उपासिका[१३]
२६५. अतीव प्रसन्नों में अग्र कातियानी[१४]

---

१ शाक्य, कपिलवत्थु, (अनुरुद्ध का ज्येष्ठ भ्राता), क्षत्रिय।

२ वज्जिदेश, वैशाली, श्रेष्ठी कुल।

३ वज्जिदेश, हस्तिग्राम, श्रेष्ठी कुल।

४ कोसल, श्रावस्ती, श्रेष्ठी कुल।

५ मगध, राजगृह, अभयकुमार से सालवतिका गणिका से उत्पन्न।

६ भग्ग (=भर्गदेश) (सुंसुमारगिरि) श्रेष्ठी कुल।

७ मगध, उरुवेला के सेनानीग्राम, सेनानी कुटुम्बिक की पुत्री।

८ कोसल, श्रावस्ती, वैश्य।

९ वत्स्य, कौशाम्बी, घोसक श्रेष्ठी की दाई की पुत्री।

१० भद्रवति राष्ट्र, भद्दिया (=भद्रिका) नगर, भद्रवतिक श्रेष्ठी पुत्री; (पश्चात वत्स, कौशाम्बी, घोषित, श्रेष्ठी की धर्म-पुत्री), वत्सराज उदयन की महिषी।

११ मगध, राजगृह, सुमन श्रेष्ठी के अधीन पूर्णसिंह की पुत्री।

१२ शाक्य, कुंडिया, सीवलीमाता-क्षत्रिय कुल।

१३ काशी देश, वाराणसी, कुलगृह (वैश्य कुल)

१४ अवन्ति, कुररघर, (वैश्य कुल), सोण कुटिकण्ण की माता

२६६. विश्वस्त रूप से बातचीत करने वालियों में अग्र नकुलमाता गृहपत्नी[1]

२६७. श्रवणमात्र से श्रद्धावान होने वालियों में अग्र कुलघरिका (कुरर घर वाली) काळी उपासिका[2]

* * * * *

१५. असंभव वर्ग

१. प्रथम वर्ग

२६८. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि (सम्यक) दृष्टि-प्राप्त मनुष्य किसी संस्कार को नित्य करके ग्रहण करे, इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि पृथग्जन किसी संस्कार को नित्य करके ग्रहण करे, इस बात की गुंजाइश है।

२६९. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि (सम्यक) दृष्टि-प्राप्त मनुष्य किसी संस्कार को सुख करके ग्रहण करे, इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि पृथग्जन किसी संस्कार को सुख करके ग्रहण करे, इस बात की गुंजाइश है।

२७०. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि (सम्यक) दृष्टि-प्राप्त मनुष्य किसी धर्म को आत्मा ('मैं', 'मेरा') करके ग्रहण करे, इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि पृथग्जन किसी धर्म को आत्मा करके ग्रहण करे, इस बात की गुंजाइश है।

२७१. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि (सम्यक) दृष्टि-प्राप्त मनुष्य अपनी माता की जान ले, इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि पृथग्जन अपनी माता की जान ले, इस बात की गुंजाइश है।

२७२. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि (सम्यक) दृष्टि-प्राप्त मनुष्य अपने पिता की जान ले, इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

---

१ भग्ग देश, सुंसुमारगिरि, (नकुलपिता गृहपति की भार्या)

२ मगध, राजगृह, कुलगृह में पैदा हुई; अवन्ती कुररघर में ब्याही।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि पृथग्जन अपने पिता की जान ले, इस बात की गुंजाइश है।

२७३. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि (सम्यक) दृष्टि-प्राप्त मनुष्य अर्हत की जान ले, इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि पृथग्जन अर्हत की जान ले, इस बात की गुंजाइश है।

२७४. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि (सम्यक) दृष्टि-प्राप्त मनुष्य प्रदुष्ट चित्त से तथागत के शरीर का खून बहावे, इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि पृथग्जन प्रदुष्ट चित्त से तथागत के शरीर का खूनबहावे, इस बात की गुंजाइश है।

२७५. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि (सम्यक) दृष्टि-प्राप्त मनुष्य संघ में भेद डाले, इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि पृथग्जन संघ में भेद डाले, इस बात की गुंजाइश है।

२७६. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि (सम्यक) दृष्टि-प्राप्त मनुष्य किसी दूसरे शास्ता की शरण ग्रहण करे, इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि पृथग्जन किसी दूसरे शास्ता की शरण ग्रहण करे, इस बात की गुंजाइश है।

२७७. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि एक ही लोकधातु (विश्व) में, एक ही समय में दो अर्हत सम्यक संबुद्ध एक साथ उत्पन्न हों, इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि एक ही लोकधातु में एक ही समय में एक अर्हत सम्यक संबुद्ध उत्पन्न हों, इस बात की गुंजाइश है।"

२. द्वितीय वर्ग

२७८. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि एक ही विश्व में, एक ही समय में दो चक्रवर्ती राजा एक साथ उत्पन्न हों, इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि एक ही विश्व में, एक ही समय में एक चक्रवर्ती राजा हो, इस बात की गुंजाइश है।

२७९. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि स्त्री अर्हत सम्यक संबुद्ध हो, इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि पुरुष अर्हत सम्यक संबुद्ध हो, इस बात की गुंजाइश है।

२८०. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि स्त्री चक्रवर्ती राजा हो सके, इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि पुरुष चक्रवर्ती राजा हो सके, इस बात की गुंजाइश है।

२८१-२८३. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि स्त्री शक्र बन सके ...मार बन सके ...ब्रह्म बन सके ,इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि पुरुष शक्र बन सके ... मार बन सके ... ब्रह्म बन सके, इस बात की गुंजाइश है।

२८४. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि कायिक दुश्चरित (शारीरिक दुष्कर्म, अकुशल कर्म) का इष्ट, प्रियकर, मनोनुकूल परिणाम हो, इसकी तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि कायिक दुश्चरित का अनिष्ट[1], अप्रियकर, प्रतिकूलपरिणाम हो, इसकी गुंजाइश है।

२८५. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि वाचिक दुश्चरित का इष्ट, प्रियकर,मनोनुकूलपरिणाम हो, इसकी तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि वाचिक दुश्चरित का अनिष्ट, अप्रियकर, प्रतिकूलपरिणाम हो, इसकी गुंजाइश है।

२८६. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि मानसिक दुश्चरित का इष्ट, प्रियकर,मनोनुकूलपरिणाम हो, इसकी तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि मानसिक दुश्चरित का अनिष्ट, अप्रियकर, प्रतिकूलपरिणाम हो, इसकी गुंजाइश है।"

३. तृतीय वर्ग

२८७. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि कायिक सुचरित (शारीरिक शुभकर्म, कुशल कर्म) का अनिष्ट, अप्रियकर, प्रतिकूल परिणाम हो, इसकी तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

---

१ अट्ठकथा के अनुसार **'पटिघनिमित्तन्ति अनिट्ठं निमित्तं'** – अर्थात प्रतिघ निमित्त का अर्थ अनिष्ट निमित्त।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि कायिक सुचरित का इष्ट, प्रियकर, मनोनुकूल परिणाम हो, इसकी गुंजाइश है।

२८८-२८९. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि वाचिक सुचरित का अनिष्ट, अप्रियकर, प्रतिकूल परिणाम हो, इसकी तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि वाचिक सुचरित का इष्ट, प्रियकर, मनोनुकूल परिणाम हो, इसकी गुंजाइश है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि मानसिक सुचरित का अनिष्ट, अप्रियकर, प्रतिकूल परिणाम हो, इसकी तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि मानसिक सुचरित का इष्ट, प्रियकर, मनोनुकूल परिणाम हो, इसकी गुंजाइश है।

२९०. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि कायिक दुष्कर्म करने वाला प्राणी उसके परिणामस्वरूप, उसके कारण, शरीर के न रहने पर, मरने के बाद सुगति प्राप्तकर स्वर्गलोक में उत्पन्न हो, इसकी तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि कायिक दुष्कर्म करने वाला प्राणी उसके परिणामस्वरूप, उसके कारण, शरीर के न रहने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति में पड़कर नरक में पैदा हो, इसकी गुंजाइश है।

२९१-२९२. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि वाचिक दुष्कर्म करने वाला प्राणी उसके परिणामस्वरूप, उसके कारण, शरीर के न रहने पर, मरने के बाद सुगति प्राप्तकर स्वर्गलोक में उत्पन्न हो, इसकी तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि वाचिक दुष्कर्म करने वाला प्राणी उसके परिणामस्वरूप, उसके कारण, शरीर के न रहने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति में पड़कर नरक में पैदा हो, इसकी गुंजाइश है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि मानसिक दुष्कर्म करने वाला प्राणी उसके परिणामस्वरूप, उसके कारण, शरीर के न रहने पर, मरने के बाद सुगति प्राप्तकर स्वर्गलोक में उत्पन्न हो, इसकी तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि मानसिक दुष्कर्म करने वाला प्राणी उसके परिणामस्वरूप, उसके कारण, शरीर के न रहने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति में पड़कर नरक में पैदा हो, इसकी गुंजाइश है।

२९३. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि कायिक सत्कर्म (शुभ कर्म, कुशल कर्म) करने वाला प्राणी उसके परिणामस्वरूप से, उसके कारण, शरीर के न रहने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति में पड़कर नरक में पैदा हो, इसकी तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि कायिक शुभ-कर्म करने वाला प्राणी, उसके परिणामस्वरूप, उसके कारण, शरीर के न रहने पर, मरने के बाद सुगति प्राप्तकर स्वर्गलोक में उत्पन्न हो, इसकी गुंजाइश है।

२९४-२९५. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि वाचिक शुभ-कर्म करने वाला प्राणी, उसके परिणामस्वरूप, उसके कारण, शरीर के न रहने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति में पड़कर नरक में पैदा हो, इसकी तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि वाचिक शुभ-कर्म करने वाला प्राणी, उसके परिणामस्वरूप, उसके कारण, शरीर के न रहने पर, मरने के बाद सुगति प्राप्तकर स्वर्गलोक में उत्पन्न हो, इसकी गुंजाइश है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि मानसिक शुभ-कर्म करने वाला प्राणी, उसके परिणामस्वरूप, उसके कारण, शरीर के न रहने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति में पड़कर नरक में पैदा हो, इसकी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि मानसिक शुभ-कर्म करने वाला प्राणी उसके परिणामस्वरूप, उसके कारण, शरीर के न रहने पर, मरने के बाद सुगति प्राप्तकर स्वर्गलोक में उत्पन्न हो, इसकी गुंजाइश है।"

* * * * *

१६. (बुद्धोपदिष्ट) एक धर्म

१. प्रथम वर्ग

२९६. "भिक्षुओ, एक ही धर्म है जिसका अभ्यास (भावना), जिसका बहुलीकरण (वृद्धि, संवर्धन), भिक्षु के संपूर्ण निर्वेद के लिए, वैराग्य (विराग) के लिए, निरोध के लिए, उपशमन के लिए, अभिज्ञा के लिए, संबोधि के लिए तथा निर्वाण-लाभ के लिए होता है। कौन-सा एक धर्म? बुद्धानुस्मृति।

"भिक्षुओ, इस एक धर्म की भावना, इस एक धर्म का बहुलीकरण, भिक्षु के संपूर्ण निर्वेद के लिए... होता है।

२९७. "भिक्षुओ, एक ही धर्म है जिसका अभ्यास, उसका बहुलीकरण, भिक्षु के संपूर्ण निर्वेद के लिए... होता है। कौन-सा एक धर्म? धर्मानुस्मृति। ...

संघानुस्मृति। ...शीलानुस्मृति। ...त्यागानुस्मृति। ...देवतानुस्मृति। ...आनापानस्मृति। ...मरणानुस्मृति। ...कायगतानुस्मृति। ...उपशमानुस्मृति।

"भिक्षुओ, इस एक धर्म की भावना, इस एक धर्म का बहुलीकरण, भिक्षु के संपूर्ण निर्वेद के लिए, वैराग्य के लिए, निरोध के लिए, उपशमन के लिए, अभिज्ञा के लिए, संबोधि के लिए तथा निर्वाण-लाभ के लिए होता है।"

२. द्वितीय वर्ग

२९८. "भिक्षुओ, मैं दूसरा कोई एक भी ऐसा धर्म (बात) नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न होते हों तथा उत्पन्न अकुशल-धर्मों में अत्यधिक विपुलता (वृद्धि) होती हो, जैसे भिक्षुओ, मिथ्यादृष्टि।

"भिक्षुओ, मिथ्यादृष्टि वाले में अनुत्पन्न अकुशल-धर्म पैदा हो जाते हैं, उत्पन्न अकुशल-धर्म अत्यधिक वैपुल्य को प्राप्त होते हैं।

२९९. "भिक्षुओ, मैं दूसरा कोई एक भी ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हों तथा उत्पन्न कुशल-धर्मों में अत्यधिक विपुलता होती हो, जैसे भिक्षुओ, सम्यक-दृष्टि।

"भिक्षुओ, सम्यक-दृष्टि वाले में अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं, उत्पन्न कुशल-धर्म अत्यधिक वैपुल्य को प्राप्त होते हैं।

३००. "भिक्षुओ, मैं दूसरा कोई एक भी ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न न होते हों अथवा उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि हो जाती हो जैसे भिक्षुओ, मिथ्यादृष्टि।

"भिक्षुओ, मिथ्यादृष्टि वाले में अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न नहीं होते, उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानिहो जाती है।

३०१. "भिक्षुओ, मैं दूसरा कोई एक भी ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न न हों अथवा उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि न हो, जैसे भिक्षुओ, सम्यक-दृष्टि।

"भिक्षुओ, सम्यक-दृष्टि वाले में अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानिहो जाती है।

३०२. "भिक्षुओ, मैं दूसरा कोई एक भी ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न मिथ्यादृष्टि उत्पन्न हो जाती हो अथवा उत्पन्न मिथ्यादृष्टि वृद्धि को प्राप्त करती हो, जैसे यह अयथार्थ चिंतन करना।

"भिक्षुओ, अयथार्थ चिंतन करने से अनुत्पन्न मिथ्यादृष्टि उत्पन्न हो जाती है और उत्पन्न मिथ्यादृष्टि वृद्धि को प्राप्त करती है।

३०३. "भिक्षुओ, मैं दूसरा कोई एक भी ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न सम्यक-दृष्टि उत्पन्न हो जाती हो अथवा उत्पन्न सम्यक-दृष्टि वृद्धि को प्राप्त करती हो, जैसे यह यथार्थ चिंतन करना।

"भिक्षुओ, यथार्थ चिंतन करने से अनुत्पन्न सम्यक-दृष्टि उत्पन्न हो जाती है और उत्पन्न सम्यक-दृष्टि वृद्धि को प्राप्त करती है।

३०४. "भिक्षुओ, मैं दूसरा कोई एक भी ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे प्राणी शरीर के न रहने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति को प्राप्तकर नरक में पैदा होते हैं जैसे कि भिक्षुओ, मिथ्यादृष्टि।

"भिक्षुओ, मिथ्यादृष्टि से युक्त प्राणी शरीर के न रहने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति को प्राप्तकर नरकमें पैदा होते हैं।

३०५. "भिक्षुओ, मैं दूसरा कोई एक भी ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे प्राणी शरीर के न रहने पर, मरने के बाद सुगति प्राप्तकर स्वर्गलोक में उत्पन्न होते हैं, जैसे कि भिक्षुओ, सम्यक-दृष्टि।

"भिक्षुओ, सम्यक-दृष्टि से युक्त प्राणी शरीर के न रहने पर, मरने के बाद सुगति प्राप्तकर स्वर्गलोक में उत्पन्न होते हैं।

३०६. "भिक्षुओ, मिथ्यादृष्टि वाले प्राणी के जो भी मिथ्यादृष्टि के अनुसार किये गये कायिक-कर्महैं, जो भी वाचिक-कर्म हैं... जो भी मानसिक-कर्महैं... जो भी चेतना है, जो भी कामनाएं हैं, जो भी संकल्प हैं तथा जितने भी संस्कार हैं वे सभी धर्म के अनिष्ट के लिए, अप्रियकर होने के लिए, प्रतिकूल होने के लिए, अहित के लिए तथा दुःख के लिए होते हैं। ऐसा किसलिए? भिक्षुओ, दृष्टि ही बुरी है।

"भिक्षुओ, जैसे नीम का बीज हो, कोसातकी-बीजहो वा कड़वी लौकी का बीज हो और वह गीली जमीन में गाड़ा गया हो, वह जितना भी पृथ्वी-रस को ग्रहण करता है, जितना भी उदक-रस को ग्रहण करता है, वह सब तिक्त ही होता है, कड़वा ही होता है, अरुचिकर ही होता है। यह किसलिए? भिक्षुओ, बीज ही खराब है। इसी प्रकार भिक्षुओ, मिथ्या-दृष्टि वाले प्राणी के जो भी... कायिक-कर्महैं... जो भी वाचिक-कर्महैं... जो भी मानसिक-कर्म हैं... भिक्षुओ, दृष्टि ही बुरी है।

३०७. "भिक्षुओ, सम्यक-दृष्टि वाले प्राणी के जो भी सम्यक-दृष्टि के अनुसार किये गये कायिक-कर्महैं, जो भी वाचिक-कर्म हैं... जो भी मानसिक-कर्महैं... जो भी चेतना है, जो भी कामनाएं है, जो भी संकल्प हैं

तथा जितने भी संस्कार हैं वे सभी धर्म इष्ट के लिए, रुचि के लिए, मनोनुकूल होने के लिए, हित के लिए तथा सुख के लिए होते हैं। ऐसा किसलिए? भिक्षुओ, दृष्टि ही अच्छी है।

"भिक्षुओ, जैसे ऊख का बीज हो, धान का बीज हो या अंगूर का बीज हो और वह गीली जमीन में गाड़ा गया हो, वह जितना भी पृथ्वी-रस को ग्रहण करता है, जितना भी उदक-रस को ग्रहण करता है, वह सब मधुर ही होता है, रुचिकर ही होता है, स्वादिष्ट ही होता है। यह किसलिए? भिक्षुओ, बीज ही अच्छा है। इसी प्रकार भिक्षुओ, सम्यक-दृष्टि वाले प्राणी के जो भी... कायिक-कर्म हैं... जो भी वाचिक-कर्म हैं... जो भी मानसिक-कर्म हैं... भिक्षुओ, दृष्टि ही अच्छी है।"

३. तृतीय वर्ग

३०८. "भिक्षुओ, लोक में एक आदमी बहुत जनों के अहित के लिए, बहुत जनों के असुख के लिए, बहुत जनों के तथा देव-मनुष्यों के अनर्थ के लिए, अहित के लिए तथा दुःख के लिए पैदा होता है।

"कौन-सा एक आदमी?

"मिथ्यादृष्टिक जो विपरीत-दर्शन वाला होता है, वह बहुत जनों को सद्धर्म की ओर से हटाकर असद्धर्ममें प्रतिष्ठापित कर देता है।

"भिक्षुओ, लोक में यह एक आदमी... दुःख के लिए पैदा होता है।"

३०९. "भिक्षुओ, लोक में एक आदमी बहुत जनों के हित के लिए, बहुत जनों के सुख के लिए, बहुत जनों के तथा देव-मनुष्यों के अर्थ के लिए, हित के लिए तथा सुख के लिए पैदा होता है।

"कौन-सा एक आदमी?

"सम्यक-दृष्टिक जो अविपरीत-दर्शन वाला होता है, वह बहुत जनों को असद्धर्म से हटाकर सद्धर्म में प्रतिष्ठापित कर देता है।

"भिक्षुओ, लोक में यह एक आदमी... सुख के लिए पैदा होता है।

३१०. "भिक्षुओ, मैं दूसरा कोई भी ऐसा धर्म नहीं जानता जो इतना महादोषपूर्ण हो जितना कि यह मिथ्यादृष्टि।

"भिक्षुओ, मिथ्यादृष्टि सर्वाधिक दोषपूर्ण है।

३११. "भिक्षुओ, मैं दूसरे किसी भी एक आदमी को नहीं जानता जो इस प्रकार बहुत जनों का अहित करने में लगा हो, बहुत जनों को असुख पहुँचाने

में लगा हो, बहुत जनों तथा देव-मनुष्यों के अनर्थ के लिए हो, अहित के लिए हो और दुःख के लिए हो, जैसे कि भिक्षुओ, यह मूर्ख मक्खलि।

"भिक्षुओ, जैसे नदी के मुहाने पर जाल फैला हो, जो बहुत सी मछलियों के अहित के लिए हो, दुःख के लिए हो, क्लेश के लिए हो, कष्ट के लिए हो, इसी प्रकार भिक्षुओ, मूर्ख मक्खलि को मनुष्य-रूपी जाल मानना चाहिए, जो बहुत जनों के अहित के लिए, दुःख के लिए, क्लेश के लिए तथा कष्ट के लिए इस लोक[1] में उत्पन्न हुआ है।

३१२. "भिक्षुओ, दुराख्यात (गलत आख्यात किया गया, गलत कहा गया) धर्म-विनय जो किसी को देता है, जिसे देता है और जो तदनुसार आचरण करता है, ये सभी बहुत अपुण्यार्जन करते हैं। यह किसलिए? भिक्षुओ, धर्म के ही दुराख्यात होने के कारण।

३१३. "भिक्षुओ, सु-आख्यात (सही आख्यात किया गया, सही कहा गया) धर्म-विनय जो किसी को देता है, जिसे देता है और जो तदनुसार आचरण करता है, वे सभी बहुत पुण्यार्जन करते हैं। यह किसलिए? भिक्षुओ, धर्म के ही सु-आख्यात होने के कारण।

३१४. "भिक्षुओ, दुराख्यात धर्म-विनय में दायक को (दान की) मात्रा जाननी चाहिए, प्रतिग्राहक को नहीं। यह किसलिए? भिक्षुओ, धर्म के दुराख्यात होने के कारण।

३१५. "भिक्षुओ, सु-आख्यात धर्म-विनय में प्रतिग्राहक को मात्रा जाननी चाहिए, दायक को नहीं। यह किसलिए? भिक्षुओ, धर्म के सु-आख्यात होने के कारण।

३१६. "भिक्षुओ, दुराख्यात धर्म-विनय में जो अत्यधिक प्रयत्नशील (बहुपरिश्रमी) होता है वह कष्ट पाता है। यह किसलिए? भिक्षुओ, धर्म के दुराख्यात होने के कारण।

३१७. "भिक्षुओ, सु-आख्यात धर्म-विनय में जो आलसी होता है वह कष्ट पाता है। यह किसलिए? भिक्षुओ, धर्म के सु-आख्यात होने के कारण।

३१८. "भिक्षुओ, दुराख्यात धर्म-विनय में जो आलसी होता है वह सुख पाता है। यह किसलिए? भिक्षुओ, धर्म के दुराख्यात होने के कारण।

---

१ यहां पालि में **'दिट्ठधम्मिकं'** शब्द है । इसमें **'दिट्ठेव धम्मे इमस्मिं येव अत्तभावे उप्पन्नफलं'** का अर्थ 'इस लोक में' या 'इस जन्म में' है। इसका अर्थ कहीं-कहीं 'इस शरीर में' भी किया है जो पालि शब्द **'अत्तभाव'** से प्राप्त है।

३१९. "भिक्षुओ, सु-आख्यात धर्म-विनय में जो अत्यधिक प्रयत्नशील होता है वह सुख पाता है। यह किसलिए? भिक्षुओ धर्म के सु-आख्यात होने के कारण।

३२०. "भिक्षुओ, जैसे थोड़ा भी गूह (विष्ठा) दुर्गंध ही देता है इसी प्रकार भिक्षुओ, मैं थोड़े भी संसार (भव) की प्रशंसा नहीं करता, यहां तक कि चुटकी बजाने भर भी नहीं।

३२१. "भिक्षुओ, जैसे थोड़ा भी मूत्र दुर्गंध ही देता है, इसी प्रकार... चुटकी बजाने भर भी नहीं।

"भिक्षुओ, जैसे थोड़ा भी थूक दुर्गंध ही देता है, इसी प्रकार... चुटकी बजाने भर भी नहीं।

"भिक्षुओ, जैसे थोड़ी भी पीप दुर्गंध ही देती है, इसी प्रकार... चुटकी बजाने भर भी नहीं।

"भिक्षुओ, जैसे थोड़ा भी लहू दुर्गंध ही देता है, इसी प्रकार... चुटकी बजाने भर भी नहीं।"

४. चतुर्थ वर्ग

३२२. "भिक्षुओ, जैसे इस जंबुद्वीप में रमणीय उद्यान, रमणीय-वन, रमणीय-भूमि तथा रमणीय पुष्करणियां थोड़ी ही हैं, अधिकता तो ऊंची-नीची भूमि, नदियों के दुर्गम प्रदेश, झाड़-झँखाड़ वाली भूमि तथा दुर्लंघ्य पर्वत प्रदेशों की ही है।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, स्थल पर जन्म ग्रहण करने वाले (थलचर) प्राणी अल्पसंख्यक हैं, उन्हीं की संख्या अधिक है जो जल में उत्पन्न होने वाले (जलचर) हैं।

३२३. "इसी प्रकार भिक्षुओ... मनुष्य होकर जन्म ग्रहण करने वाले प्राणी अल्पसंख्यक हैं, ऐसे ही प्राणियों की संख्या अधिक है जो मनुष्येतर योनियों में जन्म ग्रहण करते हैं।

"इसी प्रकार भिक्षुओ... मध्यम-जनपदों में जन्म ग्रहण करने वाले प्राणी अल्पसंख्यक हैं, ऐसे ही प्राणियों की संख्या अधिक है जो प्रत्यंत जनपदों में अशिक्षित, म्लेच्छों में जन्म ग्रहण करते हैं।

३२४. "इसी प्रकार भिक्षुओ... जो प्राणी प्रज्ञावान हैं, जड़बुद्धि नहीं हैं, जिनके मुँह से लार नहीं टपकती (जिनका अपने आप पर संयम है) तथा जो सुभाषित-दुर्भाषित का अर्थ समझने में समर्थ हैं वे अल्पसंख्यक हैं, ऐसे ही

प्राणियों की संख्या अधिक है जो प्रज्ञावान नहीं हैं, जो जड़बुद्धि हैं, जिनके मुँह से लार टपकती है (संयम नहीं है) तथा जो सुभाषित-दुर्भाषित का अर्थ जानने में असमर्थ हैं।

३२५. "इसी प्रकार भिक्षुओ... आर्य प्रज्ञा-चक्षु से युक्त प्राणी अल्पसंख्यक हैं, ऐसे ही प्राणियों की संख्या अधिक है जो मूढ़ हैं, मिथ्यादृष्टि वाले (अविद्यागत) हैं।

३२६. "इसी प्रकार भिक्षुओ... जिन प्राणियों को तथागत का दर्शनलाभ होता है, वे अल्पसंख्यक हैं, ऐसे ही प्राणियों की संख्या अधिक है जिन्हें तथागत का दर्शनलाभ नहीं होता।

३२७. "इसी प्रकार भिक्षुओ... जिन प्राणियों को तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म-विनय सुनने के लिए मिलता है, वे अल्पसंख्यक हैं, उन्हीं की संख्या अधिक है जिन्हें तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म-विनय सुनने के लिए नहीं मिलता है।

३२८. "इसी प्रकार भिक्षुओ... जो प्राणी सुनकर धर्म को मन में धारण करते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, ऐसे ही प्राणियों की संख्या अधिक है जो सुनकर धर्म को मन में धारण नहीं करते।

३२९. "इसी प्रकार भिक्षुओ... जो प्राणी धारण[१] किये हुए धर्म के अर्थ की परीक्षा करते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, ऐसे ही प्राणियों की संख्या अधिक है जो धारण किए हुए धर्म के अर्थ की परीक्षा नहीं करते।

३३०. "इसी प्रकार भिक्षुओ... जो प्राणी अर्थ तथा धर्म को जानकर धर्मानुसार आचरण करते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, ऐसे ही प्राणियों की संख्या अधिक है जो अर्थ तथा धर्म को जानकर भी धर्मानुसार आचरण नहीं करते।

३३१. "इसी प्रकार भिक्षुओ... जो प्राणी संविग्न होने के स्थान पर संविग्न होते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, ऐसे ही प्राणियों की संख्या अधिक है जो संविग्न होने के स्थान पर संविग्न नहीं होते।

३३२. "इसी प्रकार भिक्षुओ... जो प्राणी संविग्न होकर यथार्थ से प्रयत्न करते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, ऐसे ही प्राणियों की संख्या अधिक है जो संविग्न होकर भी यथार्थ से प्रयत्न नहीं करते।

३३३. "इसी प्रकार भिक्षुओ... जो प्राणी व्यवसर्ग का आलंबन लेकर (निर्वाण के उद्देश्य से) समाधि लाभ करते हैं, चित्त की एकाग्रता प्राप्त करते हैं,

---

१ **'धातानं धम्मानं अत्थं उपपरिक्खन्ति'** – 'धारण किये हुए धर्मों के अर्थ की परीक्षा करते हैं' (देखें चङ्कीसुत्त)।

वे अल्पसंख्यक हैं, ऐसे ही प्राणियों की संख्या अधिक है जो व्यवसर्ग का आलंबन लेकर समाधि लाभ नहीं करते, चित्त की एकाग्रता प्राप्त नहीं करते।

३३४. "इसी प्रकार भिक्षुओ... जो प्राणी श्रेष्ठ, उत्तम खाद्य रस के लाभी हैं वे अल्पसंख्यक हैं, ऐसे ही प्राणियों की संख्या अधिक है जो श्रेष्ठ, उत्तम खाद्य रस के लाभी नहीं हैं, और उंछवृत्ति से प्राप्त (खेत में लुनाई के बाद या रास्ते में पड़े हुए दाने को जीविका के लिए चुनना) या भिक्षापात्र में एकत्र किया हुआ भोजन खा कर गुजारा करते है।

३३५. "इसी प्रकार भिक्षुओ... जो प्राणी अर्थ-रस, धर्म-रस तथा विमुक्ति-रस के लाभी हैं वे अल्पसंख्यक हैं, ऐसे ही प्राणियों की संख्या अधिक है जो अर्थ-रस, धर्म-रस, तथा विमुक्ति-रस के लाभी नहीं हैं। इसलिए भिक्षुओ, यही सीखना चाहिए कि हम अर्थ-रस, धर्म-रस तथा विमुक्ति-रस के लाभी होंगे। भिक्षुओ, ऐसा ही सीखना चाहिए।

३३६-३३८. "भिक्षुओ, जैसे इस जंबुद्वीप में रमणीय-उद्यान, रमणीय-वन, रमणीय-भूमि तथा रमणीय-पुष्करणियां थोड़ी ही हैं, अधिकता तो ऊंची-नीची भूमि, नदियों के दुर्गम प्रदेश, झाड़-झँखाड़ वाली भूमि तथा दुर्लंघ्य पर्वत प्रदेशों की ही है।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, जो मनुष्य-योनि से च्युत होकर फिर मनुष्य ही होकर जन्म ग्रहण करते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, उन्हीं प्राणियों की संख्या अधिक है जो मनुष्य-योनि से च्युत होकर नरक में पैदा होते हैं। ...पशु-योनि में पैदा होते हैं। ...प्रेत होकर पैदा होते हैं।

३३९-३४१. "...इसी प्रकार भिक्षुओ, जो प्राणी मनुष्य-योनि से च्युत होकर देवों में जन्म ग्रहण करते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, उन्हीं प्राणियों की संख्या अधिक है जो मनुष्य-योनि से च्युत होकर नरक में पैदा होते हैं। ...पशु-योनि में पैदा होते हैं। ...प्रेत होकर पैदा होते हैं।

३४२-३४४. "...इसी प्रकार भिक्षुओ, जो प्राणी देव-योनि से च्युत होकर देवों में जन्म ग्रहण करते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, उन्हीं प्राणियों की संख्या अधिक है जो देव-योनि से च्युत होकर नरक में जन्म ग्रहण करते हैं। ...पशु-योनि में जन्म ग्रहण करते हैं। ...प्रेत होकर जन्म ग्रहण करते हैं।

३४५-३४७. "...इसी प्रकार, भिक्षुओ, जो प्राणी देव-योनि से च्युत होकर मनुष्यों में जन्म ग्रहण करते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, उन्हीं प्राणियों की संख्या अधिक है जो देव-योनि से च्युत होकर नरक में जन्म ग्रहण करते हैं। ...पशु-योनि में जन्म ग्रहण करते हैं। ...प्रेत होकर जन्म ग्रहण करते हैं।

३४८-३५०. "...इसी प्रकार, भिक्षुओ, जो प्राणी नरक से च्युत होकर मनुष्य होकर जन्म ग्रहण करते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, उन्हीं प्राणियों की संख्या अधिक है जो नरक से च्युत होकर नरक में जन्म ग्रहण करते हैं। ...पशु-योनि में जन्म ग्रहण करते हैं। ...प्रेत होकर जन्म ग्रहण करते हैं।

३५१-३५३. "...इसी प्रकार, भिक्षुओ, जो प्राणी नरक से च्युत होकर देवों में जन्म ग्रहण करते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, उन्हीं प्राणियों की संख्या अधिक है जो नरक से च्युत होकर नरक में जन्म ग्रहण करते हैं। ...पशु-योनि में जन्म ग्रहण करते हैं। ...प्रेत होकर जन्म ग्रहण करते हैं।

३५४-३५६. "...इसी प्रकार, भिक्षुओ, जो प्राणी पशु-योनि से च्युत होकर मनुष्यों में जन्म ग्रहण करते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, उन्हीं प्राणियों की संख्या अधिक है जो पशु-योनि से च्युत होकर नरक में पैदा होते हैं। ...पशु-योनि में पैदा होते हैं। ...प्रेत होकर जन्म ग्रहण करते हैं।

३५७-३५९. "...इसी प्रकार, भिक्षुओ, जो प्राणी पशु-योनि से च्युत होकर देवों में जन्म ग्रहण करते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, उन्हीं प्राणियों की संख्या अधिक है जो पशु-योनि से च्युत होकर नरक में पैदा होते हैं। ...पशु-योनि में पैदा होते हैं। ...प्रेत होकर जन्म ग्रहण करते हैं।

३६०-३६२. "...इसी प्रकार, भिक्षुओ, जो प्राणी प्रेत-योनि से च्युत होकर मनुष्यों में जन्म ग्रहण करते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, उन्हीं की संख्या अधिक है जो प्रेत-योनि से च्युत होकर नरक में जन्म ग्रहण करते हैं। ...पशु-योनि में पैदा होते हैं। ...प्रेत होकर जन्म ग्रहण करते हैं।

३६३-३६५. "...इसी प्रकार, भिक्षुओ, जो प्राणी प्रेत-योनि से च्युत होकर देवों में जन्म ग्रहण करते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, उन्हीं की संख्या अधिक है जो प्रेत-योनि से च्युत होकर नरक में जन्म ग्रहण करते हैं। ...पशु-योनि में जन्म ग्रहण करते हैं। ...प्रेत होकर जन्म ग्रहण करते हैं।"

* * * * *

१७. प्रशांतकर धर्म वर्ग

३६६-३८१. "भिक्षुओ, यह जो आरण्यकत्व है, यह निश्चयपूर्वक लाभ है। यह जो पिंडपात्रिकत्व (मात्र भिक्षाटन से प्राप्त भोजन ग्रहण करना) है, यह जो पांशुकूलिकत्व (=फटे-पुराने चीथड़ों के चीवर धारण करना) है, यह जो त्रि-चीवरधारी होना है, यह जो धर्मकथिक होना है, यह जो विनयधर होना है, यह जो बहुश्रुत होना है, यह जो स्थविर होना है, यह जो चीवर का उचित रूप

से धारण करना है, यह जो अनुयायियों का होना है, यह जो बहुत अनुयायियों का होना है, यह जो श्रेष्ठ-कुलका होना है, यह जो परिष्कृत वर्ण वाला होना है, यह जो सुस्पष्ट वाणी वाला होना है, यह जो अल्पेच्छता है तथा यह जो निरोग होना है, यह सब निश्चयपूर्वक लाभ हैं।"

* * * * *

१८. क्षणिक वर्ग (द्वितीय)

३८२. "भिक्षुओ, यदि कोई भिक्षु चुटकी बजाने भर ही प्रथम ध्यान का अभ्यास करता है तो, हे भिक्षुओ, इतने से ही वह भिक्षु ध्यान से रिक्त नहीं हो (अरिक्तध्यानी हो) विचरण करता है, शास्ता के अनुशासन में रहने वाला, उनके उपदेश के अनुसार आचरण करने वाला वह भिक्षु व्यर्थ ही राष्ट्र-पिंड खाने वाला नहीं होता। जो भिक्षु, इसका बहुत अभ्यास करते हैं उनका तो कहना ही क्या।

३८३-३८९. "भिक्षुओ, यदि कोई भिक्षु, चुटकी बजाने भर भी दूसरे ध्यान का अभ्यास करता है...

"तीसरे ध्यान का अभ्यास करता है...

"चौथे ध्यान का अभ्यास करता है...

"मैत्री के आधार पर चित्त-विमुक्ति का अभ्यास करता है...

"करुणा के आधार पर चित्त-विमुक्ति का अभ्यास करता है...

"मुदिता के आधार पर चित्त-विमुक्ति का अभ्यास करता है...

"उपेक्षा के आधार पर चित्त-विमुक्ति का अभ्यास करता है...

३९०-३९३. "काया में कायानुपश्यी[१] होकर विहार करता है, श्रमशील, संप्रज्ञानी, स्मृतिमान तथा लोक (काया रूपी) में अभिध्या (लोभ) -दौर्मनस्य (द्वेष) को हटाकर;

"वेदनाओं में वेदनानुपश्यी होकर...

"चित्त में चित्तानुपश्यी होकर...

"धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर...

---

१ **'कायेकायानुपस्सी विहरति'** का अनुवाद 'काय के प्रति कायानुपश्यी होकर' भी किया जाता है। वस्तुतः इसका अर्थ है 'काया में कायानुपश्यी होकर विपश्यना करना'। इस साढ़े तीन हाथ की काया में ही अनुपश्यना करते हैं। जैसे आनापानसति इरियापथ आदि की जब हम अनुपश्यना करते हैं तब काया में ही करते हैं जो यथाभूत है। 'काया के प्रति' का तो अर्थ होगा 'काया के संबंध में, काया के विषय में' जो यथाभूत न होकर काल्पनिक भी हो सकता है।

३९४-३९७. "अनुत्पन्न पापपूर्ण अकुशल धर्मों को उत्पन्न न होने देने के लिए संकल्प (बलवती कामना) करता है, प्रयत्न करता है, पराक्रम (वीर्यारंभ) करता है, चित्त को उसी में लगाये रखता है, कठोरपरिश्रम करता है।

"उत्पन्न पापपूर्ण अकुशल-धर्मों के प्रहाण के लिए संकल्प करता है, प्रयत्न करता है, पराक्रम करता है, चित्त को उसी में लगाये रखता है, कठोर परिश्रम करता है।

"अनुत्पन्न कुशल-धर्मों को उत्पन्न करने के लिए संकल्प करता है, प्रयत्न करता है, पराक्रम करता है, चित्त को उसी में लगाये रखता है, कठोर परिश्रम करता है।

"उत्पन्न कुशल-धर्मों को स्थित करने के लिए, न भुलाने (लोप न होने) के लिए, बढ़ाने के लिए, विपुलता को प्राप्त कराने के लिए, भावना की पूर्णता को प्राप्त कराने के लिए संकल्प करता है, प्रयत्न करता है, पराक्रम करता है, चित्त को उसी में लगाये रखता है, कठोरपरिश्रम करता है।

३९८-४०१. "छंद (संकल्प)-समाधि-प्रधान-संस्कार युक्त ऋद्धि[1] की भावना (का अभ्यास) करता है...

"वीर्य (परिश्रम)-समाधि-प्रधान-संस्कार युक्त ऋद्धि की भावना करता है...

"चित्त-समाधि-प्रधान-संस्कार युक्त ऋद्धि की भावना करता है...

"मीमांसा-समाधि-प्रधान-संस्कार युक्त ऋद्धि की भावना करता है...

४०२-४०६. "श्रद्धा-इंद्रिय की भावना करता है...

"वीर्य-इंद्रिय की भावना करता है...

"स्मृति-इंद्रिय की भावना करता है...

"समाधि-इंद्रिय की भावना करता है...

"प्रज्ञा-इंद्रिय की भावना करता है...

४०७-४११. "श्रद्धा-बल की भावना करता है...

---

१ **इद्धिपाद** (ऋद्धिपाद) चार हैं:

(१) छन्दसमाधिपधान सङ्खारसमन्नागत = छंद (संकल्प) समाधि प्रधान (प्रयत्न) संस्कार (युक्त) ऋद्धि की भावना करता है।

(२) वीरियसमाधिपधान सङ्खारसमन्नागत = वीर्य (परिश्रम) संस्कार (युक्त) ऋद्धि की भावना करता है।

(३) चित्तसमाधिपधान सङ्खारसमन्नागत = चित्त युक्त ऋद्धि की भावना करता है।

(४) वीमंसासमाधिपधान सङ्खारसमन्नागत = मीमांसा युक्त ऋद्धि की भावना करता है।

"वीर्य-बल की भावना करता है...

"स्मृति-बल की भावना करता है...

"समाधि-बल की भावना करता है...

"प्रज्ञा-बल की भावना करता है...

४१२-४१८. "स्मृति-संबोधि-अंग की भावना करता है...

"धर्मविचय-संबोधि-अंग की भावना करता है...

"वीर्य-संबोधि-अंग की भावना करता है...

"प्रीति-संबोधि-अंग की भावना करता है...

"प्रश्रब्धि-संबोधि-अंग की भावना करता है...

"समाधि-संबोधि-अंग की भावना करता है...

"उपेक्षा-संबोधि-अंग की भावना करता है...

४१९-४२६. "सम्यक-दृष्टि की भावना करता है...

"सम्यक-संकल्प की भावना करता है...

"सम्यक-वाणी की भावना करता है...

"सम्यक-कर्मान्त की भावना करता है...

"सम्यक-आजीविका की भावना करता है...

"सम्यक-व्यायाम (प्रयत्न) की भावना करता है...

"सम्यक-स्मृति की भावना करता है...

"सम्यक-समाधि की भावना करता है...

४२७-४३४. "अपनी आंतरिक रूप-संज्ञा को जानकर बाहर के सीमित सुवर्ण-दुर्वर्ण रूपों को देखता है और उन्हें अपने वश में कर लेने पर उसकी धारणा होती है कि 'मैं जानता हूं, देखता हूं'...

"अपनी आंतरिक रूप-संज्ञा को जानकर बाहर के असीम सुवर्ण-दुर्वर्ण रूपों को देखता है और उन्हें अपने वश में कर लेने पर उसकी धारणा होती है कि 'मैं जानता हूं, देखता हूं'...

"अपनी आंतरिक अरूप-संज्ञा को जानकर बाहर के सीमित सुवर्ण-दुर्वर्ण रूपों को देखता है और उन्हें अपने वश में कर लेने पर उसकी धारणा होती है कि 'मैं जानता हूं, देखता हूं'...

"अपनी आंतरिक अरूप-संज्ञा को जानकर बाहर के असीम सुवर्ण-दुर्वर्ण रूपों को देखता है और उन्हें अपने वश में कर लेने पर उसकी धारणा होती है कि 'मैं जानता हूं, देखता हूं'...

"अपनी आंतरिक अरूप-संज्ञा को जानकर बाहर के नीले, नील-वर्ण के, नील रंग के उदाहरण वाले (नील रंग जैसे) तथा नीली-चमक के रूपों को देखता है और उन्हें अपने वश में कर लेने पर उसकी धारणा होती है कि 'मैं जानता हूं, देखता हूं'...

"अपनी आंतरिक अरूप-संज्ञा को जानकर बाहर के पीले, पीत-वर्ण के, पीले रंग के उदाहरण वाले तथा पीली-चमक के रूपों को देखता है...

"अपनी आंतरिक अरूप-संज्ञा को जानकर बाहर के लाल, रक्त-वर्ण के, लाल रंग के उदाहरण वाले तथा लाल-चमक के रूपों को देखता है...

"अपनी आंतरिक अरूप-संज्ञा को जानकर बाहर के सफेद, श्वेत-वर्ण के, सफेद रंग के उदाहरणवाले, सफेद-चमक के रूपों को देखता है...

४३५-४४२. "रूप वाला (भौतिक शरीर वाला होकर) होकर रूपों को देखता है...

"अपनी आंतरिक अरूप-संज्ञा को जानकर बाहर के रूपों को देखता है और उन्हें अपने वश में कर लेने पर उसकी धारणा होती है कि 'मैं जानता हूं, देखता हूं...

"शोभन[1] है" धारणा वाला होकर (वह ध्यान करने के लिए) प्रवृत्त होता है।

"सब प्रकार से रूप-संज्ञाओं का अतिक्रमण कर, प्रतिघ-संज्ञाओं को अस्त कर, नानात्व-संज्ञाओं को मन से दूर कर 'आकाश अनंत है' ऐसा मान कर आकासानञ्चायतन को प्राप्त कर विहार करता है...

"सब प्रकार से आकासानञ्चायतन का अतिक्रमण कर 'विज्ञानान्त्यायतन है' ऐसा मानकर विज्ञानान्त्यायतन को प्राप्त कर विहार करता है...

"सब प्रकार से विज्ञानान्त्यायतन का अतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है' ऐसा मानकर 'आकिञ्चञ्ञायतन' को प्राप्त कर विहार करता है...

"सब प्रकार से 'आकिञ्चञ्ञायतन' का अतिक्रमण कर 'नैवसंज्ञानासंज्ञायतन' को प्राप्त कर विहार करता है...

"सब प्रकार से 'नैवसंज्ञानासंज्ञायतन' का अतिक्रमण कर 'सञ्ञावेदयितनिरोध' को प्राप्त कर विहार करता है...

४४३-४५२. "पृथ्वी-कसिण की भावना करता है...

१ यहां **'अधिमुत्तो'** (बु. सं. अधिमुक्त) का अर्थ 'प्रवृत्त होना' है। अतः **'सुभन्तेव अधिमुत्तो होति'** का अर्थ 'शोभन है' में प्रवृत्त होता है। इसका अर्थ 'शोभन है' इसी धारणा वाला होता है। पर यहां अर्थ सिर्फ 'धारणा वाला होना' नहीं, बल्कि प्रवृत्त होना है।

"जल-कसिण की भावना करता है...
"तेज (=अग्नि)-कसिण की भावना करता है...
"वायु-कसिण की भावना करता है...
"नील-कसिण की भावना करता है...
"पीत-कसिण की भावना करता है...
"लोहित-कसिण की भावना करता है...
"अवदात (=श्वेत)-कसिण की भावना करता है...
"आकाश-कसिणकी भावना करता है...
"विज्ञान-कसिण की भावना करता है...
४५३-४६२. अशुभ-संज्ञा की भावना करता है...
"मरण-संज्ञा की भावना करता है...
"आहार के संबंध में प्रतिकूल-संज्ञा की भावना करता है...
"सारे लोक के प्रति अनासक्ति-भाव की भावना करता है ...
"अनित्य-संज्ञा की भावना करता है...
"अनित्य में दुःख-संज्ञा की भावना करता है...
"दुःख में अनात्म-संज्ञा की भावना करता है...
"प्रहाण-संज्ञा की भावना करता है...
"वैराग्य-संज्ञा की भावना करता है...
"निरोध-संज्ञा की भावना करता है...
४६३-४७२. "अनित्य-संज्ञा की भावना करता है...
"अनात्म-संज्ञा की भावना करता है...
"मरण-संज्ञा की भावना करता है...
"आहार के संबंध में प्रतिकूल संज्ञा की भावना करता है...
"सारे लोक के प्रति अनासक्ति-भाव की भावना करता है...
"अस्थि-संज्ञा की भावना करता है...
"(लाश में) कीड़े पड़ जाने की संज्ञा की भावना करता है...
"नीली पड़ जाने की संज्ञा की भावना करता है...
"क्षतविक्षत हो जाने की संज्ञा की भावना करता है...
"सूज जाने की संज्ञा की भावना करता है...
४७३-४८२. "बुद्धानुस्मृति की भावना करता है...

"धर्मानुस्मृति की भावना करता है...
"संघानुस्मृति की भावना करता है...
"शील-अनुस्मृति की भावना करता है...
"त्यागानुस्मृति की भावना करता है...
"देवतानुस्मृति की भावना करता है...
"आनापान-स्मृति की भावना करता है...
"मरण-स्मृति की भावना करता है...
"कायगत-स्मृति की भावना करता है...
"उपशमानुस्मृति की भावना करता है...
४८३-४९२. "प्रथम ध्यान के साथ श्रद्धा-इंद्रिय की भावना करता है...
"प्रथम ध्यान के साथ वीर्य-इंद्रिय की भावना करता है...
"प्रथम ध्यान के साथ स्मृति-इंद्रिय की भावना करता है...
"प्रथम ध्यान के साथ समाधि-इंद्रिय की भावना करता है...
"प्रथम ध्यान के साथ प्रज्ञा-इंद्रिय की भावना करता है...
"प्रथम... श्रद्धा-बल की भावना करता है...
"प्रथम... वीर्य-बल की भावना करता है...
"प्रथम... स्मृति-बल की भावना करता है...
"प्रथम... समाधि-बल की भावना करता है...
"प्रथम... प्रज्ञा-बल की भावना करता है...
४९३-५६२. "द्वितीय ध्यान के साथ...
"तृतीय ध्यान के साथ...
"चतुर्थ ध्यान के साथ...
"मैत्री के साथ...
"करुणा के साथ...
"मुदिता के साथ...
"उपेक्षा के साथ...
"श्रद्धा-इंद्रिय की भावना करता है...
"वीर्य-इंद्रिय की भावना करता है...
"स्मृति-इंद्रिय की भावना करता है...
"समाधि-इंद्रिय की भावना करता है...

"प्रज्ञा-इंद्रिय की भावना करता है...
"श्रद्धा-बल की भावना करता है...
"वीर्य-बल की भावना करता है...
"स्मृति-बल की भावना करता है...
"समाधि-बल की भावना करता है...
"प्रज्ञा-बल की भावना करता है...

"इस प्रकार के भिक्षु को, हे भिक्षुओ! अरिक्तध्यानी कहते हैं, शास्ता के अनुशासन में रहने वाला, उनके उपदेश के अनुसार आचरण करने वाला वह भिक्षु व्यर्थ ही राष्ट्र-पिंड खाने वाला नहीं होता। जो भिक्षु इसका बहुत अभ्यास करते हैं, उनका तो कहना ही क्या!"

* * * * *

१९. कायगत-स्मृति वर्ग

५६३. "भिक्षुओ, जो कोई भी चित्त से महासमुद्र का स्पर्श करता है (चिंतन करता है), समुद्र में पड़ने वाली छोटी नदियां भी उसके अंतर्गत ही आ जाती हैं, इसी प्रकार भिक्षुओ, जो कोई कायगत-स्मृति को भावित कर लेता है, उसका बहुलीकरण कर लेता है, तो जितने भी विद्यापक्षीय कुशल-धर्म हैं उन सबका समावेश उसके अंतर्गत हो जाता है।

५६४-५७०. "भिक्षुओ, एक धर्म की भावना, बहुलीकरण महान संवेग के लिए होता है। ...

"महान अर्थ के लिए होता है...
"महान योग-क्षेम (कल्याण) के लिए होता है...
"स्मृति-संप्रज्ञान के लिए होता है...
"ज्ञान-दर्शन-लाभ के लिए होता है...
"इसी जन्म में सुखपूर्वक रहने के लिए होता है ...
"विद्या-विमुक्ति-फल के साक्षात करने के लिए होता है।

"कौन-सा एक धर्म? कायगतस्मृति। भिक्षुओ, यही एक धर्म है जिसकी भावना... विद्या-विमुक्ति-फल के साक्षात करने के लिए होता है।

५७१. "भिक्षुओ, एक धर्म के भावित करने पर, बहुलीकरण करने पर काया भी प्रश्रब्ध होती है, चित्त भी प्रश्रब्ध होता है, वितर्क-विचार भी उपशमित हो जाते हैं तथा सारे के सारे विद्यापक्षीय धर्म भावना की परिपूर्णता

को प्राप्त हो जाते हैं। किस एक धर्म के ? कायगत-स्मृति के। भिक्षुओ, इस एक धर्म को भावित... प्राप्त हो जाते हैं।

५७२. "भिक्षुओ, एक धर्म के भावित करने पर, बहुलीकरण करने पर अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न नहीं होते, उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि हो जाती है। किस एक धर्मके ? कायगत-स्मृतिके।

"भिक्षुओ, इस एक धर्म के भावित... परिहानि हो जाती है।

५७३. "भिक्षुओ, एक धर्म के भावित करने पर, बहुलीकरण करने पर अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं, उत्पन्न कुशल-धर्म अत्यधिक वैपुल्य को प्राप्त होते हैं। किस एक धर्मके ? कायगत-स्मृतिके।

"भिक्षुओ, इस एक धर्म के भावित... प्राप्त होते हैं।

५७४. "भिक्षुओ, एक धर्म के भावित करने पर, बहुलीकरण करने पर अविद्या का प्रहाण होता है, विद्या उत्पन्न होती है, अहंकार का नाश होता है, अनुशयों का समुद्धात होता है तथा संयोजनों का प्रहाण होता है। किस एक धर्म के ? कायगत-स्मृतिके।

"भिक्षुओ, इस एक धर्म के भावित... प्रहाण होता है।

५७५-५७६. "भिक्षुओ, एक धर्म की भावना, बहुलीकरण प्रज्ञा के प्रस्फुटन के लिए होता है, अनुत्पाद परिनिर्वाण (इंधन रहित, जहां पुनर्जन्म का कारण बनने वाला कोई कर्म-बीज शेष नहीं रहता) के लिए होता है। किस एक धर्म की ? कायगत-स्मृतिकी।

"भिक्षुओ, इस एक धर्म की भावना... होता है।

५७७-५७९. "भिक्षुओ, एक धर्म के भावित करने पर, बहुलीकरण करने पर अनेक धातुओं का प्रतिवेधन होता है... नाना धातुओं का प्रतिवेधन होता है... अनेक धातुओं के विश्लेषण करने की प्रतिसम्भिदा[1] होती है। किस एक धर्म के ? कायगत-स्मृतिके।

"भिक्षुओ, इस एक धर्म के भावित... होती है।

५८०-५८३. "भिक्षुओ, एक धर्म की भावना, बहुलीकरण स्रोतापत्ति-फल के साक्षात्कार के लिए होता है, सकृदागामी-फलके साक्षात्कार के लिए होता है, अनागामी-फल के साक्षात्कार के लिए होता है, अर्हंत-फल के साक्षात्कार के लिए होता है। किस एक धर्मका ? कायगत-स्मृतिका।

"भिक्षुओ, इस एक धर्म की भावना... होता है।

१ देखें पादटिप्पणी २, पृष्ठ २६

५८४-५९९. "भिक्षुओ, एक धर्म की भावना, बहुलीकरण प्रज्ञा के लिए होता है, प्रज्ञा की वृद्धि के लिए होता है, प्रज्ञा वैपुल्य के लिए होता है, महती-प्रज्ञा के लिए होता है, बहु-प्रज्ञा के लिए होता है, विपुल-प्रज्ञा के लिए होता है, गंभीर-प्रज्ञा के लिए होता है, दूर-प्रज्ञा के लिए होता है, भूरि-प्रज्ञा के लिए होता है, प्रज्ञा बाहुल्य के लिए होता है, शीघ्र-प्रज्ञा के लिए होता है, स्फूर्त-प्रज्ञा के लिए होता है, प्रसन्न-प्रज्ञा के लिए होता है, क्षिप्र-प्रज्ञा के लिए होता है, तीक्ष्ण-प्रज्ञा के लिए होता है, तथा निर्वेधिक-प्रज्ञा के लिए होता है। किस एक धर्मका? कायगत-स्मृतिका।

"भिक्षुओ, इस एक धर्म की भावना... होता है।"

* * * * *

२०. अमृत वर्ग

६००. "भिक्षुओ, जो कायगत-स्मृति का परिभोग नहीं करते वे अमृत का परिभोग नहीं करते। भिक्षुओ, जो कायगत-स्मृति का परिभोग करते हैं वे अमृत का परिभोग करते हैं।

६०१. "भिक्षुओ, जिन्होंने कायगत-स्मृति का परिभोग नहीं किया, उन्होंने अमृत का परिभोग नहीं किया। भिक्षुओ, जिन्होंने कायगत-स्मृति का परिभोग किया, उन्होंने अमृत का परिभोग किया।

६०२. "भिक्षुओ, जिनकी कायगत-स्मृति का ह्रास हो गया उनके अमृत का ह्रास हो गया। भिक्षुओ, जिनकी कायगत-स्मृति का ह्रास नहीं हुआ उनके अमृत का ह्रास नहीं हुआ।

६०३. "भिक्षुओ, जो कायगत-स्मृति करने से चूक गया वह अमृत पाने से चूक गया। भिक्षुओ, जो कायगत-स्मृति करने से नहीं चूका वह अमृत पाने से नहीं चूका।

६०४. "भिक्षुओ, जिन्होंने कायगत-स्मृति के प्रति प्रमाद किया, उन्होंने अमृत के प्रति प्रमाद किया। भिक्षुओ, जिन्होंने कायगत-स्मृति के प्रति प्रमाद नहीं किया उन्होंने अमृत के प्रति प्रमाद नहीं किया।

६०५. "भिक्षुओ, जो कायगत-स्मृति को भूल गये वे अमृत को भूल गये। भिक्षुओ, जो कायगत-स्मृति को नहीं भूले, वे अमृत को नहीं भूले।

६०६. "भिक्षुओ, जिन्होंने कायगत-स्मृति का सेवन (अभ्यास) नहीं किया, उन्होंने अमृत का सेवन नहीं किया। भिक्षुओ, जिन्होंने कायगत-स्मृति का सेवन किया उन्होंने अमृतका सेवन किया।

६०७. "भिक्षुओ, जिन्होंने कायगत-स्मृति को भावित नहीं किया, उन्होंने अमृत को भावित नहीं किया। भिक्षुओ, जिन्होंने कायगत-स्मृति को भावित किया उन्होंने अमृत को भावित किया।

६०८. "भिक्षुओ, जिन्होंने कायगत-स्मृति का बहुलीकरण नहीं किया, उन्होंने अमृत का बहुलीकरण नहीं किया। भिक्षुओ, जिन्होंने कायगत-स्मृति का बहुलीकरण किया, उन्होंने अमृत का बहुलीकरण किया।

६०९. "भिक्षुओ, जो कायगत-स्मृति से अनभिज्ञ रहे, वे अमृत से अनभिज्ञ रहे। भिक्षुओ, जो कायगत-स्मृति से अनभिज्ञ नहीं रहे वे अमृत से अनभिज्ञ नहीं रहे।

६१०. "भिक्षुओ, जिन्हें कायगत-स्मृति का परिज्ञान नहीं हुआ, उन्हें अमृत का परिज्ञान नहीं हुआ। भिक्षुओ, जिन्हें कायगत-स्मृति का परिज्ञान हुआ, उन्हें अमृत का परिज्ञान हुआ।

६११. "भिक्षुओ, जिन्होंने कायगत-स्मृति का साक्षात्कार नहीं किया, उन्होंने अमृत का साक्षात्कार नहीं किया। भिक्षुओ, जिन्होंने कायगत-स्मृति का साक्षात्कार किया, उन्होंने अमृत का साक्षात्कार किया।"

ऐसा भगवान ने कहा। भिक्षुओ ने प्रसन्न हो भगवान के कथन का अभिनंदन किया।

एकक निपात समाप्त।

* * * * *

विषय-सूची

द्विक-निपात (१-५)

१. प्रथम पंचाशतक

द्विक निपात

१. प्रथम पंचाशतक

१. करणीय वर्ग

१. दोष सुत्त

१. ऐसा मैंने सुना – एक समय भगवान श्रावस्ती में, जेतवन में अनाथपिण्डिक के आराम में विहार कर रहे थे। वहां भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया –"भिक्षुओ!" उन भिक्षुओं ने भगवान को प्रत्युत्तर दिया – "भदंत!" भगवान ने यह कहा –

"भिक्षुओ, दो दोष हैं। कौन-से दो? इहलोक-संबंधी दोष (इसी जन्म में बुरा फल देने वाला दुष्कर्म) तथा परलोक-संबंधी दोष (परलोक में बुरा फल देने वाला दुष्कर्म)। भिक्षुओ, इहलोक-संबंधी दोष कौन-सा है? भिक्षुओ, एक आदमी देखता है कि एक चोर को, एक अपराधी को राजा के आदमी पकड़ कर ले जाते हैं और नाना प्रकार के दंड देते हैं –कोड़े से भी मारते हैं, बेंत से भी पीटते हैं, मुद्गर से भी पीटते हैं, हाथ भी काट लेते हैं, पांव भी काट लेते हैं, हाथ-पांव भी काट लेते हैं, कान भी छेद देते हैं, नाक भी छेद देते हैं, कान-नाक भी छेद देते हैं, खोपड़ी निकाल कर उसमें गर्म लोहा भी डाल देते हैं, बालों सहित सिर की चमड़ी उखाड़ कर खोपड़ी को कंकड़ों से भी रगड़ते हैं, संडासी से मुँह खोल कर उसमें दीपक भी जला देते हैं, सारे शरीर पर तेल-बत्ती लपेट कर उसमें आग भी लगा देते हैं, हाथ पर तेल-बत्ती लपेट कर उसमें आग भी लगा देते हैं, गले से गिट्टे तक की चमड़ी भी उतार देते हैं, गले से कटि-प्रदेश तक की चमड़ी और कटि-प्रदेश से गिट्टे तक की चमड़ी भी उतार देते हैं, दोनों कोहनियों तथा दोनों घुटनों में मेखें (किले) ठोक कर जमीन पर भी लिटा देते हैं, उभय-मुख कांटे गाड़-गाड़ कर चमड़ी, मांस तथा नसें भी नोच लेते हैं, सारे शरीर की चमड़ी को कार्षापण-कार्षापणभर काट डालते हैं, शरीर को जहां-तहां शस्त्रों से पीट कर उस पर कंघी भी फेरते हैं, एक करवट लिटा कर कान में से कील भी गाड़ देते हैं, बिना चमड़ी को हानि पहुँचाये अंदर-अंदर हड्डी भी पीस डालते हैं, उबलता-उबलता तेल भी डाल देते हैं, कुत्तों से भी कटवाते हैं, जीते जी सूली पर भी लटकाते हैं तथा तलवार से सिर भी काट डालते हैं।

"उसके मन में यह होता है – जिस तरह के पाप-कर्म करने से एक चोर को, एक अपराधी को राजा के आदमी पकड़कर ले जाते हैं और नाना प्रकार के दंड देते हैं, कोड़े से भी मारते हैं... तलवार से सिर भी काट डालते हैं। मैं भी यदि ऐसा पाप-कर्म करूंगा, तो मुझे भी राजा के आदमी पकड़कर ले जायेंगे और इसी प्रकार से नाना दंडों से दंडित करेंगे, कोड़े से भी मारेंगे... तलवार से सिर भी काट डालेंगे।

"वह इसी जन्म में फल देने वाले दुष्कर्म से डरकर दूसरों की वस्तुएं लूटता हुआ नहीं घूमता है। भिक्षुओ, यह कहलाता है इसी जन्म में बुरा फल देने वाला दुष्कर्म।"

"भिक्षुओ, परलोक में फल देने वाला दुष्कर्म क्या है?"

"भिक्षुओ, कोई-कोई इस प्रकार विचार करता है – कायिक दुष्कर्म का परलोक में बुरा फल होता है, वाचिक दुष्कर्म का परलोक में बुरा फल होता है, मानसिक दुष्कर्म का परलोक में बुरा फल होता है। अगर मैं शरीर से दुष्कर्म करूं, वाणी से दुष्कर्म करूं, मन से दुष्कर्म करूं तो क्या इससे मैं शरीर छूटने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति में पड़कर नरक में पैदा नहीं होऊंगा?

"इस तरह वह परलोक में फल देने वाले दुष्कर्म से भयभीत हो जाने के कारण शारीरिक दुष्कर्मों का त्याग कर, शारीरिक सत्कर्मों का अभ्यास करता है, वाचिक दुष्कर्मों का त्याग कर, वाचिक सत्कर्मों का अभ्यास करता है, मानसिक दुष्कर्मों का त्याग कर, मानसिक सत्कर्मों का अभ्यास करता है और अपने आपको शुद्ध बनाता है। भिक्षुओ, यह परलोक में फल देने वाला दुष्कर्म कहलाता है। भिक्षुओ, ये दो प्रकार के दुष्कर्म हैं।

"इसलिए भिक्षुओ, यह सीखना चाहिए कि हम लोग इसी जन्म में बुरा फल देने वाले दुष्कर्म से डरेंगे, परलोक में बुरा फल देने वाले दुष्कर्म से डरेंगे, दोष में भय मानने वाले होंगे, दोष में भय देखने वाले होंगे। इसी प्रकार भिक्षुओ, सीखना चाहिए। भिक्षुओ, यह आशा करनी चाहिए कि दोष में भय मानने वाला, दोष में भय देखने वाला सभी दोषों से पूरी तरह मुक्त हो जायगा।"

२. प्रधानसुत्त

२. "भिक्षुओ, लोक में यह दो दुष्कर कार्य हैं। कौन-से दो? एक तो गृहस्थों का घर में रहते समय चीवर, पिंडपात, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय औषध आदि आवश्यक वस्तुओं का दान करने का दुष्कर कार्य; दूसरा, घर से बेघर

हुए अनागारिक प्रव्रजितों का सर्व उपधियों (जो फिर जन्म देने का कारण बनें) के परित्याग का कठिन प्रयास।

"भिक्षुओ, लोक में ये दो दुष्कर कार्य हैं। भिक्षुओ, इन दोनों दुष्कर कार्यों में यह जो सर्व उपधियों का परित्याग करना है, यही अधिक दुष्कर कार्य है। इसलिए भिक्षुओ, यही सीखना चाहिए कि सभी उपधियों का परित्याग करने का प्रयास करेंगे। भिक्षुओ, यही सीखना चाहिए।"

३. अनुतापसुत्त

३. "भिक्षुओ, ये दो अनुताप पैदा करनेवाले धर्म (बातें) हैं। कौन-से दो?

"भिक्षुओ, किसी ने शरीर से दुष्कर्म किया होता है, शुभ-कर्म नहीं किया होता; वाणी से दुष्कर्म किया होता है, शुभ-कर्म नहीं किया होता; मन से दुष्कर्म किया होता है, शुभ-कर्म नहीं किया होता।

''वह यह सोचकर अनुतप्त होता है कि मैंने शरीर से दुष्कर्म किया, शरीर से शुभ-कर्म नहीं किया, यह सोचकर अनुतप्त होता है कि मैंने वाणी से दुष्कर्म किया, वाणी से शुभ-कर्म नहीं किया, यह सोचकर अनुतप्त होता है कि मन से दुष्कर्म किया, शुभ-कर्म नहीं किया। भिक्षुओ, ये दो अनुताप पैदा करने वाले धर्म हैं।"

४. अननुतापसुत्त

४. "भिक्षुओ, ये दो अनुताप न पैदा करने वाले धर्म हैं। कौन-से दो?

"भिक्षुओ, किसी ने शरीर से शुभ-कर्म किया होता है, दुष्कर्म नहीं किया होता... मन से... वह यह सोचकर अनुतप्त नहीं होता कि मैंने शरीर से शुभ-कर्म किया है, यह सोचकर अनुतप्त नहीं होता कि मैंने शरीर से दुष्कर्म नहीं किया है... मन से...।

"भिक्षुओ, ये दो अनुताप न पैदा करने वाले धर्म हैं।"

५. उपज्ञातसुत्त

५. "भिक्षुओ, मैंने दो बातों को उपज्ञात किया (गहराई से जाना) है, एक तो कुशल धर्मों में असंतुष्ट रहने को, दूसरे अप्रतिवारित[१], अनारोधित (बिना पीछे हटे) कठोर प्रयत्न करने को। भिक्षुओ, मैंने अप्रतिवारित कठोर प्रयत्न

१ यहां पालि में **'अप्पटिवानिता'** शब्द है। इसका अर्थ हमारी समझ में अप्रतिवारित है, बिना पीछे हटे, बिना कतराये प्रयत्न करना है। अट्ठकथा में **'अप्पटिवानितातिअप्पटिक्क मना, अनोसक्क नां'** कहा गया है जिसका अर्थ 'बिना प्रतिक्रमण किये, बिना पीछे हटे' होता है।

किया है, यह सोचकर कि चाहे त्वचा, नसें और हड्डी ही शेष रह जायं, शरीर का मांस-रक्त सूख जाये, जो कुछ पुरुष-सामर्थ्य, पुरुष-वीर्य तथा पुरुष-पराक्रम से प्राप्तव्य है, उसे प्राप्त करने तक पुरुषार्थ जारी रहेगा। इस प्रकार, भिक्षुओ, मेरी संबोधि अप्रमाद से ही प्राप्त हुई है, अनुत्तर-योगक्षेम भी अप्रमाद से ही प्राप्त हुआ है।

"भिक्षुओ, यदि तुम भी अनारोधित कठोर प्रयत्न करो –चाहे त्वचा, नसें और हड्डी ही शेष रह जायं, शरीर का मांस-रक्त सूख जाये, जो कुछ पुरुष-सामर्थ्य, पुरुष-वीर्य, तथा पुरुष-पराक्रम से प्राप्तव्य हो सकता है, उसे प्राप्त करने तक पुरुषार्थ जारी रखो तो भिक्षुओ, तुम भी जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुलपुत्र ठीक ही घर से बे-घर होकर प्रव्रजित हो जाते हैं, उस श्रेष्ठ, ब्रह्मचर्य-फल को इसी जन्म में स्वयं अभिज्ञात कर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करोगे।

"इसीलिए, भिक्षुओ, यही सीखना चाहिए -- अनारोधित कठोर पुरुषार्थ करते रहेंगे –चाहे त्वचा, नसें और हड्डी ही शेष रह जायं, शरीर का मांस-रक्त सूख जाये, जो कुछ पुरुष-सामर्थ्य, पुरुष-वीर्य, तथा पुरुष-पराक्रम से प्राप्तव्य हो सकता है, उसे प्राप्त करने तक पुरुषार्थ जारी रहेगा। भिक्षुओ, ऐसा ही सीखना चाहिए।"

६. संयोजनसुत्त

६. "भिक्षुओ, दो धर्म हैं।

"कौन-से दो?

"एक तो संयोजनीय धर्मों में आस्वादन देखना और दूसरे संयोजनीय धर्मों को निर्वेदपूर्वक देखना। भिक्षुओ, संयोजनीय धर्मों का आस्वादन करने वाला राग का त्याग नहीं करता, द्वेष का त्याग नहीं करता, मोह का त्याग नहीं करता। राग, द्वेष तथा मोह का त्याग न करने के कारण वह जाति, जरा, मरण, शोक, क्रंदन, दुःख, दौर्मनस्य तथा चिंता से मुक्त नहीं होता। वह दुःख से परिमुक्त नहीं होता – ऐसा मैं कहता हूं।

"भिक्षुओ, संयोजनीय धर्मों में निर्वेद की अनुपश्यना करते हुए विचरण करनेवाला राग का त्याग कर देता है, द्वेष का त्याग कर देता है, मोह का त्याग कर देता है। राग, द्वेष तथा मोह का त्याग कर देने के कारण वह जाति, जरा, मरण, शोक, क्रंदन, दुःख, दौर्मनस्य तथा चिंता से मुक्त होता है। वह दुःख से परिमुक्त होता है – ऐसा मैं कहता हूं।"

७. कृष्णसुत्त

७. "भिक्षुओ, दो कृष्ण-धर्म हैं?

"कौन-से दो?

"निर्लज्ज होना तथा (दुष्कर्म करने में) पापभीरु न होना। भिक्षुओ, ये दो कृष्ण-धर्म हैं।"

८. शुक्लसुत्त

८. "भिक्षुओ, दो शुक्ल-धर्म हैं।

"कौन-से दो?

"लज्जावान होना तथा (दुष्कर्म करने में) पापभीरु होना। भिक्षुओ, ये दो शुक्ल-धर्म हैं।"

९. चर्या (आचरण) सुत्त

९. "भिक्षुओ, ये दो शुक्ल-धर्म लोक का पालन करते हैं।

"कौन-से दो?

"लज्जा तथा पापभीरुता। भिक्षुओ, यदि ये दो शुक्ल-धर्म लोक का पालन न करें तो न माता दिखाई दे, न मौसी दिखाई दे, न मामी दिखाई दे, न गुरु-पत्नी दिखाई दे अथवा न अपने से बड़े किसी की भार्या दिखाई दे; लोक में स्वच्छंद आचार हो जाय, जैसे भेड़, बकरी, मुर्गी, सूअर, कुत्ते तथा गीदड़ के होते हैं। क्योंकि भिक्षुओ, ये दो शुक्ल-धर्म लोक का पालन करते हैं, इसी से माता भी दिखाई देती है, मौसी भी दिखाई देती है, मामी भी दिखाई देती है, गुरु-पत्नी भी दिखाई देती है और अपने से बड़े किसी की भार्या भी दिखाई देती है।"

१०. वर्षोपनायिकासुत्त

१०. "भिक्षुओ, दो वर्षा-वास हैं?

"कौन-से दो?

"पहला और पिछला। भिक्षुओ, ये दो वर्षा-वास हैं।"

* * * * *

२. प्रबंध कौशल वर्ग

११. "भिक्षुओ, ये दो बल हैं।

"कौन-से दो?

"प्रत्यवेक्षण-बल तथा अभ्यास-बल (भावना-बल)।

"भिक्षुओ, प्रत्यवेक्षण-बल (प्रतिसंख्यानबल) क्या है?

"भिक्षुओ, एक (व्यक्ति) यह प्रत्यवेक्षण करता है कि कायिक-दुश्चरित का इस लोक तथा परलोक में बुरा परिणाम होता है, वाचिक-दुश्चरित का इस लोक तथा परलोक में बुरा परिणाम होता है, मानसिक-दुश्चरित का इस लोक तथा परलोक में बुरा परिणाम होता है।

"वह ऐसा प्रत्यवेक्षण कर, कायिक दुष्कर्मों को छोड़ कर, कायिक शुभ-कर्मों का अभ्यास करता है,... मानसिक दुष्कर्मों को छोड़ कर, मानसिक शुभ-कर्मों का अभ्यास करता है, वह पवित्र जीवन व्यतीत करता है। भिक्षुओ, यह प्रत्यवेक्षण-बल कहलाता है।

"भिक्षुओ, अभ्यास-बल (भावना-बल) क्या है?

"भिक्षुओ, यह जो अभ्यास-बल है यह साधकों (शैक्ष्यों) का बल है। साधक (शैक्ष्य) इसी बल से राग को छोड़ देता है, द्वेष को छोड़ देता है, मोह को छोड़ देता है। राग, द्वेष तथा मोह को छोड़कर जो अकुशल-कर्म हैं, उन्हें नहीं करता है, जो पाप-कर्म हैं उनसे दूर रहता है।

"भिक्षुओ, यह अभ्यास-बल कहलाता है। भिक्षुओ, ये दो बल हैं।"

१२. "भिक्षुओ, ये दो बल हैं।

"कौन-से दो?

"प्रत्यवेक्षण-बल तथा अभ्यास-बल।

"भिक्षुओ, प्रत्यवेक्षण-बल कौन-सा है? भिक्षुओ, एक व्यक्ति यह प्रत्यवेक्षण करता है... (पूर्वानुसार)। भिक्षुओ, यह कहलाता है प्रत्यवेक्षण-बल।"

"भिक्षुओ, अभ्यास-बल कौन-सा है?

"भिक्षुओ, भिक्षु स्मृति-संबोधि-अंग का अभ्यास करता है जो कि प्रविवेकाश्रित (निर्लिप्त) है, वैराग्य-आश्रित है, निरोधाश्रित है और जो उत्सर्गपरिणामी (संपूर्ण त्याग में अंत होने वाला) है।

"धर्मविचय-संबोधि-अंग का अभ्यास करता है, जो कि ...।

"वीर्य-संबोधि-अंग का अभ्यास करता है, जो कि...।

"प्रीति-संबोधि-अंग का अभ्यास करता है, जो कि...।

"प्रश्रब्धि-संबोधि-अंग का अभ्यास करता है, जो कि...।

"समाधि-संबोधि-अंग का अभ्यास करता है, जो कि...।

"उपेक्षा-संबोधि-अंग का अभ्यास करता है, जो कि...।

"भिक्षुओ, इसे अभ्यास-बल कहते हैं। भिक्षुओ, ये दो बल हैं।

१३. "भिक्षुओ, ये दो बल हैं।

"कौन-से दो?

"प्रत्यवेक्षण-बल तथा अभ्यास-बल।

"भिक्षुओ, प्रत्यवेक्षण-बल कौन-सा है?

"भिक्षुओ, एक व्यक्ति... यह प्रत्यवेक्षण-बल कहलाता है... (पूर्वानुसार)

"भिक्षुओ, अभ्यास-बल कौन-सा है?

"भिक्षुओ, यहां एक भिक्षु कामभोगों से अलग, पृथक हो, अकुशल-धर्मों से पृथक हो, सवितर्क, सविचार, विवेक (एकांत) जन्य, प्रीति सुख-युक्त प्रथम-ध्यानलाभी हो विहार[1] करता है; वितर्क-विचारों के उपशमन होने के अनंतर, आंतरिक प्रसाद-युक्त, चित्त की एकाग्रता-युक्त, वितर्क-विचार-रहित, समाधिजन्य प्रीतिसुख-युक्त द्वितीय-ध्यान का लाभी हो विहार करता है; प्रीति से भी वैराग्य-युक्त हो, उपेक्षावान बन विहार करता है, स्मृतिमान हो, संप्रज्ञानी हो, काया से सुखद संवेदनाओं का अनुभव करता है, जिसके बारे में आर्य-जन कहते हैं –'उपेक्षावान है, स्मृतिमान है, सुखपूर्वक विहार करनेवाला है', ऐसा तृतीय-ध्यान प्राप्त कर विहार करता है; सुख और दुःख दोनों का प्रहाण कर पूर्वस्थित सौमनस्य-दौर्मनस्य के अस्तगमन होने से, अदुःख-असुख रूप उपेक्षा-स्मृति से परिशुद्ध चतुर्थ-ध्यान लाभी हो विहार करता है। भिक्षुओ, यह कहलाता है अभ्यास-बल। भिक्षुओ, ये दो बल हैं।"

१४. "भिक्षुओ, तथागत की धर्म-देशना दो प्रकार की होती है। कौन-से दो प्रकार की? संक्षिप्त तथा विस्तृत। भिक्षुओ, ये दो प्रकार की तथागत की धर्म-देशना है।"

१५. "भिक्षुओ, जिस किसी अधिकरण (झगड़े) में प्रतिवादी-भिक्षु तथा वादी-भिक्षु स्वयं अपने बारे में सम्यक रूप से प्रत्यवेक्षण नहीं करते, भिक्षुओ, उस अधिकरण में इसी बात की आशा करनी चाहिए कि उनका कलह दीर्घकाल तक जारी रहेगा, वे परस्पर कठोर बोलते रहेंगे, हिंस्र बने रहेंगे तथा भिक्षु सुखपूर्वक न रह सकेंगे।

"भिक्षुओ, जिस किसी अधिकरण में प्रतिवादी-भिक्षु तथा वादी-भिक्षु स्वयं अपने बारे में सम्यक प्रत्यवेक्षण करते हैं, भिक्षुओ, उस अधिकरण में इस बात की आशा रखनी चाहिए कि न उनका कलह दीर्घकाल तक जारी रहेगा, न

---

१ ध्यान में समय बिताना।

वे परस्पर कठोर बोलते रहेंगे और न हिंस्र बने रहेंगे तथा भिक्षु सुखपूर्वक रह सकेंगे।

“भिक्षुओ, प्रतिवादी-भिक्षु अपने बारे में किस प्रकार सम्यक प्रत्यवेक्षण करता है?

“भिक्षुओ, प्रतिवादी-भिक्षु अपने बारे में इस प्रकार सम्यक प्रत्यवेक्षण करता है – मैंने शरीर से कुछ दोष किया। उस भिक्षु ने देख लिया कि मैंने शरीर से कुछ दोष किया। यदि मैंने शरीर से कोई दोष न किया होता तो वह भिक्षु न देखता कि मैंने शरीर से कोई दोष किया है। क्योंकि मैंने शरीर से दोष किया, इसीलिए उस भिक्षु ने देखा कि मैंने शरीर से दोष किया। यह देखकर कि मैंने शरीर से दोष किया वह भिक्षु असंतुष्ट हुआ, असंतुष्ट होकर उस भिक्षु ने मुझे असंतुष्ट करने वाले वचन कहे। उस भिक्षु से असंतोषपूर्ण वचन सुनकर मैं असंतुष्ट हुआ। असंतुष्ट होकर मैंने दूसरों से कहना-सुनना किया। इसमें मेरा ही दोष है, मेरा ही अपराध है जैसे माल पर बिना चुंगी (कस्टम-ड्यूटी) दिये उसे ले जाने वाला अपराधी हो।

“भिक्षुओ, वादी-भिक्षु अपने बारे में किस प्रकार सम्यक प्रत्यवेक्षण करता है?

“भिक्षुओ, वादी-भिक्षु अपने बारे में इस प्रकार सम्यक विचार करता है – इस भिक्षु ने शरीर से कुछ दुष्कर्म किया। मैंने देखा कि इस भिक्षु ने शरीर से कुछ दुष्कर्म किया। यदि यह भिक्षु शरीर से कुछ दुष्कर्म न करता तो मैं यह न देखता कि इस भिक्षु ने शरीर से कुछ दुष्कर्म किया है। क्योंकि इस भिक्षु ने शरीर से कुछ दुष्कर्म किया है, तभी मैंने देखा कि इस भिक्षु ने शरीर से कुछ दुष्कर्म किया है। यह देखकर कि इस भिक्षु ने शरीर से कुछ दुष्कर्म किया है, मैं असंतुष्ट हुआ। असंतुष्ट होकर मैंने इस भिक्षु को असंतुष्ट करने वाली बात कही। मेरी असंतुष्ट करने वाली बात सुनकर यह भिक्षु असंतुष्ट हुआ। असंतुष्ट होकर इसने दूसरों से कहना-सुनना किया। इसमें मेरा ही दोष है, मेरा ही अपराध है, जैसे कोई माल पर बिना चुंगी दिये उसे ले जाने वाला अपराधी हो।

“भिक्षुओ, वादी-भिक्षु अपने बारे में इस प्रकार सम्यक प्रत्यवेक्षण करता है।

“भिक्षुओ, जिस किसी अधिकरण में प्रतिवादी-भिक्षु तथा वादी-भिक्षु स्वयं अपने बारे में सम्यक प्रत्यवेक्षण नहीं करते, भिक्षुओ, उस अधिकरण में इस बात की आशा रखनी चाहिए कि उनका कलह दीर्घकाल तक जारी रहेगा,

वे परस्पर कठोर बोलते रहेंगे और हिंस्र बने रहेंगे तथा भिक्षु सुखपूर्वक न रह सकेंगे।

"भिक्षुओ, जिस किसी अधिकरण में प्रतिवादी-भिक्षु तथा वादी-भिक्षु स्वयं अपने बारे में सम्यक प्रत्यवेक्षण करते हैं, भिक्षुओ, उस अधिकरण में इस बात की आशा रखनी चाहिए कि न उनका कलह दीर्घकाल तक जारी रहेगा, न वे परस्पर कठोर बोलते रहेंगे और न हिंस्र बने रहेंगे तथा भिक्षु सुखपूर्वक रह सकेंगे।"

१६. अब एक ब्राह्मण भगवान के पास गया। जाकर भगवान के साथ बातचीत की और कुशलक्षेम पूछा। कुशलक्षेम पूछ चुकने के बाद वह ब्राह्मण एक ओर जाकर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए उस ब्राह्मण ने भगवान को कहा – "भो गौतम! इसका क्या कारण है, क्या हेतु है, जिससे कुछ प्राणी शरीर छूटने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति को प्राप्तकर नरक में उत्पन्न होते हैं?"

"ब्राह्मण! इसका कारण, इसका हेतु अधर्माचरण है, विषम आचरण है, जिससे कुछ प्राणी शरीर छूटने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति को प्राप्तकर नरक में उत्पन्न होते हैं।"

"भो गौतम! इसका क्या कारण है, क्या हेतु है जिससे कुछ प्राणी शरीर छूटने पर, मरने के बाद सुगति को प्राप्तकर स्वर्गलोकमें उत्पन्न होते हैं?"

"ब्राह्मण! इसका कारण, इसका हेतु धर्माचरण है, समाचरण है जिससे कुछ प्राणी शरीर छूटने पर, मरने के बाद सुगति को प्राप्तकर स्वर्गलोक में उत्पन्न होते हैं।"

"सुंदर, गौतम! बहुत सुंदर, गौतम! जैसे कोई उल्टे को सीधा कर दे, ढँके को उघाड़ दे, मार्ग-भूले को रास्ता बता दे अथवा अंधेरे में मशाल धारण करे, जिससे आंख वाले चीजों को देख सकें। इसी प्रकार गौतम ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया है। मैं आप गौतम, धर्म तथा संघ की शरण जाता हूं। गौतम! आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

१७. अब जाणुस्सोणि ब्राह्मण भगवान के पास गया और भगवान के साथ बातचीत की...एक ओर बैठे हुए जाणुस्सोणि ब्राह्मण ने भगवान से कहा –"भो गौतम! इसका क्या कारण है, क्या हेतु है जिससे कुछ प्राणी शरीर छूटने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति को प्राप्तकर नरक में उत्पन्न होते हैं?"

"ब्राह्मण! करने (अकुशल कर्म करने) तथा न करने (कुशल कर्म न करने) के कारण यहां कुछ प्राणी शरीर छूटने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति को प्राप्तकर, नरकमें उत्पन्न होते हैं।"

"भो गौतम! इसका क्या कारण है, क्या हेतु है जिससे कुछ प्राणी शरीर छूटने पर सुगति को प्राप्त कर, स्वर्गलोकमें उत्पन्न होते हैं?"

"ब्राह्मण! करने तथा न करने के कारण यहां कुछ प्राणी शरीर छूटने पर, मरने के बाद सुगति को प्राप्त कर, स्वर्गलोक्में उत्पन्न होते हैं।"

"मैं आप गौतम के इस संक्षेप से कथित तथा विस्तार से अकथित भाषण का विस्तार से अर्थ नहीं जानता। अच्छा हो यदि आप गौतम मुझे इस प्रकार धर्मोपदेश करें जिससे मैं आप गौतम के संक्षिप्त से कथित तथा विस्तार से अकथित भाषण का विस्तार से अर्थ जान लूं।"

"तो ब्राह्मण सुन! अच्छी तरह मन में धारण कर, मैं कहता हूं।"

'बहुत अच्छा' कहकर जाणुस्सोणि ब्राह्मण ने भगवान को प्रत्युत्तर दिया। भगवान ने यह कहा –

"ब्राह्मण! यहां एक व्यक्ति ने कायिक दुष्कर्म किया होता है, शुभकर्म नहीं किया होता; वाचिक दुष्कर्म किया होता है, शुभ-कर्म नहीं किया होता; मानसिक दुष्कर्म किया होता है, शुभ-कर्म नहीं किया होता। इस प्रकार ब्राह्मण! करने तथा न करने से यहां कुछ प्राणी शरीर छूटने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति को प्राप्त कर नरकमें उत्पन्न होते हैं।

"ब्राह्मण! यहां एक व्यक्ति ने कायिक शुभ-कर्म किया होता है, दुष्कर्म नहीं किया होता; वाचिक शुभ-कर्म किया होता है, दुष्कर्म नहीं किया होता; मानसिक शुभ-कर्म किया होता है, दुष्कर्म नहीं किया होता। इस प्रकार ब्राह्मण! करने तथा न करने से यहां कुछ प्राणी शरीर छूटने पर, मरने के बाद सुगति को प्राप्त कर स्वर्गलोक में उत्पन्न होते हैं।"

"सुंदर, गौतम! बहुत सुंदर,... गौतम! आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

१८. अब आयुष्मान आनन्द भगवान के पास गये। पास जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठे: एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द को भगवान ने यह कहा –"आनन्द! मैं शारीरिक दुष्कर्म, वाचिक दुष्कर्म तथा मानसिक दुष्कर्मको संपूर्ण रूप से अकरणीय कहता हूं।"

"भंते! भगवान ने जो यह कायिक दुष्कर्म, वाचिक दुष्कर्म तथा मानसिक दुष्कर्मको संपूर्ण रूप से अकरणीय कहा है, उस अकरणीय के करने पर किस दुष्परिणाम की आशा करनी चाहिए?"

"आनन्द! यह जो मैंने संपूर्ण रूप से अकरणीय कहा है... उस अकरणीय के करने पर इस दुष्परिणाम की आशा की जानी चाहिए –अपने-आप अपनी

निंदा करता है (खुद की नजरों में गिर जाता है)। विज्ञ लोग मालूम होने पर निंदा करते हैं; अपयश होता है; मूढ़ावस्था में मृत्यु को प्राप्त होता है; शरीर छूटने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति को प्राप्तकर नरक में उत्पन्न होता है। आनन्द! मैंने जो यह कायिक दुष्कर्म, वाचिक दुष्कर्म तथा मानसिक दुष्कर्म को संपूर्ण रूप से अकरणीय कहा है, उस अकरणीय के करने पर, इस दुष्परिणाम की आशा करनी चाहिए।"

"आनन्द! मैं कायिक शुभकर्म, वाचिक शुभकर्म और मानसिक शुभकर्म संपूर्ण रूप से करणीय कहता हूं।"

"भंते! भगवान ने जो यह कायिक शुभकर्म, वाचिक शुभकर्म तथा मानसिक शुभकर्म को संपूर्ण रूप से करणीय कहा है, उस करणीय के करने पर किस सुपरिणाम (लाभ) की आशा करनी चाहिए?"

"आनन्द! यह जो मैंने संपूर्ण रूप से करणीय कहा है... उस करणीय के करने पर इस सुपरिणाम की आशा की जानी चाहिए – अपने-आप अपनी निंदा नहीं करता है (खुद की नजरों में नहीं गिरता); विज्ञ लोग मालूम होने पर प्रशंसा करते हैं; कल्याणमयी कीर्ति फैलती है; जागरूक होकर मृत्यु को प्राप्त होता है; शरीर छूटने पर, मरने के बाद सुगति को प्राप्तकर, स्वर्ग-लोक में उत्पन्न होता है। आनन्द! यह जो मैंने संपूर्ण रूप से करणीय कहा है, उस करणीय के करने पर इस सुपरिणाम की आशा की जानी चाहिए।"

१९. "भिक्षुओ, अकुशल को छोड़ो। भिक्षुओ, अकुशल छोड़ा जा सकता है। यदि भिक्षुओ, यह न हो सकता कि अकुशल छोड़ा जा सकता, तो मैं ऐसा न कहता कि 'भिक्षुओ, अकुशल छोड़ो।' लेकिन भिक्षुओ, क्योंकि अकुशल छोड़ा जा सकता है, इसलिए मैं ऐसा कहता हूं 'भिक्षुओ, अकुशल छोड़ो।'

"भिक्षुओ, यदि अकुशल का प्रहाण होने से अहित और दुःख होता, तो मैं ऐसा नहीं कहता 'भिक्षुओ, अकुशल छोड़ो।' लेकिन क्योंकि भिक्षुओ, अकुशल का प्रहाण हित तथा सुख का कारण होता है, इसलिए मैं ऐसा कहता हूं, 'भिक्षुओ, अकुशल छोड़ो।'

"भिक्षुओ, कुशल की भावना करो। भिक्षुओ, कुशल की भावना की जा सकती है। भिक्षुओ, यदि कुशल की भावना नहीं हो सकती, तो मैं ऐसा न कहता कि 'भिक्षुओ, कुशल की भावना करो।' लेकिन क्योंकि भिक्षुओ, कुशल की भावना हो सकती है, इसलिए मैं ऐसा कहता हूं कि 'भिक्षुओ, कुशल की भावना करो।'

"भिक्षुओ, यदि कुशल की भावना करने से अहित और दुःख होता, तो मैं ऐसा नहीं कहता, 'भिक्षुओ, कुशल की भावना करो।' लेकिन क्योंकि भिक्षुओ, कुशल की भावना हित और सुख का कारण लिए होती है, इसलिए मैं यह कहता हूं कि 'भिक्षुओ, कुशल की भावना करो।'"

२०. "भिक्षुओ, दो बातें सद्धर्म को भुला देने का (उसके लोप का), उसके अंतर्धान का कारण होती हैं। कौन-सी दो?

"पदों को गलत ढंग से रखना (अव्यवस्थित पद) तथा उनके अर्थ का अनर्थ करना (अनर्गल अर्थ)।

"भिक्षुओ, पदों को गलत रखने से उनके अर्थ का भी अनर्थ होता है। भिक्षुओ, ये दो बातें सद्धर्म के लोप का, उसके अंतर्धान का कारण होती हैं।"

२१. "भिक्षुओ, दो बातें सद्धर्म के स्थित होने का, उसके लोप न होने का, उसके अंतर्धान न होने का कारण होती हैं। कौन-सी दो?

"पदों को ठीक-ठीक रखना (सुव्यवस्थित पद) तथा उनका सही-सही अर्थ।

"भिक्षुओ, पदों को ठीक-ठीक रखने से उनका अर्थ भी सही-सही रहता है।

"भिक्षुओ, ये दो बातें सद्धर्म के स्थित रहने का, उसके लोप न होने का, उसके अंतर्धान न होने का कारण होती हैं।"

* * * * *

३. मूर्ख वर्ग

२२. "भिक्षुओ, ये दो मूर्ख हैं।

"कौन-से दो?

"एक जो अपने दोष को दोष नहीं मानता, दूसरा जो अपने दोष को दोष मानने वाले को क्षमा नहीं करता।

"भिक्षुओ, ये दो मूर्ख हैं।

"भिक्षुओ, ये दो पंडित हैं।

"कौन-से दो?

"एक जो अपने दोष को दोष मानता है, दूसरा जो अपने दोष को दोष मानने वाले को क्षमा करता है। भिक्षुओ, ये दो पंडित हैं।"

२३. "भिक्षुओ, ये दो तथागत पर मिथ्यारोप (गलत दोषारोपण) करते हैं।

"कौन-से दो?

"दुष्ट मन वाला द्वेषी तथा मिथ्यादृष्टि वाला श्रद्धावान। भिक्षुओ, ये दो तथागत पर मिथ्यारोप करते हैं।"

२४. "भिक्षुओ, ये दो तथागत पर मिथ्यारोप करते हैं।

"कौन-से दो?

"जो तथागत द्वारा अभाषित तथा अकथित है उसे तथागत द्वारा भाषित तथा कथित बताता है, और जो तथागत द्वारा भाषित तथा कथित है उसे तथागत द्वारा अभाषित तथा अकथित बताता है। भिक्षुओ, ये दो तथागत पर मिथ्यारोप करते हैं।

"भिक्षुओ, ये दो तथागत पर मिथ्यारोप नहीं करते।

"कौन-से दो?

"जो तथागत द्वारा अभाषित अकथित है उसे तथागत द्वारा अभाषित अकथित कहता है; जो तथागत द्वारा भाषित कथित है उसे तथागत द्वारा भाषित, कथित कहता है।

"भिक्षुओ, ये दो तथागत पर मिथ्यारोप नहीं करते।"

२५. "भिक्षुओ, ये दो तथागत पर मिथ्यारोप करते हैं। कौन-से दो? जो नेयार्थ-सूत्र[१] (व्यवहार-भाषा) को नीतार्थ-सूत्र (परमार्थ-भाषा) करके प्रकट करता है, और जो नीतार्थ-सूत्र को नेयार्थ-सूत्र करके प्रकट करता है। भिक्षुओ, ये दो तथागत पर मिथ्यारोप करते हैं।"

---

१ यहां पालि में दो शब्द आये है -- **'नेय्यत्थं और नीतत्थं'** जिनका अर्थ क्रमशः नेयार्थ और नीतार्थ होता है । व्यवहार की जानेवाली भाषा को नेयार्थ और परमार्थ प्रकट करने वाली भाषा को नीतार्थ कहते हैं। भगवान जब कहते हैं कि 'भिक्षुओ, एक प्रकार का पुद्गल है, दो प्रकार के पुद्गल हैं' आदि तो नेयार्थ हुआ। इससे यह समझना चाहिए कि परमार्थतः पुद्गल नहीं है – यह नीतार्थ हुआ। यदि कोई मूर्खतावश यह कहने लगे कि यदि परमार्थतः पुद्गल नहीं होता तो भगवान 'एक प्रकार का पुद्गल है, दो प्रकार के पुद्गल हैं' आदि नहीं कहते। अतः वह नेयार्थ को नीतार्थ के रूप में ग्रहण करता है। नीतार्थ है कि सभी संस्कार अनित्य, दुःख और अनात्म हैं। यदि कोई मूर्खतावश कहे कि यह कथन नेयार्थ है जिसका अर्थ है 'नित्य, सुख और आत्मा है' तो वह नीतार्थ को नेयार्थ के रूप में ग्रहण करेगा। **'रूपं भिक्खवे, न तुम्हाकं, तं पजहथ'** (भिक्षुओ, रूप तुम्हारा नहीं है, उसका त्याग करो) – इस वाक्य से यदि कोई यह अर्थ लगाये कि रूप है तभी न ऐसा कहा गया है, तो वह भूल करेगा। इसका नेयार्थ न लेकर नीतार्थ लेना चाहिए। नीतार्थ यह है कि रूप में जो छन्दराग है, आसक्ति है उसका त्याग करने के लिए कहा गया है।

२६. "भिक्षुओ, ये दो तथागत पर मिथ्यारोप नहीं करते।

"कौन-से दो?

"जो नेयार्थ-सूत्र को नेयार्थ-सूत्र करके प्रकट करता है और जो नीतार्थ-सूत्र को नीतार्थ करके प्रकट करता है।

"भिक्षुओ, ये दो तथागत पर मिथ्यारोप नहीं करते।"

२७. "भिक्षुओ, ढँके हुए कर्म (प्रच्छन्न-कर्म, पाप-कर्म) करने वाले के लिए दो गतियों में से एक गति की आशा करनी चाहिए – नरक या पशु-योनि।

"भिक्षुओ, खुले कर्म (पुण्य-कर्म) करने वाले के लिए दो गतियों में से एक गति की आशा करनी चाहिए – देव या मनुष्य।"

२८. "भिक्षुओ, मिथ्या-दृष्टि व्यक्ति के लिए दो गतियों में से एक गति की आशा करनी चाहिए – नरक या पशु-योनि।"

२९. "भिक्षुओ, सम्यक-दृष्टि व्यक्ति के लिए दो गतियों में से एक गति की आशा करनी चाहिए – देव या मनुष्य।"

३०. "भिक्षुओ, दुःशील की दो जगह राह देखी जाती है – नरक में या पशु-योनि में।"

"भिक्षुओ, शीलवान की दो जगह राह देखी जाती है – देव या मनुष्य में।"

३१. "भिक्षुओ, मैं दो परिणामों को भली-भांति देखकर ही जंगल में, वन में एकांत-निवास का सेवन करता हूं।

"कौन-से दो?

"निजी इहलौकिक सुख-विहार के लिए तथा बाद में आने वाले लोगों पर अनुकंपा करने के लिए। भिक्षुओ, मैं इन दो परिणामों को भली-भांति देखकर ही जंगल में, वन में एकांत-निवास का सेवन करता हूं।"

३२. "भिक्षुओ, दो धर्म विद्यापक्षीय हैं।

"कौन-से दो?

"शमथ तथा विपश्यना।

"भिक्षुओ, शमथ की भावना करने से क्या लाभ होता है? चित्त भावित होता है। चित्त के भावित होने से क्या लाभ होता है? समस्त राग का प्रहाण होता है।

"भिक्षुओ, विपश्यना के अभ्यास से क्या लाभ होता है? प्रज्ञा भावित होती है। प्रज्ञा भावित होने से क्या लाभ होता है? समस्त अविद्या का प्रहाण

होता है। भिक्षुओ, राग से दूषित चित्त मुक्त नहीं होता और अविद्या से दूषित प्रज्ञा भावित नहीं होती। भिक्षुओ, यह रागरहित होना चित्त-विमुक्ति[१] है तथा अविद्यारहित होना प्रज्ञा-विमुक्ति है।"

* * * * *

४. समचित्त वर्ग

३३. "भिक्षुओ, मैं असत्पुरुष-भूमि तथा सत्पुरुष-भूमि की देशना करता हूं। उसे सुनो, अच्छी तरह मन में धारण करो, कहता हूं।"

"भंते! अच्छा" कहकर उन भिक्षुओं ने भगवान को प्रत्युत्तर दिया। भगवान ने यह कहा –

"भिक्षुओ, असत्पुरुष-भूमि कौन-सी है?

"भिक्षुओ, असत्पुरुष अकृतज्ञ होता है, कृत-उपकार को न जानने वाला। भिक्षुओ, इस अकृतज्ञता की, इस अकृतवेदिता (उपकार को भूलने) की असभ्यों (असत्पुरुषों) ने ही प्रशंसा की है। भिक्षुओ, यह जो अकृतज्ञता है, यह जो अकृतवेदिता है, यह संपूर्णतः असत्पुरुष-भूमि है।

"भिक्षुओ, सत्पुरुष कृतज्ञ होता है, कृत-उपकार को जानने वाला। भिक्षुओ, इस कृतज्ञता की, इस कृतवेदिता की सभ्यों (सत्पुरुषों) ने ही प्रशंसा की है। भिक्षुओ, यह जो कृतज्ञता है यह जो कृतवेदिता है, यह संपूर्णतः सत्पुरुष-भूमि है।"

३४. "भिक्षुओ, दो का प्रत्युपकार नहीं किया जा सकता।

"किन दो का?

"माता का तथा पिता का। भिक्षुओ, सौ वर्ष तक एक कंधे पर माता को ढोये तथा एक कंधे पर पिता को ढोये, और वह उनकी उबटन मलने, मर्दन करने, नहलाने तथा हाथ-पैर दबाने आदि से सेवा करे, और वे भी उसके कंधे पर ही मल-मूत्र कर दें, तो भी भिक्षुओ, यह माता-पिता के किये का प्रत्युपकार नहीं होता। भिक्षुओ, यदि इस रत्न-बहुल पृथ्वी का ऐश्वर्य-राज्य भी माता-पिता

---

१ पालि में **'चेतोविमुत्ति, पञ्ञाविमुत्ति'** -- दो प्रकार की विमुक्तियां कही गयी हैं जिनका अर्थ चित्त-विमुक्ति और प्रज्ञा-विमुक्ति है। **'चेतोविमुक्ति'** से राग का प्रहाण होता है और **'पञ्ञाविमुक्ति'** से अविद्या का। शमथ की भावना करने से चित्त भावित होता है। फलतः सभी रागों का प्रहाण होता है। विपश्यना की भावना करने से प्रज्ञा भावित होती है। फलतः अविद्या का प्रहाण होता है। रागरहित होना चित्त-विमुक्ति है – **रागविरागा चेतोविमुत्ति** और अविद्यारहित होना प्रज्ञाविमुक्ति है – **अविज्जाविरागा पञ्ञाविमुत्ति**।

को सौंप दिया जाय तब भी यह माता-पिता के किये का प्रत्युपकार नहीं होता। यह किसलिए? भिक्षुओ, माता-पिता का पुत्रों पर बहुत उपकार है। वे उनकी देखभाल करते हैं, पोषण करते हैं, वे उन्हें यह लोक दिखाते हैं। अर्थात, वे उन्हें इस लोक से परिचित कराते हैं।

"भिक्षुओ, जो कोई अश्रद्धावान माता-पिता को श्रद्धासंपदा में प्रेरित करता है, स्थापित करता है, प्रतिष्ठापित करता है, दुःशील माता-पिता को शीलसंपदा में प्रेरित करता है, स्थापित करता है, प्रतिष्ठापित करता है, कृपण माता-पिता को त्यागसंपदा में प्रेरित करता है, स्थापित करता है, प्रतिष्ठापित करता है, दुष्प्रज्ञ माता-पिता को प्रज्ञा-संपदा में प्रेरित करता है, स्थापित करता है, प्रतिष्ठापित करता है – तब कहीं माता-पिता के किये का प्रत्युपकार होता है।"

३५. अब एक ब्राह्मण भगवान के पास गया, जाकर भगवान के साथ बातचीत की... एक ओर बैठे हुए उस ब्राह्मणने भगवान से यह कहा –

"आप गौतम का क्या वाद, क्या मत है?"

"ब्राह्मण! मैं क्रियावादी हूं तथा अक्रियावादी हूं।"

"आप गौतम! क्रियावादी तथा अक्रियावादी किस प्रकार हैं?"

"मैं, ब्राह्मण! न करने की बात करता हूं – कायिक दुराचरणों, वाचिक दुराचरणों, मानसिक दुराचरणों, अनेक प्रकार के अकुशल-धर्मों के न करने की बात करता हूं। मैं, ब्राह्मण! करने की बात करता हूं – कायिक सदाचरणों, वाचिक सदाचरणों, मानसिक सदाचरणों, अनेक प्रकार के कुशल-धर्मों के करने की बात करता हूं। ब्राह्मण! इस प्रकार मैं क्रियावादी तथा अक्रियावादी हूं।"

"सुंदर, गौतम! बहुत सुंदर,... जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

३६. अब अनाथपिण्डिक गृहपति भगवान के पास गया, जाकर भगवान को प्रणाम कर...एक ओर बैठे हुए अनाथपिण्डिक गृहपति ने भगवान से यह कहा –

"भंते! लोक में दाक्षिणेय्य (दक्षिणार्ह) कितने हैं? दान कहां देना चाहिए?"

"गृहपति! लोक में दो दक्षिणार्ह हैं, शैक्ष तथा अशैक्ष। गृहपति! ये दो दक्षिणार्ह हैं। इन्हें दान दिया जाना चाहिए।"

भगवान ने यह कहा और यह कहकर तदनंतर शास्ता ने यह कहा –

"सेखो असेखो च इमस्मिं लोके, आहुनेय्या यजमानानं होन्ति।
ते उज्जुभूता कायेन, वाचाय उद चेतसा।
खेत्तं तं यजमानानं, एत्थ दिन्नं महप्फल"न्ति॥

[यजमानों के लिए संसार में शैक्ष तथा अशैक्ष दो दक्षिणार्ह हैं। वे शरीर, वाणी तथा मन से ऋजु होते हैं। ये यजमानों के (पुण्य-) क्षेत्र हैं। इन्हें देने का महान फल होता है।]

३७. ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। उस समय आयुष्मान सारिपुत्त श्रावस्ती में मिगार-माता के पूर्वाराम प्रासाद में रहते थे। तब आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित किया – "आयुष्मान भिक्षुओ!" उन भिक्षुओं ने आयुष्मान सारिपुत्त को प्रत्युत्तर दिया – "आयुष्मान।"

आयुष्मान सारिपुत्त ने यह कहा –

"आयुष्मानो! मैं आंतरिक-संयोजन वाले व्यक्ति के बारे में कहूंगा, बाह्य-संयोजन वाले व्यक्ति के बारे में कहूंगा, इसे सुनो, मन में ठीक से धारण करो। कहता हूं।

"आयुष्मान! बहुत अच्छा" कह उन भिक्षुओं ने आयुष्मान सारिपुत्त को प्रत्युत्तर दिया। आयुष्मान सारिपुत्त ने यह कहा –

"आयुष्मानो! आंतरिक-संयोजन वाला व्यक्ति कौन होता है?

"आयुष्मानो! एक भिक्षु शीलवान होता है, प्रातिमोक्ष के नियमों का पालन करने वाला, आचार-गोचर (आचरण) से युक्त, अणुमात्र दोष से भी भयभीत होने वाला तथा शिक्षा-पदों को ग्रहणकर उनका सम्यक पालन करने वाला।

"वह शरीर के छूटने पर, मरने के बाद किसी देव-योनि में जन्म ग्रहण करता है। वह वहां से च्युत होकर आगामी होता है, फिर इस लोक में आने वाला।

"आयुष्मानो! ऐसा व्यक्ति आंतरिक-संयोजन वाला व्यक्ति कहलाता है, आगामी, फिर इस लोक में आने वाला।

"आयुष्मानो! बाह्य-संयोजन वाला व्यक्ति कौन होता है?

"आयुष्मानो! एक भिक्षु शीलवान होता है, प्रातिमोक्ष के नियमों का पालन करने वाला, आचार-गोचर से युक्त, अणुमात्र दोष से भी भयभीत होने वाला तथा शिक्षा-पदों को ग्रहणकर उनका सम्यक्पालन करने वाला।

“वह किसी शांत चित्त-विमुक्ति को प्राप्त कर विहार करता है। वह शरीर के छूटने पर, मरने के बाद किसी देव-योनि में जन्म ग्रहण करता है। वह वहां से च्युत होकर अनागामी होता है, फिर इस लोक में नहीं आने वाला।

“आयुष्मानो! ऐसा व्यक्ति बाह्य-संयोजन वाला व्यक्ति कहलाता है, अनागामी, फिर इस लोक में न आने वाला।

“और भी फिर आयुष्मानो! भिक्षु शीलवान होता है... सम्यक पालन करने वाला।

“वह कामनाओं से ही निर्वेद प्राप्त करने के लिए, विराग के लिए, निरोध के लिए मार्गारूढ़[1] होता है। वह भव से ही निर्वेद प्राप्त करने के लिए, विराग के लिए, निरोध के लिए मार्गारूढ़ होता है। वह तृष्णा का क्षय करने के लिए मार्गारूढ़ होता है। वह लोभ का क्षय करने के लिए मार्गारूढ़ होता है। वह शरीर छूटने पर, मरने के बाद किसी देव-योनि में जन्म ग्रहण करता है। वह वहां से च्युत होकर अनागामी होता है, फिर इस लोक में नहीं आने वाला।

“आयुष्मानो! ऐसा व्यक्ति बाह्य-संयोजन वाला व्यक्ति कहलाता है, अनागामी, फिर इस लोक में न आने वाला।”

अब बहुत से सम-चित्त (शांतचित्त) वाले देवता भगवान के पास आये। आकर भगवान को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर स्थित उन देवताओं ने भगवान से यह कहा –

“भंते! मिगार-माता के पूर्वाराम प्रासाद में आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं को आंतरिक-संयोजन वाले तथा बाह्य-संयोजन वाले व्यक्ति के बारे में देशना की है। परिषद प्रसन्न है। अच्छा हो यदि भंते! भगवान अनुकंपा कर सारिपुत्त के पास चलें।” भगवान ने मौन रहकर स्वीकार किया।

तब भगवान जैसे कोई बलवान पुरुष समेटी हुई बांह को पसारे अथवा पसारी हुई बांह को समेटे, उसी प्रकार जेतवन से अंतर्धान होकर मिगार-माता के पूर्वाराम प्रासाद में आयुष्मान सारिपुत्त के सामने प्रकट हुए। भगवान बिछे आसन पर विराजमान हुए। आयुष्मान सारिपुत्त भी भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आयुष्मान सारिपुत्त को भगवान ने यह कहा –

---

१ पालि के **‘पटिपन्नो होति’** का अनुवाद ‘प्रतिपन्न होता है’ किया गया है। यह सही है कि ‘प्रतिपन्न’ शब्द हिंदी कोश में ‘मार्गारूढ़ होने’ के अर्थ में नहीं मिलता, पर एडगर्टन ने ‘बुद्धिष्ट हायब्रिड संस्कृत कोश’ में दिखाया है कि ‘प्रतिपन्न’ मार्गारूढ़ होने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अतः इसे रखा जा सकता है। हिंदी को एक नया शब्द मिलेगा।

"सारिपुत्त! यहां बहुत से सम-चित्त वाले देवता मेरे पास आये। आकर मुझे प्रणाम कर एक ओर बैठ गये।

"सारिपुत्त! एक ओर स्थित उन देवताओं ने मुझे यह कहा –

"भंते! मिगार-माता के पूर्वाराम प्रासाद में स्थित आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं को आंतरिक-संयोजन वाले व्यक्ति के बारे में तथा बाह्य-संयोजन वाले व्यक्ति के बारे में उपदेश दिया है। भंते! परिषद प्रसन्न है। भंते! अच्छा हो यदि आप अनुकंपा कर आयुष्मान सारिपुत्त के पास चलें। सारिपुत्त! वे देवता दस हों, बीस हों, तीस हों, चालीस हों, पचास हों, साठ हों वे सब सूई की नोक (गिरने) के स्थान पर खड़े हो जाते हैं और परस्पर एक दूसरे को बाधा नहीं पहुँचाते (रगड़ नहीं खाते)।

"हो सकता है सारिपुत्त! तेरे मन में ऐसा हो कि उन देवताओं ने वहां इस प्रकार चित्त का अभ्यास किया है कि वे देवता चाहे दस हों, चाहे बीस हों, चाहे तीस हों, चाहे चालीस हों... सूई की नोक के स्थान पर रह सकते हैं और परस्पर एक दूसरे को बाधा नहीं पहुँचाते। नहीं सारिपुत्त! ऐसा नहीं समझना चाहिए – यहीं[१] (शील, समाधि, प्रज्ञा के क्षेत्र में और मनुष्य लोक में) उन देवताओं ने ऐसा चित्त-अभ्यास किया है कि वे चाहे दस हों... बाधा नहीं पहुँचाते।

"इसलिए सारिपुत्त! यह सीखना चाहिए कि हम शांत इंद्रिय वाले, शांत मानस वाले होंगे। ऐसा ही सारिपुत्त, सीखना चाहिए। शांत इंद्रिय वालों के, शांत मानस वालों के ही कायिक-कर्म शांत होंगे। वाचिक, मानसिक कर्म शांत होंगे। हम अपने सब्रह्मचारियों को उपहार में शांति ही देंगे। तुम्हें सारिपुत्त! ऐसा ही सीखना चाहिए। जिन दूसरे अन्यतैर्थिक परिव्राजकों ने इस धर्म को नहीं सुना वे विनाश को प्राप्त हुए।"

---

१ भगवान बुद्ध का धर्म विश्वजनीन नियमों पर आधारित है जैसे आग कभी आग से नहीं बुझती, वैसे ही वैर कभी वैर से शांत नहीं होता। अगर हम किसी पर क्रोध करेंगे तो पहले हम ही क्रोध से जलेंगे। इसलिए जब **'इधेव'** शब्द का प्रयोग होता है तब इसका अर्थ सांप्रदायिक बौद्ध धर्म से नहीं, बल्कि वैसे धर्म से है जो विश्वजनीन है जैसे शील, समाधि और प्रज्ञा। पू. गोयन्का जी के अनुसार शील का पालन करना भला किस धर्म में नहीं सिखाया जाता? इस चपल चंचल चित्त को एकाग्र करना कौन धर्म अच्छा नहीं कहता? और प्रज्ञा को जगाना, विकसित करना, पूर्ण करना तथा इसकी अवाप्ति (प्राप्ति) तो धर्म का एक मात्र उच्चतम लक्ष्य है। जहां-जहां भगवान बुद्ध ने **'इधेव'** शब्द का प्रयोग किया है वहां यह बताने के लिए किया है कि उस शासन में अर्थात शील, समाधि तथा प्रज्ञा से ही मानवता का कल्याण संभव है, किसी तथाकथित सांप्रदायिक धर्म से नहीं।

३८. ऐसा मैंने सुना। एक समय आयुष्मान महाकच्चान भद्दसारि के किनारे पर वरणा में विहार कर रहे थे।

उस समय आरामदण्ड ब्राह्मण आयुष्मान महाकच्चान के पास गया। जाकर आयुष्मान महाकच्चान के साथ बातचीत की और कुशलक्षेम पूछा। कुशलक्षेम पूछ चुकने के बाद वह ब्राह्मणएक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठे हुए आरामदण्ड ब्राह्मण ने आयुष्मान महाकच्चान को यह कहा –

"हे कच्चान! इसका क्या हेतु है, इसका क्या कारण है कि क्षत्रिय भी क्षत्रियों के साथ विवाद करते हैं, ब्राह्मण भी ब्राह्मणों के साथ विवाद करते हैं, गृहपति भी गृहपतियों के साथ विवाद करते हैं?"

"कामभोगों के प्रति आसक्ति के कारण, कामभोगों के जाल में फँसे होने के कारण, कामभोगों के कीचड़ में धँसे होने के कारण, कामभोगों के गर्त में गड़े होने के कारण हे ब्राह्मण! क्षत्रिय भी क्षत्रियों से विवाद करते हैं, ब्राह्मण भी ब्राह्मणों से विवाद करते हैं, गृहपति भी गृहपतियों के साथ विवाद करते हैं।"

"हे कच्चान! इसका क्या हेतु है, इसका क्या कारण है कि श्रमण भी श्रमणों के साथ विवाद करते हैं?"

"दृष्टि (=मत-विशेष) के प्रति आसक्ति के कारण, दृष्टि के जाल में फँसे होने के कारण, दृष्टि के कीचड़ में धँसे होने के कारण, दृष्टि के गर्त में गड़े होने के कारण हे ब्राह्मण! श्रमण भी श्रमणों के साथ विवाद करते हैं।"

"हे कच्चान! क्या कोई इस लोक में ऐसा है जो कामभोगों की आसक्ति और बंधन आदि के तथा दृष्टि की आसक्ति और बंधन आदि के उस पार चला गया हो?"

"हे ब्राह्मण! लोक में ऐसा (व्यक्तित्व) है जो कामभोगों की आसक्ति और बंधन आदि तथा दृष्टि की आसक्ति और बंधन आदि के उस पार चला गया है।"

"हे कच्चान! लोक में ऐसा कौन है जो कामभोगों की आसक्ति और बंधन आदि तथा दृष्टि की आसक्ति और बंधन आदि के उस पार चला गया है?"

"हे ब्राह्मण! पूर्व जनपद में श्रावस्ती नाम का नगर है। इस समय वे भगवान अर्हत सम्यक संबुद्ध वहां विहार करते हैं। हे ब्राह्मण! वे भगवान कामभोगों की आसक्ति और बंधन आदि तथा दृष्टि की आसक्ति और बंधन आदि के उस पार चले गये हैं।"

ऐसा कहे जाने पर आरामदण्ड ब्राह्मण ने आसन से उठ, वस्त्र को एक कंधे पर कर, दायें घुटने को पृथ्वी पर टेक, जिस ओर भगवान थे उस ओर हाथ जोड़ तीन बार उदान वाक्य कहा –

"उन भगवान अर्हत सम्यक संबुद्ध को नमस्कार है। उन भगवान अर्हत सम्यक संबुद्ध को नमस्कार है। उन भगवान अर्हत सम्यक संबुद्ध को नमस्कार है। उन भगवान को जो कामभोगों की आसक्ति और बंधन आदि तथा दृष्टि की आसक्ति और बंधन आदि के उस पार चले गये हैं।

"सुंदर, हे कच्चान! बहुत सुंदर, कच्चान! जैसे कोई उल्टे को सीधा कर दे, ढँके को उघाड़ दे, मार्ग-भूले को रास्ता बता दे अथवा अंधेरे में मशाल धारण करे, जिससे आंख वाले चीजों को देख सकें। इसी प्रकार आप कच्चान ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया है। मैं उन भगवान गौतम की शरण, धर्म तथा संघ की शरण जाता हूं। आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

३९. एक समय आयुष्मान महाकच्चान मधुरा (मथुरा) में गुन्दावन में विहार करते थे। तब कन्दरायन ब्राह्मण आयुष्मान महाकच्चान के पास आया। आकर आयुष्मान महाकच्चान के साथ... एक ओर बैठे हुए कन्दरायन ब्राह्मण ने आयुष्मान महाकच्चान को यह कहा –

"हे कच्चान! मैंने सुना है कि श्रमण कच्चान बड़े, बूढ़े, ज्येष्ठ, आयु-प्राप्त ब्राह्मणों का न अभिवादन करता है, न सत्कार करता है, न उन्हें (आदरपूर्वक) आसन देता है। हे कच्चान! यदि यह ऐसा ही है कि आप कच्चान बड़े, बूढ़े, ज्येष्ठ, आयु-प्राप्त ब्राह्मणों का न अभिवादन करते हैं, न सत्कार करते हैं, न उन्हें (आदरपूर्वक) आसन देते हैं तो यह ठीक नहीं है।"

"हे ब्राह्मण! उन जानने वाले, देखने वाले अर्हत सम्यक संबुद्ध ने वृद्ध (ज्येष्ठ) तथा युवा (कनिष्ठ) की व्याख्या की है।

"हे ब्राह्मण! यदि कोई आयु से अस्सी वर्ष का हो, नब्बे वर्ष का हो अथवा सौ वर्ष का हो, किंतु वह कामभोग में रत हो, कामभोग के बीच में रहता हो, कामभोग की जलन से जलता हो, कामभोग के वितर्कों का शिकार बनता हो, कामभोग के लिए इच्छुक रहता हो तो वह थेर न कहलाकर मूर्ख ही कहलायगा।

"हे ब्राह्मण! यदि कोई छोटा भी हो, तरुण हो, काले बालों वाला हो, श्रेष्ठ यौवन से युक्त हो, अपनी प्रथम-आयु में ही हो, किंतु वह कामभोग में रत न हो, कामभोग के बीच में न रहता हो, कामभोग की जलन से न जलता हो,

कामभोग के वितर्कों का शिकार न बनता हो, कामभोग के लिए इच्छुक न रहता हो तो वह पंडित और थेर ही कहलायगा।

ऐसा कहे जाने पर कन्दरायन ने आसन से उठकर, वस्त्र को एक कंधे पर कर, छोटे भिक्षुओं के चरणों में सिर से नमस्कार किया। आप लोग पंडित हैं, सही माने में वृद्ध (स्थविर) हैं। हम लोग युवक (कनिष्ठ) हैं, सही माने में मूर्ख हैं।

"सुंदर, हे कच्चान!... हे कच्चान! आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक समझें।"

४०. "भिक्षुओ, जिस समय चोर बलवान होते हैं, उस समय राजागण दुर्बल हो जाते हैं। उस समय भिक्षुओ, राजाओं के लिए बाहर-भीतर आना-जाना सुकर नहीं रहता तथा प्रत्यंत-जनपद की देखभाल करना भी सुकर नहीं रहता। उसी प्रकार ब्राह्मण-गृहपतियों के लिए भी उस समय बाहर आना-जाना तथा बाहर के कामों का निरीक्षणकरना सुकर नहीं रहता।

"उसी प्रकार भिक्षुओ, जिस समय दुराचारी भिक्षु सबल हो जाते हैं, उस समय सदाचारी भिक्षु दुर्बल हो, संघ के बीच मुँह बंद किये बैठे रहते हैं अथवा प्रत्यंत-जनपद की ओर चले जाते हैं; भिक्षुओ, यह बहुत जनों के अहित के लिए होता है, बहुत जनों के असुख के लिए होता है, बहुत जनों के अनर्थ, अहित तथा देव-मनुष्यों के दुःख के लिए होता है।

"भिक्षुओ, जिस समय राजा बलवान होते हैं, चोर दुर्बल होते हैं, उस समय भिक्षुओ, राजाओं के लिए बाहर-भीतर आना-जाना सुकर होता है तथा प्रत्यंत-जनपद की देखभाल करना भी सुकर होता है। उसी प्रकार ब्राह्मण-गृहपतियों के लिए भी उस समय बाहर आना-जाना तथा बाहर के कामों का निरीक्षणकरना सुकर रहता है।

"उसी प्रकार भिक्षुओ, जिस समय सदाचारी भिक्षु सबल रहते हैं, उस समय दुराचारी भिक्षु दुर्बल हो जाते हैं। उस समय दुराचारी भिक्षु दुर्बल हो संघ के बीच मुँह बंद किये बैठे रहते हैं अथवा जहां-तहां चले जाते हैं; भिक्षुओ, यह बहुत जनों के हित के लिए होता है, बहुत जनों के सुख के लिए होता है, बहुत जनों के अर्थ, हित तथा देव-मनुष्यों के सुख के लिए होता है।"

४१. "भिक्षुओ, मैं दो जनों की मिथ्या-चर्या (मिथ्या आचरण) की प्रशंसा नहीं करता हूं, गृहस्थों की तथा प्रव्रजितों की। भिक्षुओ, चाहे गृहस्थ हो, चाहे प्रव्रजित हो यदि मिथ्या-प्रतिपन्न (मिथ्या मार्ग पर आरूढ़) है तो अपनी मिथ्या-चर्या के कारण वह उचित विधि, कुशल-धर्म को प्राप्त नहीं कर सकता।

“भिक्षुओ, मैं दो जनों की सम्यक-चर्या की प्रशंसा करता हूं, गृहस्थों की तथा प्रव्रजितों की। भिक्षुओ, चाहे गृहस्थ हो, चाहे प्रव्रजित हो, यदि वह सम्यक-प्रतिपन्न है तो अपनी सम्यक-चर्या के कारण वह उचित विधि, कुशल-धर्म को प्राप्त कर सकता है।”

४२. “भिक्षुओ, जो भिक्षु दुर्गृहीत[1] सूत्रों से अक्षरशः व्याख्या कर, अर्थ और धर्म (सार-भाव) का अनादर करते हैं (नहीं मानते हैं), भिक्षुओ, वे भिक्षु बहुत जनों का अहित करने वाले हैं, बहुत जनों के असुख के लिए हैं, बहुत जनों के अनर्थ के लिए, अहित के लिए तथा देव-मनुष्यों के दुःख के लिए हैं। भिक्षुओ, वे भिक्षु बहुत अपुण्यार्जन करते हैं, तथा सद्धर्म के अंतर्धान होने में सहायता करते हैं।

“भिक्षुओ, जो भिक्षु सुगृहीत सूत्रों से अक्षरशः व्याख्या कर, अर्थ और धर्म (सार-भाव) का अनुसरण करते हैं, भिक्षुओ, वे भिक्षु बहुत जनों का हित करने वाले हैं, बहुत जनों के सुख के लिए हैं, बहुत जनों के अर्थ के लिए, हित के लिए तथा देव-मनुष्यों के सुख के लिए हैं, भिक्षुओ, वे भिक्षु बहुत पुण्यार्जन करते हैं तथा सद्धर्म की स्थापना करते हैं।”

* * * * *

५. परिषद वर्ग

४३. “भिक्षुओ, परिषद दो प्रकार की होती है।

“कौन-सी दो?

“उथली-परिषद तथा गंभीर-परिषद।

“भिक्षुओ, उथली परिषद कौन-सी होती है?

“भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु उद्धत होते हैं, अभिमानी होते हैं, चपल होते हैं, मुखर होते हैं, असंयतभाषी होते हैं, विस्मृत-स्मृति होते हैं, असंप्रज्ञ होते हैं, असमाहित होते हैं, भ्रांतचित्त होते हैं, असंयत-इंद्रिय होते हैं – भिक्षुओ, ऐसी परिषद उथली-परिषद कहलाती है।

“भिक्षुओ, गंभीर-परिषद कौन-सी होती है?

“भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु अनुद्धत होते हैं, अभिमान-रहित होते हैं, चपल नहीं होते, मुखर नहीं होते, संयत-भाषी होते हैं, स्मृतिमान होते हैं, संप्रज्ञानी होते हैं, समाहित होते हैं, एकाग्र-चित्त होते हैं तथा संयत-इंद्रिय होते हैं – भिक्षुओ, ऐसी परिषद गंभीर-परिषद कहलाती है।

---

१ **‘दुग्गहितेहीति उप्पटिपाटिया गहितेहि’** (पालि) = असंभव अर्थ ग्रहण कर।

"भिक्षुओ, ये दो प्रकार की परिषदें हैं। भिक्षुओ, इन दो प्रकार की परिषदों में यही श्रेष्ठ है जो कि यह गंभीर-परिषद है।"

४४. "भिक्षुओ, दो प्रकार की परिषद होती है।

"कौन-सी दो?

"गुटों में बँटी परिषद तथा समग्र (एकजुट) परिषद।

"भिक्षुओ, गुटों में बँटी परिषद कौन-सी होती है? भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु परस्पर झगड़ा करते हैं, कलह करते हैं, विवाद करते हैं, एक-दूसरे को शब्दशूल से बींधते रहते हैं – भिक्षुओ, इस प्रकार की परिषद गुटों में बँटी परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, समग्र-परिषद कौन-सी होती है?

"भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु मिल-जुलकर प्रसन्नतापूर्वक, बिना विवाद करते हुए, दूध-पानी की तरह मिले हुए, एक दूसरे को प्रेमभरी दृष्टि से देखते हुए विहार करते हैं– भिक्षुओ, इस प्रकार की परिषद समग्र-परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, ये दो प्रकार की परिषदें हैं। भिक्षुओ, इन दो प्रकार की परिषदों में यही श्रेष्ठ है जो कि यह समग्र-परिषद है।"

४५. "भिक्षुओ, दो प्रकार की परिषद होती है।

"कौन-सी दो प्रकार?

"हीन-परिषद तथा श्रेष्ठ-परिषद।

"भिक्षुओ, हीन-परिषद कैसी होती है?

"भिक्षुओ, जिस परिषद में स्थविर भिक्षु अल्पेच्छ नहीं होते, शिथिल होते हैं, पतनोन्मुख होते हैं, एकांत-सेवन के प्रति उदासीन होते हैं, अप्राप्त की प्राप्ति के लिए, जो हस्तगत नहीं है उसे हस्तगत करने के लिए, जिसका साक्षात नहीं हुआ है उसका साक्षात करने के लिए प्रयत्नशील नहीं होते; उनके अनुयायी भी उनका अनुकरण करते हैं, वे भी अल्पेच्छ नहीं होते, शिथिल होते हैं, पतनोन्मुख होते हैं, एकांत-सेवन के प्रति उदासीन होते हैं, अप्राप्त की प्राप्ति के लिए, जो हस्तगत नहीं है उसे हस्तगत करने के लिए, जिसका साक्षात नहीं हुआ है उसका साक्षात करने के लिए, प्रयत्नशील नहीं होते। भिक्षुओ, ऐसी परिषद हीन-परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, श्रेष्ठ-परिषद कैसी होती है?

"भिक्षुओ, जिस परिषद में स्थविर भिक्षु अल्पेच्छ होते हैं, शिथिल नहीं होते, पतन की ओर अग्रसर नहीं होते, एकांत-सेवन के प्रति उदासीन नहीं

होते, अप्राप्त की प्राप्ति के लिए, जो हस्तगत नहीं है उसे हस्तगत करने के लिए, जिसका साक्षात नहीं हुआ है उसका साक्षात करने के लिए प्रयत्नशील होते हैं, उनके अनुयायी भी उनका अनुकरण करते हैं, वे भी अल्पेच्छ होते हैं, शिथिल नहीं होते, पतन की ओर अग्रसर नहीं होते, एकांत-सेवन के प्रति उदासीन नहीं होते, अप्राप्त की प्राप्ति के लिए, जो हस्तगत नहीं हुआ है उसे हस्तगत करने के लिए, जिसका साक्षात नहीं हुआ है उसका साक्षात करने के लिए प्रयत्नशील होते हैं। भिक्षुओ, इस प्रकार की परिषद श्रेष्ठ-परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, ये दो प्रकार की परिषदें हैं। इन दोनों प्रकार की परिषदों में यही उत्तम है, जो यह श्रेष्ठ-परिषद है।"

४६. "भिक्षुओ, दो प्रकार की परिषद होती है।

"कौन-सी दो?

"अनार्य-परिषद तथा आर्य-परिषद।

"भिक्षुओ, अनार्य-परिषद कौन-सी होती है?

"भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु 'यह दुःख है' इसे यथार्थ रूप से नहीं जानते, 'यह दुःख-समुदय है' इसे यथार्थ रूप से नहीं जानते, 'यह दुःख-निरोध है' इसे यथार्थ रूप से नहीं जानते, 'यह दुःख-निरोधगामिनी प्रतिपदा (मार्ग) है' इसे यथार्थ रूप से नहीं जानते – भिक्षुओ, ऐसी परिषद अनार्य-परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, आर्य-परिषद कौन-सी होती है?

"भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु 'यह दुःख है' इसे यथार्थ रूप से जानते हैं, 'यह दुःख-समुदय है' इसे यथार्थ रूप से जानते हैं, 'यह दुःख-निरोध है' इसे यथार्थ रूप से जानते हैं, 'यह दुःख-निरोधगामिनी प्रतिपदा है' इसे यथार्थ रूप से जानते हैं – ऐसी परिषद आर्य-परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, ये दो प्रकार की परिषदें हैं। भिक्षुओ, इन दो प्रकार की परिषदों में यही श्रेष्ठ है, जो यह आर्य-परिषद है।"

४७. "भिक्षुओ, दो प्रकार की परिषद होती है।

"कौन-सी दो?

"निःसार-परिषद तथा सारवान-परिषद।

"भिक्षुओ, निःसार-परिषद कौन-सी होती है?

"भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु राग के कारण कुमार्ग पर चलते हैं, द्वेष के कारण कुमार्ग पर चलते हैं, मोह के कारण कुमार्ग पर चलते हैं, भय के कारण कुमार्ग पर चलते हैं –ऐसी परिषद, भिक्षुओ, निःसार-परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, सारवान-परिषद कौन-सी होती है?

"भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु राग के कारण कुमार्ग पर नहीं चलते हैं, द्वेष के कारण कुमार्ग पर नहीं चलते हैं, मोह के कारण कुमार्ग पर नहीं चलते हैं, भय के कारण कुमार्ग पर नहीं चलते हैं – ऐसी परिषद, भिक्षुओ, सारवान-परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, ये दो प्रकार की परिषदें हैं। इन दो प्रकार की परिषदों में यही श्रेष्ठ है, जो यह सारवान-परिषद है।"

४८. "भिक्षुओ, दो प्रकार की परिषदहोती है।

"कौन-सी दो?

"दुर्विनीत और प्रश्नोत्तर द्वारा अविनीत तथा प्रश्नोत्तर द्वारा विनीत और सुविनीत।

"भिक्षुओ, दुर्विनीत और प्रश्नोत्तर द्वारा अविनीत परिषद कैसी होती है? भिक्षुओ, जिस परिषद में जो तथागत द्वारा भाषित गंभीर, गंभीर अर्थ वाले, लोकोत्तर,तथा शून्यता-युक्त सूक्त हैं उनके कहेजाते समय न उन्हें सुनते हैं, न कानदेते हैं, न समझने के लिए उस ओर चित्त एकाग्रकरतेहैं, न उन धर्मों को सीखने योग्य तथा प्रवीणता प्राप्त करनेयोग्य मानते हैं; किंतुजो कविकृतकाव्य सूक्त हैं, जिनके अक्षरों तथा व्यंजनों में विचित्रता है, जो (धर्म से) बाह्य हैं, जो (अन्य-) श्रावक भाषित हैं, उनके कहेजाते समय उन्हें सुनते हैं, उधर कानदेते हैं, समझने के लिए उस ओर चित्त एकाग्रकरतेहैं, उन धर्मों कोसीखने योग्य तथा प्रवीणता प्राप्त करनेयोग्य मानते हैं। वे उन धर्मों कोधारण करआपस में, यह कैसेहै, इसका क्या अर्थ है इस तरह का प्रश्न करकेउन पर परिचर्चा नहीं करते,वे उलझे कोसुलझाते नहीं हैं, वे अस्पष्ट कोस्पष्ट नहीं करतेहैं, अनेक प्रकार के संदिग्ध स्थलों से शंका-संदेह दूर नहीं करते।भिक्षुओ, ऐसी परिषद दुर्विनीत और प्रश्नोत्तर द्वारा अविनीत परिषद कहलातीहै।

"भिक्षुओ, प्रश्नोत्तर द्वारा विनीत और सुविनीत परिषद कैसी होती है? भिक्षुओ, जिस परिषद में जो कविकृतकाव्य-सूक्त हैं, जिनके अक्षरों तथा व्यंजनों में विचित्रता है, जो बाह्य हैं, जो (अन्य-) श्रावक भाषित हैं उनके कहे जाते समय न उन्हें सुनते हैं, न कानदेते हैं, न समझने के लिए उस ओर चित्त एकाग्रकरतेहैं, न उन धर्मों कोसीखने योग्य तथा प्रवीणता प्राप्त करनेयोग्य मानते हैं, किंतु जो तथागत द्वारा भाषित गंभीर, गंभीर अर्थ वाले, लोकोत्तर तथा शून्यता-युक्त सूक्त हैं उनके कहेजाते समय उन्हें सुनते हैं, उधर कान देते हैं, समझने के लिए उधर चित्त एकाग्रकरतेहैं, उन धर्मों कोसीखने तथा

प्रवीणता प्राप्त करने योग्य मानते हैं। वे उन धर्मों को धारण कर आपस में, यह कैसे है, इसका क्या अर्थ है इस तरह का प्रश्न करके उन पर परिचर्चा करते हैं, वे उलझे को सुलझाते हैं, वे अस्पष्ट को स्पष्ट करते हैं, वे अनेक प्रकार के संदिग्ध-स्थलों से शंका-संदेह दूर कर देते हैं। भिक्षुओ, ऐसी परिषद प्रश्नोत्तर द्वारा विनीत और सुविनीत परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ ये दो प्रकार की परिषदें हैं। इन दो प्रकार की परिषदों में यही श्रेष्ठ है जो यह प्रश्नोत्तर द्वारा विनीत और सुविनीत परिषद कहलाती है।"

४९. "भिक्षुओ, ये दो प्रकार की परिषद होती है।

"कौन-सी दो?

"भौतिक चीजों को महत्त्व देने वाली किंतु सद्धर्म को महत्त्व न देने वाली; सद्धर्म को महत्त्व देने वाली किंतु भौतिक चीजों को महत्त्व न देने वाली।

"भिक्षुओ, भौतिक चीजों को महत्त्व देने वाली किंतु सद्धर्म को महत्त्व न देने वाली परिषद कैसी होती है? भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु श्वेत-वस्त्रधारी गृहस्थों के सम्मुख परस्पर यह कहते हैं कि अमुक भिक्षु दोनों भागों से विमुक्त है (जो आठ प्रकार के विमोक्षों को नाम-काय से साक्षात्कार कर विहार करता है और प्रज्ञा से आस्रवों को पूर्ण रूप से नष्ट करता है), अमुक प्रज्ञा-विमुक्त है (आठ विमोक्षों को काय से साक्षात्कार नहीं करता है लेकिन प्रज्ञा से आस्रवों को क्षीण करता है), अमुक काय-साक्षी है (आठ विमोक्षों का काय से साक्षात्कार करता है और प्रज्ञा से कुछ आस्रवों को पूरी तरह नष्ट करता है), अमुक दृष्टि-प्राप्त है (अमुक दृष्टियों के अंत तक पहुँच गया है, जिसे चारों आर्यसत्यों का सम्यक ज्ञान है और जिसने उनका अभ्यास और कुछ आस्रवों का प्रहाण किया है), अमुक श्रद्धा-विमुक्त है (यह भी दृष्टि-प्राप्त की तरह ही है पर पूर्ण रूप से नहीं: कुछ आस्रवों का यह पूर्ण प्रहाण करते हैं लेकिन दृष्टि-प्राप्त की तरह नहीं), अमुक धर्मानुसारी है (स्रोतापत्ति फल के साक्षात्कार के लिए जो मार्गारूढ़ होता है, जिसकी प्रज्ञा बलवती है, जो आर्य मार्ग की भावना करता है वही धर्मानुसारी है), अमुक श्रद्धानुसारी है (स्रोतापत्ति फल के साक्षात्कार के लिए मार्गारूढ़ है लेकिन प्रज्ञा की जगह श्रद्धा बलवती होती है।), अमुक शीलवान, सदाचारी है, तथा अमुक दुःशील, दुराचारी है... कहकर प्रशंसा करते हैं, उससे उन्हें कुछ लाभ होता है, उस लाभ को प्राप्त कर, उस लाभ में ग्रथित, उससे मूर्च्छित हुए, उसमें आसक्त हुए, उसके दुष्परिणामों की ओर से लापरवाह, उससे बाहर निकलने की प्रज्ञा से विहीन रहकर उन वस्तुओं का परिभोग करते हैं। भिक्षुओ, भौतिक-चीजों को महत्त्व देने वाली किंतु सद्धर्म को महत्त्व न देने वाली परिषद ऐसी होती है।

“भिक्षुओ, सद्धर्म को महत्त्व देने वाली किंतु भौतिक-चीजों को महत्त्व न देने वाली परिषद कैसी होती है? भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु श्वेत-वस्त्रधारी गृहस्थों के सम्मुख परस्पर यह नहीं कहते कि अमुक भिक्षु दोनों भागों से विमुक्त है, अमुक प्रज्ञा-विमुक्त है, अमुक काय-साक्षी है, अमुक दृष्टियों के अंत तक पहुँच गया है, अमुक श्रद्धा-विमुक्त है, अमुक श्रद्धानुसारी है, अमुक धर्मानुसारी है, अमुक शीलवान सदाचारी है तथा अमुक दु:शील दुराचारी है... कहकर प्रशंसा नहीं करते, उससे उन्हें लाभों की प्राप्ति होती है, उन लाभों को प्राप्त कर, उन लाभों में ग्रथित न हुए, उन लाभों से मूर्च्छित न हुए, उन लाभों में न आसक्त हुए, उनके दुष्परिणामों के प्रति सजग, उससे बाहर निकलने की प्रज्ञा से युक्त रहकर उन वस्तुओं का परिभोग करते हैं। भिक्षुओ, सद्धर्म को महत्त्व देने वाली किंतु भौतिक-चीजों को महत्त्व न देने वाली परिषद ऐसी होती है।

“भिक्षुओ, ये दो प्रकार की परिषदें हैं। इन दो प्रकार की परिषदों में यही श्रेष्ठ है जो यह सद्धर्म को महत्त्व देने वाली किंतु भौतिक-चीजों को महत्त्व न देने वाली है।”

५०. “भिक्षुओ, दो प्रकार की परिषद होती है।

“कौन-सी दो?

“विषम तथा सम।

“भिक्षुओ, विषम-परिषद कौन-सी होती है?

“भिक्षुओ, जिस परिषद में अधार्मिक-कार्य होते हैं, धार्मिक-कार्य नहीं होते; अविनय (विनयविरुद्ध)-कर्म होते हैं, विनय (विनयानुसार)-कर्म नहीं होते; अधार्मिक-कार्य प्रकाशित होते हैं, धार्मिक-कार्य प्रकाशित नहीं होते, अविनय-कर्म प्रकाशित होते हैं, विनय-कर्म प्रकाशित नहीं होते – भिक्षुओ, ऐसी परिषद विषम-परिषद कहलाती है।

“भिक्षुओ, सम-परिषद कौन-सी होती है?

“भिक्षुओ, जिस परिषद में धार्मिक-कार्य होते हैं, अधार्मिक-कार्य नहीं होते; विनय-कर्म होते हैं, अविनय-कर्म नहीं होते; धार्मिक-कार्य प्रकाशित होते हैं, अधार्मिक-कार्य प्रकाशित नहीं होते, विनय-कर्म प्रकाशित होते हैं, अविनय-कर्म प्रकाशित नहीं होते – भिक्षुओ, ऐसी परिषद सम-परिषद कहलाती है।

“भिक्षुओ, ये दो प्रकार की परिषदें हैं। भिक्षुओ, इन दो प्रकार की परिषदों में यही श्रेष्ठ है जो यह सम-परिषद है।”

५१. "भिक्षुओ, दो प्रकार की परिषदहोती है।

"कौन-सी दो?

"अधार्मिक-परिषद तथा धार्मिक-परिषद... (अनुच्छेद ५० की तरह)... भिक्षुओ, ये दो प्रकार की परिषदें हैं। भिक्षुओ, इन दो प्रकार की परिषदों में यही श्रेष्ठ है जो यह धार्मिक-परिषद है।"

५२. "भिक्षुओ, दो प्रकार की परिषदहोती है।

"कौन-सी दो?

"अधर्मवादी-परिषद तथा धर्मवादी परिषद।

"भिक्षुओ, अधर्मवादी-परिषद कौन-सी होती है?

"भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु धार्मिक अथवा अधार्मिक विवाद उपस्थित करते हैं। वे उस विवाद को लेकर एक दूसरे को सूचित नहीं करते, न छान-बीन या जांच-पड़ताल के लिए एकत्र होते हैं, और न मेल-मिलाप करते हैं और न मेल-मिलाप करवाने के लिए एकत्र होते हैं। वे सूचना देने को अस्वीकार कर, मेल-मिलाप कर झगड़ा समाप्त कराने को अस्वीकार कर, पक्ष-विशेष को ग्रहण करने वाले, उसी विवाद को दृढ़ता से ग्रहण कर, पकड़कर मान लेते हैं कि यही ठीक है और सब गलत है –भिक्षुओ, ऐसी परिषद अधर्मवादी परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, धर्मवादी परिषद कैसी होती है?

"भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु धार्मिक अथवा अधार्मिक विवाद उपस्थित करते हैं, वे उस विवाद को लेकर एक दूसरे को सूचित करते हैं, उस पर छान-बीन करने के लिए एकत्र होते हैं, मेल-मिलाप करते हैं और मेल-मिलाप करवाने के लिए एकत्र होते हैं, वे सूचना देने को स्वीकार कर, मेल-मिलाप कर झगड़ा समाप्त कराने को स्वीकार कर, पक्ष-विशेष को न ग्रहण करने वाले, उसी विवाद को दृढ़ता से ग्रहण कर, पकड़कर नहीं मान लेते कि यही ठीक है और सब गलत है – भिक्षुओ, ऐसी परिषद धर्मवादी परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, ये दो प्रकार की परिषदें हैं। इन दो प्रकार की परिषदों में यही श्रेष्ठ है जो यह धर्मवादी परिषद है।"

* * * * *

विषय-सूची

द्विक -निपात (६-१०)

२. द्वितीय पंचाशतक

२. द्वितीय पंचाशतक

(६) १. पुद्गल वर्ग

५३. "भिक्षुओ, लोक में दो व्यक्ति बहुजन-हित के लिए, बहुजन-सुख के लिए उत्पन्न होते हैं, बहुत जनों के अर्थ, हित तथा देव-मनुष्यों के सुख के लिए उत्पन्न होते हैं।

"कौन-से दो व्यक्ति?

"सम्यक-संबुद्ध अर्हत तथागत और चक्रवर्ती-राजा। भिक्षुओ, ये दो व्यक्ति लोक में बहुजन-हित के लिए, बहुजन-सुख के लिए उत्पन्न होते हैं, बहुत जनों के अर्थ, हित तथा देव-मनुष्यों के सुख के लिए उत्पन्न होते हैं।"

५४. "भिक्षुओ, लोक में दो असाधारण मनुष्य जन्म लेते हैं।

"कौन-से दो?

"सम्यक संबुद्ध अर्हत तथागत और चक्रवर्ती-राजा।भिक्षुओ, लोक में ये दो असाधारण मनुष्य जन्म लेते हैं।"

५५. "भिक्षुओ, इन दो व्यक्तियों की मृत्यु बहुत जनों के अनुताप का कारण होती है।

"किन दो की?

"सम्यक संबुद्ध अर्हत तथागत की और चक्रवर्ती-राजा की।भिक्षुओ, इन दो व्यक्तियों की मृत्यु बहुत जनों के अनुताप का कारण होती है।"

५६. "भिक्षुओ, ये दो स्तूपार्ह हैं (जिनके अवशेष पर स्तूप बनाये जा सकते हैं)।

"कौन-से दो?

"सम्यक संबुद्ध अर्हत तथागत तथा चक्रवर्ती-राजा।

"भिक्षुओ, ये दो स्तूपार्ह हैं।"

५७. "भिक्षुओ, ये दो बुद्ध होते हैं।

"कौन-से दो?

"सम्यक संबुद्ध अर्हत तथागत तथा प्रत्येक-बुद्ध।

"भिक्षुओ, ये दो बुद्ध होते हैं।"

५८. "भिक्षुओ, ये दो बिजली के कड़कने पर डरते नहीं।

"कौन-से दो?

"क्षीणास्रव भिक्षु तथा श्रेष्ठ हाथी।

"भिक्षुओ, ये दो बिजली के कड़कने पर डरते नहीं।"

५९. "भिक्षुओ, ये दो बिजली के कड़कने पर डरते नहीं।

"कौन-से दो?

"क्षीणास्रव भिक्षु तथा श्रेष्ठ अश्व।

"भिक्षुओ, ये दो बिजली के कड़कने पर डरते नहीं।"

६०. "भिक्षुओ, ये दो बिजली के कड़कने पर डरते नहीं।

"कौन-से दो?

"क्षीणास्रव भिक्षु तथा मृगराज सिंह।

"भिक्षुओ, ये दो बिजली के कड़कने पर डरते नहीं।"

६१. "भिक्षुओ, दो बातों का विचार कर किन्नर मानुषी-भाषा नहीं बोलते।

"कौन-सी दो?

"हम झूठ न बोलें तथा गलत दोषारोपण न करें।

"भिक्षुओ, इन दो बातों का विचार कर किन्नर मानुषी-भाषा नहीं बोलते।"

६२. "भिक्षुओ, स्त्रियां दो बातों से असंतुष्ट रह कर ही शरीर त्याग करती हैं।

"कौन-सी दो से?

"मैथुन तथा संतानोत्पत्ति की इच्छा से।

"भिक्षुओ, स्त्रियां इन दो बातों से असंतुष्ट रह कर ही शरीर त्याग करती हैं।"

६३. "भिक्षुओ, तुम्हें असंत-सहवास तथा संत-सहवास के बारे में उपदेश देता हूं। इसे सुनो, अच्छी तरह मन में धारण करो। कहता हूं।" "अच्छा, भंते!" कह कर भिक्षुओं ने भगवान को प्रतिवचन दिया। भगवान ने यह कहा –

"भिक्षुओ, असंत-सहवास कैसा होता है? असंत कैसे रहते हैं?

"भिक्षुओ, स्थविर भिक्षु सोचता है –

"'स्थविर भिक्षु भी मुझे कुछ न कहे, मध्यम-स्थविर भी मुझे कुछ न कहे, नया भी मुझे कुछ न कहे; मैं भी न स्थविर भिक्षु को कुछ कहूं, न मध्यम-स्थविर को कुछ कहूं और न नये भिक्षु को कुछ कहूं।

"'स्थविर मुझे कुछ कहेंगे तो अहित की ही बात कहेंगे, हित की बात नहीं कहेंगे। मैं भी उन्हें ''नहीं'' कह कर कष्ट दूंगा और उनका कहना ठीक है, यह जानते हुए भी उनका कहना नहीं करूंगा। मध्यम-स्थविर भी मुझे कुछ कहेंगे, नये भिक्षु भी मुझे कुछ कहेंगे तो अहित की ही बात कहेंगे, हित की बात नहीं

कहेंगे।मैं भी उन्हें ''नहीं'' कहकर कष्ट दूंगा और उनका कहना ठीक है, यह जानते हुए भी उनका कहना नहीं करूंगा'।

"'मध्यम-स्थविर भी सोचता है... नया भिक्षु भी सोचता है –

"'स्थविर भी मुझे कुछ न कहे, मध्यम-स्थविर भी मुझे कुछ न कहे, नया भी मुझे कुछ न कहे, मैं भी न स्थविर भिक्षु को कुछ कहूं, न मध्यम-स्थविर को कुछ कहूं और न नये भिक्षु को कुछ कहूं।

"'स्थविर मुझे कुछ कहेंगे तो अहित की ही बात कहेंगे, हित की बात नहीं कहेंगे।मैं भी उन्हें ''नहीं'' कहकर कष्ट दूंगा और उनका कहना ठीक है, यह जानते हुए भी उनका कहना नहीं करूंगा।मध्यम-स्थविर भी मुझे कुछ कहेंगे, नये भिक्षु भी मुझे कुछ कहेंगे तो अहित की ही बात कहेंगे, हित की बात नहीं कहेंगे।मैं उन्हें ''नहीं'' कहकर कष्ट दूंगा और उनका कहना ठीक है, यह जानते हुए भी उनका कहना नहीं करूंगा'। भिक्षुओ, इस प्रकार असंत-सहवास होता है। असंत इसी प्रकार रहते हैं।

"भिक्षुओ, संत-सहवास कैसा होता है? संत कैसे रहते हैं?

"भिक्षुओ, स्थविर भिक्षु सोचता है –

"'स्थविर भिक्षु भी मुझे कहे, मध्यम-स्थविर भी मुझे कहे, नया भिक्षु भी मुझे कहे; मैं भी स्थविर भिक्षुओं को कहूं, मध्यम-स्थविरों को कहूं, नये भिक्षु को कहूं।

"'स्थविर मुझे कुछ कहेंगे तो हित की ही बात कहेंगे, अहित की बात नहीं कहेंगे।मैं भी उन्हें ''अच्छा'' कहूंगा और कष्ट नहीं दूंगा। उनका कहना ठीक है, यह जानते हुए मैं उनका कहना करूंगा।मध्यम-स्थविर भी मुझे कुछ कहेंगे, नया भिक्षु भी मुझे कुछ कहेगा तो हित की ही बात कहेगा, अहित की बात नहीं कहेगा।मैं भी उन्हें ''अच्छा'' कहूंगा और कष्ट नहीं दूंगा। उनका कहना ठीक है, यह जानते हुए मैं उनका कहना करूंगा'। भिक्षुओ, इस प्रकार संत-सहवास होता है। संत इसी प्रकार रहते हैं।"

६४. "भिक्षुओ, जिस अधिकरण में दोनों ओर से कहा-सुनी रहेगी, दृष्टि-परिदाह रहेगा, चित्त कुपित रहेगा, दौर्मनस्य रहेगा, क्रोध रहेगा, आंतरिक अशांति रहेगी, उस अधिकरण के बारे में भिक्षुओ, यह आशा करनी चाहिए कि उनका कलह दीर्घकाल तक जारी रहेगा, वे परस्पर कठोर बोलते रहेंगे और हिंस्र बने रहेंगे तथा भिक्षु सुखपूर्वक न रह सकेंगे।

"भिक्षुओ, जिस अधिकरण में दोनों ओर से कहा-सुनी न होगी, दृष्टि-परिदाह न होगा, चित्त कुपित न रहेगा, दौर्मनस्य न रहेगा, क्रोध न रहेगा,

आंतरिक शांति रहेगी, उस अधिकरण के बारे में भिक्षुओ, यही आशा करनी चाहिए कि न उनका कलह दीर्घकाल तक जारी रहेगा, न वे परस्पर कठोर बोलते रहेंगे और न हिंस्र ही बने रहेंगे तथा भिक्षु सुखपूर्वक रह सकेंगे।"

* * * * *

(७) २. सुख वर्ग

६५. "भिक्षुओ, ये दो सुख हैं।

"कौन-से दो?

"गृहीसुख तथा प्रव्रज्या-सुख।

"भिक्षुओ, ये दो सुख हैं। इन दोनों सुखों में यह प्रव्रज्या-सुख ही श्रेष्ठ है।"

६६. "भिक्षुओ, ये दो सुख हैं।

"कौन-से दो?

"कामभोगों का सुख तथा नैष्कर्म्यसुख।

"भिक्षुओ, ये दो सुख हैं। इन दोनों सुखों में यह नैष्कर्म्यसुख ही श्रेष्ठ है।"

६७. "भिक्षुओ, ये दो सुख हैं।

"कौन-से दो?

"उपधिसुख तथा निरुपधिसुख।[१]

"भिक्षुओ, ये दो सुख हैं। भिक्षुओ, इन दोनों सुखों में यह निरुपधिसुख ही श्रेष्ठ है।"

६८. "भिक्षुओ, ये दो सुख हैं।

"कौन-से दो?

"सास्रव-सुख तथा अनास्रव-सुख।

"भिक्षुओ, ये दो सुख हैं। भिक्षुओ, इन दो सुखों में यह अनास्रव-सुख ही श्रेष्ठ है।"

६९. "भिक्षुओ, ये दो सुख हैं।

"कौन-से दो?

---

१ **'उपधि सुख, निरुपधि सुख'** -- भव-तृष्णा के प्रति आसक्त रहने का सुख उपधिसुख है तथा तृष्णातीत हो जाने का सुख निरुपधि सुख है। उपधिसुख को तेभूमक सुख भी कहते हैं, अर्थात कामावचर, रूपावचर और अरूपावचर भूमि का सुख। निरुपधि सुख को लोकोत्तर सुख कहते हैं।

"भौतिक-सुख तथा अभौतिक-सुख।

"भिक्षुओ, ये दो सुख हैं। भिक्षुओ, इन दो सुखों में अभौतिक-सुख ही श्रेष्ठ है।"

७०. "भिक्षुओ, ये दो सुख हैं।

"कौन-से दो?

"आर्य-सुख तथा अनार्य-सुख।

"भिक्षुओ, ये दो सुख हैं। भिक्षुओ, इन दो सुखों में यह आर्य-सुख ही श्रेष्ठ है।"

७१. "भिक्षुओ, ये दो सुख हैं।

"कौन-से दो?

"कायिक-सुखतथा चैतसिक-सुख।

"भिक्षुओ, ये दो सुख हैं। भिक्षुओ, इन दो सुखों में यह चैतसिक-सुख ही श्रेष्ठ है।"

७२. "भिक्षुओ, ये दो सुख हैं।

"कौन-से दो?

"प्रीति-सहित सुख, प्रीति-रहित सुख।

"भिक्षुओ, ये दो सुख हैं। भिक्षुओ, इन दो सुखों में यह प्रीति-रहित सुख ही श्रेष्ठ है।"

७३. "भिक्षुओ, ये दो सुख हैं।

"कौन-से दो?

"आनंद-सुख तथा उपेक्षा-सुख[१]।

"भिक्षुओ, ये दो सुख हैं। भिक्षुओ, इन दो सुखों में यह उपेक्षा-सुख ही श्रेष्ठ है।"

७४. "भिक्षुओ, ये दो सुख हैं।

"कौन-से दो?

"समाधि-सुख तथा असमाधि-सुख।

"भिक्षुओ, ये दो सुख हैं। भिक्षुओ, इन दोनों सुखों में समाधि-सुख ही श्रेष्ठ है।"

---

१ सात सुख और **उपेक्खा सुख** --प्रथम तीन ध्यानों का सुख सात सुख है क्योंकि इनमें 'प्रीति' ध्यानांग रहता है और चतुर्थ ध्यान का सुख उपेक्षा-सुख।

७५. “भिक्षुओ, ये दो सुख हैं।

“कौन-से दो?

“स-प्रीति-आलंबन-सुख तथा अ-प्रीति-आलंबन-सुख।

“भिक्षुओ, ये दो सुख हैं। भिक्षुओ, इन दोनों सुखों में अ-प्रीति-आलंबन सुख ही श्रेष्ठ है।”

७६. “भिक्षुओ, ये दो सुख हैं।

“कौन-से दो?

“आनंद-आलंबन-सुख तथा उपेक्षा-आलंबन-सुख।

“भिक्षुओ, ये दो सुख हैं। भिक्षुओ, इन दोनों सुखों में उपेक्षा-आलंबन-सुख ही श्रेष्ठ है।”

७७. “भिक्षुओ, ये दो सुख हैं।

“कौन-से दो?

“रूप-आलंबन-सुख तथा अरूप-आलंबन-सुख।

“भिक्षुओ, ये दो सुख हैं। भिक्षुओ, इन दोनों सुखों में यह अरूप-आलंबन-सुख ही श्रेष्ठ है।”

* * * * *

(८) ३. सनिमित्त वर्ग

७८. “भिक्षुओ, पापी अकुशल-धर्म निमित्त (आधार) होने से उत्पन्न होते हैं, बिना निमित्त के नहीं उत्पन्न होते। उस निमित्त का ही प्रहाण कर देने से वे पापी अकुशल-धर्म उत्पन्न नहीं होते।”

७९. “भिक्षुओ, पापी अकुशल-धर्म निदान (कारण) होने से उत्पन्न होते हैं, बिना निदान के नहीं। उस निदान का ही प्रहाण कर देने से वे पापी अकुशल-धर्म उत्पन्न नहीं होते।”

८०. “भिक्षुओ, पापी अकुशल-धर्म हेतु होने से उत्पन्न होते हैं, बिना हेतु के नहीं। उस हेतु का ही प्रहाण कर देने से वे पापी अकुशल-धर्म उत्पन्न नहीं होते।”

८१. “भिक्षुओ, पापी अकुशल-धर्म संस्कार होने से उत्पन्न होते हैं, बिना संस्कार के नहीं। उस संस्कार का ही प्रहाण कर देने से वे पापी अकुशल-धर्म उत्पन्न नहीं होते।”

८२. “भिक्षुओ, पापी अकुशल-धर्म प्रत्यय होने से उत्पन्न होते हैं, बिना प्रत्यय के नहीं। उस प्रत्यय का ही प्रहाण कर देने से वे पापी अकुशल-धर्म उत्पन्न नहीं होते।”

८३. "भिक्षुओ, पापी अकुशल-धर्म रूप होने से ही उत्पन्न होते हैं, बिना रूप के नहीं। उस रूप का ही प्रहाण कर देने से वे पापी अकुशल-धर्म उत्पन्न नहीं होते।"

८४. "भिक्षुओ, पापी अकुशल-धर्म वेदना के होने से ही उत्पन्न होते हैं, बिना वेदना के नहीं। उस वेदना का ही प्रहाण कर देने से वे पापी अकुशल-धर्म उत्पन्न नहीं होते।"

८५. "भिक्षुओ, पापी अकुशल-धर्म संज्ञा होने से ही उत्पन्न होते हैं, बिना संज्ञा के नहीं। उस संज्ञा का ही प्रहाण कर देने से वे पापी अकुशल-धर्म उत्पन्न नहीं होते।"

८६. "भिक्षुओ, पापी अकुशल-धर्म विज्ञान होने से ही उत्पन्न होते हैं, बिना विज्ञान के नहीं। उस विज्ञान का ही प्रहाण कर देने से पापी अकुशल-धर्म उत्पन्न नहीं होते।"

८७. "भिक्षुओ, पापी अकुशल-धर्म संस्कृत-आलंबन होने से ही उत्पन्न होते हैं, बिना संस्कृत-आलंबन के नहीं। उस संस्कृत-आलंबन का ही प्रहाण कर देने से पापी अकुशल-धर्म उत्पन्न नहीं होते।"

* * * * *

(९) ४. धर्म वर्ग

८८. "भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।

"कौन-से दो?

"चित्त-विमुक्ति तथा प्रज्ञा-विमुक्ति।

"भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।"

८९. "भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।

"कौन-से दो?

"वीर्य (प्रयत्न, प्रग्रह) तथा अविक्षेप (चित्तेकाग्रता)

"भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।"

(आगे के सूत्र इसी क्रम से हैं।)

९०. "नाम और रूप।"

९१. "विद्या तथा विमुक्ति।"

९२. "भव-दृष्टि तथा विभव-दृष्टि।"

९३. "निर्लज्जता तथा अ-पापभीरुता।"

९४. "लज्जा तथा पापभीरुता।"

९५. "दुर्वचता तथा पापमित्रता।"

९६. "सुवचता तथा कल्याणमित्रता।"

९७. "(अट्ठारह) धातुओं के ज्ञान में कुशल होना तथा मनसिकार (सही ढंग से चिंतन करने) में कुशल होना।"

९८. "भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।

"कौन-से दो?

"आपत्ति (दोषों) के ज्ञान में कुशल होना तथा दोषों को दूर करने का कौशल।

"भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।"

* * * * *

(१०) ५. बाल वर्ग

९९. "भिक्षुओ, ये दो मूर्ख हैं।

"कौन-से दो?

"जो अनागत-भार वहन करता है तथा जो आगत-भार वहन नहीं करता।

"भिक्षुओ, ये दो मूर्ख हैं।"

१००. "भिक्षुओ, ये दो पंडित हैं।

"कौन-से दो?

"जो अनागत-भार वहन नहीं करता तथा जो आगत-भार वहन करता है।

"भिक्षुओ, ये दो पंडित हैं।"

१०१. "भिक्षुओ, ये दो मूर्ख हैं।

"कौन-से दो?

"जो उचित को अनुचित समझे तथा जो अनुचित को उचित समझे।

"भिक्षुओ, ये दो मूर्ख हैं।"

१०२. "भिक्षुओ, ये दो पंडित हैं।

"कौन-से दो?

"जो अनुचित को अनुचित समझे तथा जो उचित को उचित समझे।

"भिक्षुओ, ये दो पंडित हैं।"

१०३. "भिक्षुओ, ये दो मूर्ख हैं।

"कौन-से दो?

“जो अदोष को दोष समझता है तथा जो दोष को अदोष समझता है।

“भिक्षुओ, ये दो मूर्ख हैं।”

१०४. “भिक्षुओ, ये दो पंडित हैं।

“कौन-से दो?

“जो अदोष को अदोष समझता है तथा जो दोष को दोष समझता है।

“भिक्षुओ, ये दो पंडित हैं।”

१०५. “भिक्षुओ, ये दो मूर्ख हैं।

“कौन-से दो?

“जो अधर्म को धर्म समझता है तथा जो धर्म को अधर्म समझता है।

“भिक्षुओ, ये दो मूर्ख हैं।”

१०६. “भिक्षुओ, ये दो पंडित हैं।

“कौन-से दो?

“जो धर्म को धर्म समझता है तथा जो अधर्म को अधर्म समझता है।

“भिक्षुओ, ये दो पंडित हैं।”

१०७. “भिक्षुओ, ये दो मूर्ख हैं।

“कौन-से दो?

“जो अविनय (अनियम) को विनय (नियम) समझता है, तथा जो विनय को अविनय समझता है।

“भिक्षुओ, ये दो मूर्ख हैं।”

१०८. “भिक्षुओ, ये दो पंडित हैं।

“कौन-से दो?

“जो अविनय को अविनय समझता है तथा जो विनय को विनय समझता है।

“भिक्षुओ, ये दो पंडित हैं।”

१०९. “भिक्षुओ, इन दो के आस्रव बढ़ते हैं।

“किन दो के ?

“जो अकौकृत्य के विषय में कौकृत्य (पश्चात्ताप) करता है तथा जो कौकृत्य के विषय में अकौकृत्य करता है।

“भिक्षुओ, इन दो के आस्रव बढ़ते हैं।”

११०. “भिक्षुओ, इन दो के आस्रव नहीं बढ़ते।

"किन दो के?

"जो अकौकृतव्यके विषय में अकौकृत्यकरता है तथा जो कौकृतव्यके विषय में कौकृत्यकरता है।

"भिक्षुओ, इन दो के आस्रव नहीं बढ़ते।"

१११. "भिक्षुओ, इन दो के आस्रव बढ़ते हैं।

"किन दो के?

"जो अनुचित को उचित समझता है तथा जो उचित को अनुचित समझता है।

"भिक्षुओ, इन दो के आस्रव बढ़ते हैं।"

११२. "भिक्षुओ, इन दो के आस्रव नहीं बढ़ते।

"किन दो के?

"जो अनुचित को अनुचित समझता है तथा जो उचित को उचित समझता है।

"भिक्षुओ, इन दो के आस्रव नहीं बढ़ते हैं।"

११३. "भिक्षुओ, इन दो के आस्रव बढ़ते हैं।

"किन दो के?

"जो अनापत्ति (अदोष) को आपत्ति (दोष) समझता है तथा जो आपत्ति को अनापत्ति समझता है।

"भिक्षुओ, इन दो के आस्रव बढ़ते हैं।"

११४. "भिक्षुओ, इन दो के आस्रव नहीं बढ़ते।

"किन दो के?

"जो अनापत्ति को अनापत्ति समझता है तथा जो आपत्ति को आपत्ति समझता है।

"भिक्षुओ, इन दो के आस्रव नहीं बढ़ते हैं।"

११५. "भिक्षुओ, इन दो के आस्रव बढ़ते हैं।

"किन दो के?

"जो अधर्म को धर्म समझता है तथा जो धर्म को अधर्म समझता है।

"भिक्षुओ, इन दो के आस्रव बढ़ते हैं।"

११६. "भिक्षुओ, इन दो के आस्रव नहीं बढ़ते हैं।

"किन दो के?

"जो अधर्म को अधर्म समझता है तथा जो धर्म को धर्म समझता है।

"भिक्षुओ, इन दो के आस्रव नहीं बढ़ते हैं।"

११७. "भिक्षुओ, इन दो के आस्रव बढ़ते हैं।

"किन दो के ?

"जो अविनय को विनय समझता है तथा जो विनय को अविनय समझता है।

"भिक्षुओ, इन दो के आस्रव बढ़ते हैं।"

११८. "भिक्षुओ, इन दो के आस्रव नहीं बढ़ते हैं ।

"किन दो के ?

"जो अविनय को अविनय समझता है तथा जो विनय को विनय समझता है।

"भिक्षुओ, इन दो के आस्रव नहीं बढ़ते हैं।"

* * * * *

विषय-सूची

द्विक-निपात (११-१५)

३. तृतीय पंचाशतक

३. तृतीय पंचाशतक

(११) १. आशा दुस्त्याज्य वर्ग

११९. "भिक्षुओ, ये दो आशाएं (इच्छाएं) दुस्त्याज्य हैं।
"कौन-सी दो?
"लाभ की आशा तथा जीवन की आशा।
"भिक्षुओ, ये दो आशायें दुस्त्याज्य हैं।"
१२०. "भिक्षुओ, लोक में ये दो तरह के व्यक्ति दुर्लभ हैं।
"कौन-से दो तरह के ?
"पहले उपकार करने वाला तथा कृतज्ञ, कृतवेदी।
"भिक्षुओ, लोक में ये दो तरह के व्यक्ति दुर्लभ हैं।"
१२१. "भिक्षुओ, लोक में ये दो तरह के व्यक्ति दुर्लभ हैं।
"कौन-से दो तरह के ?
"तृप्त तथा तृप्त करने वाला।
"भिक्षुओ, लोक में ये दो तरह के व्यक्ति दुर्लभ हैं।"
१२२. "भिक्षुओ, इन दो तरह के व्यक्तियों को तृप्त करना दुष्कर है।
"किन दो तरह के ?

"एक तो ऐसे व्यक्ति को जिसे जो-जो मिलता है उसे संचित करता है, दूसरे ऐसे व्यक्ति को जिसे जो-जो मिलता है उसे दूसरों को देता जाता है।

"भिक्षुओ, इन दो तरह के व्यक्तियों को तृप्त करना दुष्कर है।"

१२३. "भिक्षुओ, इन दो तरह के व्यक्तियों को तृप्त करना सहज है।

"किन दो व्यक्तियों को?

"एक तो उस व्यक्ति को जिसे जो-जो मिलता है उसे संचित नहीं करता, दूसरे उस व्यक्ति को जिसे जो-जो मिलता है, उसे दूसरों को देते नहीं रहता।

"भिक्षुओ, इन दो व्यक्तियों को तृप्त करना सहज है।"

१२४. "भिक्षुओ, राग की उत्पत्ति के दो कारण (प्रत्यय) हैं।

"शुभ-निमित्त तथा अयोनिसो-मनसिकार[1] (सही ढंग से चिंतन न करना)।

"भिक्षुओ, राग की उत्पत्ति के ये दो कारण हैं।"

१२५. "भिक्षुओ, द्वेष की उत्पत्ति के दो कारण हैं ।

"कौन-से दो?

"प्रतिघ-निमित्त तथा अयोनिसो-मनसिकार।

"भिक्षुओ, द्वेष की उत्पत्ति के ये दो कारण हैं।"

१२६. "भिक्षुओ, मिथ्या-दृष्टि की उत्पत्ति के दो कारण हैं।

"कौन-से दो?

"दूसरों से अधर्म श्रवण[2] और अयथार्थ चिंतन।

"भिक्षुओ, मिथ्या-दृष्टि की उत्पत्ति के ये दो कारण हैं।"

१२७. "भिक्षुओ, सम्यक-दृष्टि की उत्पत्ति के दो कारण हैं।

"कौन-से दो?

"दूसरों से धर्म श्रवण[3] और योनिसो-मनसिकार (सही ढंग से चिंतन करना)।

---

१ **'अयोनिसो मनसिकारो'** का अर्थ गलत ढंग से चिंतन है, बेढंगा विचार करने से है, अयथार्थ को यथार्थ समझना है। अनित्य को नित्य समझना, दु:ख को सुख, अनात्म को आत्मा और अशुभ को शुभ समझना अयोनिसो मनसिकार है। इसके विपरीत चिंतन को योनिसो मनसिकार कहा गया है।

२ पालि में **'परतो च घोसो ति परस्स सन्तिका असद्धम्मसवनं'** का अर्थ दूसरे से अधर्म सुनना।

३ पालि में **'परतो च घोसो ति परस्स सन्तिका सद्धम्मसवनं'** का अर्थ दूसरे से धर्म सुनना।

"भिक्षुओ, सम्यक-दृष्टि की उत्पत्ति के ये दो कारण हैं।"

१२८. भिक्षुओ, ये दो आपत्तियां (दोष)[1] हैं।

"कौन-सी दो?

"हलकी आपत्ति तथा भारी आपत्ति।

"भिक्षुओ, ये दो आपत्तियां हैं।"

१२९. "भिक्षुओ, ये दो आपत्तियां हैं।

"कौन-सी दो?

"संगीन आपत्ति तथा अ-संगीन आपत्ति।

"भिक्षुओ, ये दो आपत्तियां हैं।"

१३०. "भिक्षुओ, ये दो आपत्तियां हैं।

"कौन-सी दो?

"आंशिक (सावशेष) आपत्ति तथा सर्वांगिक (अनवशेष) आपत्ति।

"भिक्षुओ, ये दो आपत्तियां हैं।"

* * * * *

(१२) २. कामना वर्ग

१३१. "भिक्षुओ, श्रद्धालु भिक्षु यदि सम्यक प्रकार से कामना करता है तो उसकी यही कामना होनी चाहिए कि मैं ऐसा होऊं जैसे सारिपुत्त तथा मोग्गल्लान।

"भिक्षुओ, ये ही तुला हैं, ये ही प्रमाण (माप-दंड) हैं मेरे भिक्षु श्रावकों के लिए जो ये सारिपुत्त तथा मोग्गल्लान हैं।"

१३२. "भिक्षुओ, श्रद्धालु भिक्षुणी यदि सम्यक प्रकार से कामना करे तो उसकी यही कामना होनी चाहिए कि मैं ऐसी होऊं जैसी कि खेमा तथा उप्पलवण्णा भिक्षुणियां।

"भिक्षुओ, ये ही तुला हैं, ये ही प्रमाण हैं मेरी भिक्षुणी श्राविकाओं के लिए जो ये खेमा तथा उप्पलवण्णा भिक्षुणियां हैं।"

१३३. "भिक्षुओ, श्रद्धालु उपासक यदि सम्यक प्रकार से कामना करे तो उसकी यही कामना होनी चाहिए कि मैं ऐसा होऊं जैसे कि चित्त-गृहपति तथा हस्तक आळवक हैं।

---

१ देखें पादटिप्पणी, पृष्ठ २० पर।

"भिक्षुओ, ये ही तुला हैं, ये ही प्रमाण हैं मेरे श्रद्धालु उपासकों के लिए जो कि ये चित्त-गृहपति तथा हस्तक आळवक हैं।"

१३४. "भिक्षुओ, श्रद्धालु उपासिका यदि सम्यक प्रकार से कामना करे तो उसकी यही कामना होनी चाहिए कि मैं ऐसी होऊं जैसी कि खुज्जुत्तरा तथा वेळुकण्डकिया नन्दमाता उपासिकायें हैं।

"भिक्षुओ, ये ही तुला हैं, ये ही प्रमाण हैं मेरी श्रद्धालु उपासिकाओं के लिए जो कि ये खुज्जुत्तरा उपासिका तथा वेळुकण्डकिया नन्दमाता हैं।"

१३५. "भिक्षुओ, दो धर्मों (बातों) से युक्त मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान (उच्छिन्नमूल)[1], सत्त्वहीन हो विचरता है (अर्थात मिथ्या-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), अवगुणी होता है, सदोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है।

"कौन-से दो से?

"बिना जाने, बिना विचार किये जो अप्रशंसार्ह हैं उनकी प्रशंसा करता है; बिना जाने, बिना विचार किये जो प्रशंसार्ह हैं उनकी निंदा करता है।

"भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान, सत्त्वहीन हो विचरता है (अर्थात मिथ्या-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), अवगुणी होता है, सदोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है।

"भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त, पंडित, व्यक्त, सत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान न होकर सत्त्वयुक्त हो विचरता है (अर्थात सम्यक-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), गुणी होता है, निर्दोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय होता है और बहुत पुण्य कमाता है।

"कौन-से दो से?

"जानकर, विचारकर अवगुणी के अवगुण कहता है; जानकर, विचारकर गुणी के गुण कहता है।

---

१ पालि में यहां **'अक्खतं'** शब्द है। इसका अनुवाद 'अक्षत रहना', 'बिना (दोष) के होना' किया गया है। उसी तरह **'खतं उपहतं अत्तानं परिहरति'** का भी अनुवाद अवगुणी और सदोष से किया जाता है। वस्तुतः इसका अर्थ होता है – मिथ्या दृष्टि संपन्न हो जीवन बिताता है, अपने जीवन को यापन करता है। किस तरह? जड़ समेत उखाड़े गये वृक्ष के समान, सत्त्वहीन होकर। अट्ठकथा के अनुसार **'खतन्ति गुणानं खतत्ता खतं, उपहतन्ति गुणानं उपहतत्ता उपहतं, छिन्नगुणं, नट्ठगुणन्ति अत्थो'**। रूपक में अनुवाद करना ज्यादा अच्छा होगा।

“भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त, पंडित, व्यक्त, सत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान न होकर सत्त्वयुक्त हो विचरता है (अर्थात सम्यक-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), गुणी होता है, निर्दोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय होता है और बहुत पुण्य कमाता है।”

१३६. “भिक्षुओ, दो धर्मों से युक्त, मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान, सत्त्वहीन हो विचरता है (अर्थात मिथ्या-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), अवगुणी होता है, सदोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है।

“कौन-से दो से?

“बिना जाने, बिना विचार किये, अश्रद्धेय-स्थान पर श्रद्धा व्यक्त करता है; बिना जाने, बिना विचार किये श्रद्धेय-स्थान पर अश्रद्धा व्यक्त करता है।

“भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त, मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान, सत्त्वहीन हो विचरता है (अर्थात मिथ्या-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), अवगुणी होता है, सदोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है।

“भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त, पंडित, व्यक्त, सत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान न होकर सत्त्वयुक्त हो विचरता है (अर्थात सम्यक-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), गुणी होता है, निर्दोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय होता है और बहुत पुण्य कमाता है।

“कौन-से दो से?

“जानकर, विचार कर अश्रद्धेय-स्थान पर अश्रद्धा व्यक्त करता है; जानकर, विचार कर, श्रद्धेय-स्थान पर श्रद्धा व्यक्त करता है।

“भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त, पंडित, व्यक्त, सत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान न होकर सत्त्वयुक्त हो विचरता है (अर्थात सम्यक-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), गुणी होता है, निर्दोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय होता है और बहुत पुण्य कमाता है।”

१३७. “भिक्षुओ, इन दोनों के प्रति मिथ्याचरण करने वाला मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान, सत्त्वहीन हो विचरता है (अर्थात मिथ्या-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), अवगुणी होता है, सदोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है।

“किन दो के प्रति?

“माता तथा पिता के प्रति।

"भिक्षुओ, इन दोनों के प्रति मिथ्याचरण करने वाला मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान, सत्त्वहीन हो विचरता है (अर्थात मिथ्या-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), अवगुणी होता है, सदोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है।

"भिक्षुओ, इन दोनों के प्रति सम्यक व्यवहार करने वाला, पंडित, व्यक्त, सत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान न होकर सत्त्वयुक्त हो विचरता है (अर्थात सम्यक-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), गुणी होता है, निर्दोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय होता है और बहुत पुण्य कमाता है।

"किन दो के प्रति?

"माता तथा पिता के प्रति।

"भिक्षुओ, इन दोनों के प्रति सम्यक व्यवहार करने वाला, पंडित, व्यक्त, सत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान न होकर सत्त्वयुक्त हो विचरता है (अर्थात सम्यक-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), गुणी होता है, निर्दोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय होता है और बहुत पुण्य कमाता है।

१३८. "भिक्षुओ, इन दोनों के प्रति अनुचित व्यवहार करने वाला मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान, सत्त्वहीन हो विचरता है (अर्थात मिथ्या-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), अवगुणी होता है, सदोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है।

"किन दो के प्रति?

"तथागत तथा तथागत-श्रावक के प्रति।

"भिक्षुओ, इन दोनों के प्रति अनुचित व्यवहार करने वाला मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान, सत्त्वहीन हो विचरता है (अर्थात मिथ्या-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), अवगुणी होता है, सदोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है।

"भिक्षुओ, इन दोनों के प्रति उचित व्यवहार करने वाला पंडित, व्यक्त, सत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान न होकर सत्त्वयुक्त हो विचरता है (अर्थात सम्यक-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), गुणी होता है, निर्दोष होता है, विज्ञ-पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय होता है और बहुत पुण्य कमाता है।

"किन दो के प्रति?

"तथागत तथा तथागत-श्रावक के प्रति।

"भिक्षुओ, इन दोनों के प्रति उचित व्यवहार करने वाला पंडित, व्यक्त, सत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान न होकर सत्त्वयुक्त हो विचरता है

(अर्थात सम्यक-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), गुणी होता है, निर्दोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय होता है और बहुत पुण्य कमाता है।"

१३९. "भिक्षुओ, दो धर्म हैं।

"कौन-से दो?

"चित्त की परिशुद्धि तथा लोक के प्रति अनासक्त होना।

"भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।"

१४०. "भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।

"कौन-से दो?

"क्रोध तथा शत्रुभाव।

"भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।"

१४१. "भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।

"कौन-से दो?

"क्रोध-विनयन (क्रोध को दूर करना) तथा शत्रुभाव-विनयन (शत्रुभाव को दूर करना)।

"भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।"

* * * * *

(१३) ३. दान वर्ग

१४२. "भिक्षुओ, ये दो दान हैं।

"कौन-से दो?

"भौतिक-दान तथा धर्म-दान। भिक्षुओ, ये दो दान हैं।

"भिक्षुओ, इन दोनों दानों में धर्म-दान ही श्रेष्ठ है।"

१४३. "भिक्षुओ, ये दो यज्ञ हैं।

"कौन-से दो?

"भौतिक-यज्ञ तथा धर्म-यज्ञ।

"भिक्षुओ, ये दो... धर्म-यज्ञ ही श्रेष्ठ है।"

१४४. "भिक्षुओ, ये दो त्याग हैं।

"कौन-से दो?

"भौतिक-त्याग तथा धार्मिक-त्याग (धर्म के लिए त्याग)।

"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-त्याग ही श्रेष्ठ है।"

१४५. “भिक्षुओ, ये दो परित्याग हैं।
“कौन-से दो?
“भौतिक-परित्याग तथा धार्मिक-परित्याग (धर्म के लिए परित्याग)।
“भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-परित्याग ही श्रेष्ठ है।”
१४६. “भिक्षुओ, ये दो भोग हैं।
“कौन-से दो?
“भौतिक-भोग तथा धार्मिक-भोग।
“भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-भोग ही श्रेष्ठ है।”
१४७. “भिक्षुओ, ये दो संभोग हैं।
कौन-से दो?
“भौतिक-संभोग तथा धार्मिक-संभोग।
“भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-संभोग ही श्रेष्ठ है।”
१४८. “भिक्षुओ, ये दो संविभाग (दान) हैं।
“कौन-से दो?
“भौतिक-दान तथा धार्मिक-दान।
“भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-दान ही श्रेष्ठ है।”
१४९. “भिक्षुओ, ये दो संग्रह हैं।
“कौन-से दो?
“भौतिक-संग्रह तथा धार्मिक-संग्रह।
“भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-संग्रह ही श्रेष्ठ है।”
१५०. “भिक्षुओ, ये दो अनुग्रह हैं।
“कौन-से दो?
“भौतिक-अनुग्रह तथा धार्मिक-अनुग्रह।
“भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-अनुग्रह ही श्रेष्ठ है।”
१५१. “भिक्षुओ, ये दो अनुकंपायें हैं।
“कौन-सी दो?
“भौतिक-अनुकंपातथा धार्मिक-अनुकंपा।
“भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-अनुकंपाही श्रेष्ठ है।”

* * * * *

(१४) ४. सत्कार वर्ग

१५२. "भिक्षुओ, ये दो सत्कार हैं[१]।

"कौन-से दो?

"भौतिक-सत्कारतथा धार्मिक-सत्कार।

"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-सत्कारही श्रेष्ठ है।"

१५३. "भिक्षुओ, ये दो प्रतिसत्कार हैं।

"कौन-से दो?

"भौतिक-प्रतिसत्कारतथा धार्मिक-प्रतिसत्कार।

"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-प्रतिसत्कारही श्रेष्ठ है।"

१५४. "भिक्षुओ, ये दो एषणायें हैं।

"कौन-सी दो?

"भौतिक-एषणा तथा धार्मिक-एषणा।

"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक एषणा ही श्रेष्ठ है।"

१५५. "भिक्षुओ, ये दो पर्येषणायें हैं।

"कौन-सी दो?

"भौतिक-पर्येषणा तथा धार्मिक-पर्येषणा।

"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-पर्येषणा ही श्रेष्ठ है।"

१५६. "भिक्षुओ, ये दो पर्येष्टियां (खोज) हैं।

"कौन-सी दो?

"भौतिक-पर्येष्टि तथा धार्मिक-पर्येष्टि।

"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-पर्येष्टि ही श्रेष्ठ है।"

१५७. "भिक्षुओ, ये दो प्रकार की पूजायें हैं।

"कौन-सी दो प्रकार की?

"भौतिक-पूजा तथा धार्मिक-पूजा।

"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-पूजा ही श्रेष्ठ है।"

१५८. "भिक्षुओ, ये दो प्रकार के आतिथ्यहैं।

"कौन-से दो प्रकार के ?

"भौतिक-आतिथ्य तथा धार्मिक-आतिथ्य।

---

१ पालि शब्द **'सन्थारो'** का अर्थ 'सत्कार' 'मैत्रीपूर्ण स्वागत' और 'प्रतिछादन' भी होता है। यहां जो संदर्भ है इसमें इसका अर्थ 'मैत्रीपूर्ण स्वागत' या सत्कार है।

"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-आतिथ्य ही श्रेष्ठ है।"

१५९. "भिक्षुओ, ये दो ऋद्धियां हैं।

"कौन-सी दो?

"भौतिक-ऋद्धि तथा धार्मिक-ऋद्धि।

"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-ऋद्धि ही श्रेष्ठ है।"

१६०. "भिक्षुओ, ये दो वृद्धियां हैं।

"कौन-सी दो?

"भौतिक-वृद्धि तथा धार्मिक-वृद्धि।

"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-वृद्धि ही श्रेष्ठ है।"

१६१. "भिक्षुओ, ये दो प्रकार के रत्न हैं।

"कौन-से दो प्रकार के?

"भौतिक-रत्न तथा धर्म-रत्न।

"भिक्षुओ, ये दो... धर्म-रत्न ही श्रेष्ठ है।"

१६२. "भिक्षुओ, ये दो संग्रह हैं।

"कौन-से दो?

"भौतिक-संग्रह तथा धार्मिक-संग्रह।

"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक संग्रह ही श्रेष्ठ है।"

१६३. "भिक्षुओ, ये दो वैपुल्य (विपुलतायें) हैं।

"कौन-से दो?

"भौतिक वैपुल्य तथा धर्म वैपुल्य।

"भिक्षुओ, ये दो... धर्म वैपुल्य ही श्रेष्ठ है।"

* * * * *

(१५) ५. समापत्ति वर्ग

१६४. "भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।

"कौन-से दो?

"ध्यान (समापत्ति) में बैठने की कुशलता तथा ध्यान से उठने की कुशलता।

"भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।"

(आगे इसी क्रम से है।)

१६५. "ऋजुता तथा मृदुता।"

१६६. "क्षान्ति तथा विनम्रता।"

१६७. "प्रियवाणी तथा प्रतिसत्कार।"

१६८. "अविहिंसा तथा शुचिता।"

१६९. "इंद्रियों का अरक्षण तथा भोजन में मात्रज्ञ न होना।"

१७०. "इंद्रियों का संरक्षण तथा भोजन में मात्रज्ञ होना।"

१७१. "प्रतिसंख्यान (प्रत्यवेक्षण)-बल तथा भावना-बल।"

१७२. "स्मृति-बल तथा समाधि-बल।"

१७३. "शमथ तथा विपश्यना।"

१७४. "शील-दोष तथा दृष्टि-दोष।"

१७५. "शील-संपत्ति तथा दृष्टि-संपत्ति।"

१७६. "शील-विशुद्धि तथा दृष्टि-विशुद्धि।"

१७७. "दृष्टि-विशुद्धि तथा यथा-दर्शन प्रयत्न।"

१७८. "बहुत कुशल-धर्म करने पर भी संतुष्ट न होना (न अघाना) तथा बिना पीछे हटे प्रयत्नशील बने रहना।"

१७९. "विस्मृति तथा असंप्रज्ञान।"

१८०. "स्मृति तथा संप्रज्ञान।"

* * * * *

१. क्रोध पर्याय

१८१. "भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।

"कौन-से दो?

"क्रोध तथा उपनाह (शत्रुभाव)।

"भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।

[इसी प्रकार आगे भी।]

"म्रक्ष (दूसरे के गुण का अवमूल्यन करना) तथा प्रदास (परिदाह, किसी की उन्नति देख जलना)।

"ईर्ष्या तथा मात्सर्य।

"माया तथा शठता।

"निर्लज्जता तथा पापभीरु न होना।

"भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।"

१८२. "अक्रोध तथा अनुपनाह।

"अम्रक्ष तथा अप्रदास।

"अनीर्ष्या तथा अमात्सर्य।

"अमाया तथा अशठता।

"लज्जा तथा पापभीरुता।

"भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।"

१८३. "भिक्षुओ, दो धर्मों से युक्त होने पर कोई (व्यक्ति) दुःख भोगता है।

"किन दो से?

"क्रोध से तथा उपनाह से।

"म्रक्ष से तथा प्रदास से।

"ईर्ष्या से तथा मात्सर्य से।

"माया से तथा शठता से।

"निर्लज्जता से तथा अ-पापभीरुता से।

"भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त होने पर कोई (व्यक्ति) दुःख भोगता है।"

१८४. "भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त होने पर कोई (व्यक्ति) सुख भोगता है।

"कौन-से दो धर्मों से?

"अक्रोध तथा अनुपनाह से।

"अम्रक्ष तथा अप्रदास से।

"अनीर्ष्या तथा अमात्सर्य से।

"अमाया तथा अशठता से।

"लज्जा तथा पापभीरुता से।

"भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त होने पर कोई (व्यक्ति) सुख भोगता है।"

१८५. "भिक्षुओ, ये दो धर्म शैक्ष्य-भिक्षु की हानि के कारण होते हैं।

"कौन-से दो?

"क्रोध तथा उपनाह।

"म्रक्ष तथा प्रदास।

"ईर्ष्या तथा मात्सर्य।

"माया तथा शठता।

"निर्लज्जता तथा अ-पापभीरुता।

"भिक्षुओ, ये दो धर्म शैक्ष्य-भिक्षु की हानि के कारण होते हैं।"

१८६. "भिक्षुओ, ये दो धर्म शैक्ष्य-भिक्षु की हानि के कारण नहीं होते।

"कौन-से दो?

"अक्रोध तथा अनुपनाह।

"अम्रक्ष तथा अप्रदास।

"अनीर्ष्या तथा अमात्सर्य।

"अमाया तथा अशठता।

"लज्जा तथा पापभीरुता।"

"भिक्षुओ, ये दो धर्म शैक्ष्य-भिक्षु की हानि के कारण नहीं होते।"

१८७. "भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त कोई (व्यक्ति) कर्मानुसार मानो नरक में डाल दिया गया हो।

"किन दो धर्मों से?

"क्रोध से तथा उपनाह से... निर्लज्जता से तथा पापभीरु न होने से।

"भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त कोई (व्यक्ति) कर्मानुसार मानो नरक में डाल दिया गया हो।"

१८८. "भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त कोई (व्यक्ति) कर्मानुसार मानो स्वर्ग में डाल दिया गया हो।

"किन दो धर्मों से?

"अक्रोध तथा अनुपनाह से... लज्जा से तथा पापभीरुता से।

"भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त कोई (व्यक्ति) कर्मानुसार मानो स्वर्ग में डाल दिया गया हो।"

१८९. "भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त कोई व्यक्ति शरीर छूटने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति में पड़कर नरक में पैदा होता है।

"किन दो धर्मों से?

"क्रोध से तथा उपनाह से... निर्लज्जता से तथा अ-पापभीरुता से।

"भिक्षुओ, इन दो धर्मों से... पैदा होता है।"

१९०. "भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त कोई व्यक्ति शरीर के छूटने पर, मरने के बाद, सुगति प्राप्तकर स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता है।

"किन दो धर्मों से?

"अक्रोध तथा अनुपनाह से... लज्जा से तथा पापभीरुता से।

"भिक्षुओ, इन दो धर्मों से... उत्पन्न होता है।"

२. अकुशल पर्याय

१९१-२००. "भिक्षुओ, ये दो धर्म अकुशल हैं..."(देखें १८१)

"भिक्षुओ, ये दो धर्म कुशल हैं..."(देखें १८२)

"भिक्षुओ, ये दो धर्म सदोष हैं..."(देखें १८१)

"भिक्षुओ, ये दो धर्म निर्दोष हैं..."(देखें १८२)

"भिक्षुओ, ये दो धर्म दुःख-कारक हैं..."(देखें १८१)

"भिक्षुओ, ये दो धर्म सुख-कारक हैं..."(देखें १८२)

"भिक्षुओ, ये दो धर्म दुःख-फलदायी हैं..."(देखें १८१)

"भिक्षुओ, ये दो धर्म सुख-फलदायी हैं..."(देखें १८२)

"भिक्षुओ, ये दो धर्म दुःखद हैं..."(देखें १८१)

"भिक्षुओ, ये दो धर्म सुखद हैं।

"कौन-से दो?

अक्रोध तथा अनुपनाह... अम्रक्ष तथा अप्रदास... अनीर्ष्या तथा अमात्सर्य... अमाया तथा अशठता... लज्जा तथा पापभीरुता।

"भिक्षुओ, ये दो धर्म सुखद हैं।"

३. विनय पर्याय

२०१. "भिक्षुओ, इन दो बातों का लाभ देख कर तथागत ने श्रावकों के लिए शिक्षा-पदों (नियमों) की प्रज्ञप्ति की है।

"किन दो बातों का?

"संघ की सुष्ठुता के लिए (संतुलन के लिए) तथा संघ की आसानी के लिए... (आसान प्रबंधन के लिए)।

"बड़बोले और अतिउत्साही व्यक्तियों का निग्रह करने के लिए तथा सदाचारी व्यक्तियों के सुखपूर्वक रहने के लिए...।

"इहलौकिक आस्रवों, वैरों, दोषों, भयों तथा अकुशल-धर्मों के संवर के लिए; पारलौकिक आस्रवों, वैरों, दोषों, भयों तथा अकुशल-धर्मों के प्रतिघात के लिए...।

"गृहस्थों पर अनुकंपा करने के लिए तथा पापेच्छ भिक्षुओं के पक्ष का नाश करने के लिए।

"अप्रसन्नों को प्रसन्न करने के लिए, प्रसन्नों को और भी अधिक प्रसन्न करने के लिए...।

"सद्धर्म को स्थित करने के लिए, विनय की रक्षा करने के लिए।

"भिक्षुओ, इन दोनों बातों का ख्याल कर तथागत ने श्रावकों के लिए शिक्षा-पदों (नियमों) की प्रज्ञप्ति की है।"

२०२-२३०. "...प्रातिमोक्ष[१] की प्रज्ञप्ति की है..."

"प्रातिमोक्ष उद्देशों की प्रज्ञप्ति की है..."

"प्रातिमोक्ष-स्थापना की प्रज्ञप्ति की है..."

"प्रवारणा की प्रज्ञप्ति की है..."

"प्रवारणा-स्थापना की प्रज्ञप्ति की है..."

"तर्जनीय-कर्म की प्रज्ञप्ति की है..."

"नियस्य-कर्म की प्रज्ञप्ति की है..."

"प्रव्राजनीय-कर्म की प्रज्ञप्ति की है..."

"प्रतिसारणीय-कर्म की प्रज्ञप्ति की है..."

"उत्क्षेपणीय-कर्म की प्रज्ञप्ति की है..."

"परिवास-दान की प्रज्ञप्ति की है..."

"मूल-प्रतिकर्षण की प्रज्ञप्ति की है..."

"मानत्त-दान की प्रज्ञप्ति की है..."

"अब्भान की प्रज्ञप्ति की है..."

"ओसारणीय की प्रज्ञप्ति की है..."

"निस्सारणीय की प्रज्ञप्ति की है..."

"उपसम्पदा की प्रज्ञप्ति की है..."

"ज्ञप्ति-कर्म की प्रज्ञप्ति की है..."

"ज्ञप्ति-द्वितीय-कर्म की प्रज्ञप्ति की है..."

"ज्ञप्ति-चतुर्थ-कर्म की प्रज्ञप्ति की है..."

"अप्रज्ञापित की प्रज्ञप्ति की है..."

---

१ 'विनय पर्याय' में आये सभी पारिभाषिक शब्दों जैसे प्रातिमोक्ष, तर्जनीय कर्म, नियस्य कर्म आदि के बारे में परिशिष्ट देखें।

"प्रज्ञापित की अनुप्रज्ञप्ति की है..."

"सन्मुख-विनय की प्रज्ञप्ति की है..."

"स्मृति-विनय की प्रज्ञप्ति की है..."

"अमूढ़-विनय की प्रज्ञप्ति की है..."

"प्रतिज्ञात-करण की प्रज्ञप्तिकी है..."

"येभूयिसका (बहुमत) की प्रज्ञप्तिकी है..."

"तस्सपापियसिका की प्रज्ञप्ति की है..."

"तृणविस्तारक (दोषों का संक्षेप में निराकरण) की प्रज्ञप्तिकी है..."

"कौन-सी दो के लिए?

"संघ की सुष्ठुता के लिए (संतुलन के लिए) तथा संघ की आसानी के लिए... (आसान प्रबंधन के लिए)।

"बड़बोले और अतिउत्साही व्यक्तियों का निग्रह करने के लिए तथा सदाचारी व्यक्तियों के सुखपूर्वक रहने के लिए...।

"इहलौकिक आस्रवों, वैरों, दोषों, भयों तथा अकुशल-धर्मों के संवर के लिए; पारलौकिक आस्रवों, वैरों, दोषों, भयों तथा अकुशल-धर्मों के प्रतिघात के लिए...।

"गृहस्थों पर अनुकंपा करने के लिए तथा पापेच्छ भिक्षुओं के पक्ष का नाश करने के लिए।

"अप्रसन्नों को प्रसन्न करने के लिए, प्रसन्नों को और भी अधिक प्रसन्न करने के लिए...।

"सद्धर्म को स्थित करने के लिए, विनय की रक्षा करने के लिए।

"भिक्षुओ, इन दोनों बातों का ख्याल कर तथागत ने श्रावकों के लिए शिक्षा-पदों (नियमों) की प्रज्ञप्ति की है।"

४. राग पर्याय

२३१. "भिक्षुओ, राग (के यथार्थ स्वरूप) के अभिज्ञान के लिए दो धर्मों की भावना (अभ्यास) करनी चाहिए।

"कौन-से दो?

"शमथ तथा विपश्यना की।भिक्षुओ, राग के अभिज्ञान के लिए दो धर्मों की भावना करनी चाहिए।

"भिक्षुओ, राग के परिज्ञान के लिए, परिक्षय के लिए, प्रहाण के लिए, क्षय के लिए, व्यय के लिए, विराग के लिए, निरोध के लिए, त्याग के लिए,

प्रतिनिसर्ग के लिए, इन दो धर्मों की भावना करनी चाहिए"... (२३१ अनुसार)।

२३२-२४६. "भिक्षुओ, द्वेष के, मोह के, क्रोध के, उपनाह के, म्रक्ष के, प्रदास के, ईर्ष्या के, मात्सर्य के, माया के, शठता के, हठपने के, सारंभ के, मान के, अतिमान के, मद के, प्रमाद के (यथार्थ स्वरूप के) अभिज्ञान के लिए, परिज्ञान के लिए, परिक्षय के लिए, प्रहाण के लिए, क्षय के लिए, व्यय के लिए, विराग के लिए, निरोध के लिए, त्याग के लिए, प्रतिनिसर्ग के लिए, दो धर्मों की भावना करनी चाहिए।

"कौन-से दो?

"शमथ की तथा विपश्यना की।... इन दो धर्मों की भावना करनी चाहिए।"

ऐसा भगवान ने कहा। प्रसन्न हो भिक्षुओं ने भगवान के कथन का अभिनंदन किया।

द्विक निपात समाप्त।

* * * * *

विषय-सूची

त्रिक-निपात (१-५)

१. प्रथम पंचाशतक

त्रिक निपात

१. प्रथम पंचाशतक

१. मूर्ख वर्ग

१. भय सुत्त

१. ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। वहां भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया – "भिक्षुओ!" उन भिक्षुओं ने भगवान को प्रतिवचन दिया –"भदंत!" भगवान ने कहा –"भिक्षुओ, जितने भी भय उत्पन्न होते हैं, वे मूर्ख से ही उत्पन्न होते हैं, पंडित से नहीं। जितने भी उपद्रव उत्पन्न होते हैं, वे मूर्ख से ही उत्पन्न होते हैं, पंडित से नहीं। जितने भी उपसर्ग (खतरे) उत्पन्न होते हैं, वे मूर्ख से ही उत्पन्न होते हैं, पंडित से नहीं।

"भिक्षुओ, जैसे सरकंडों के घर में वा फूस के घर में लगी हुई आग लिपे-पुते, निर्वात (हवा रहित), अर्गलों वाले, बंद खिड़कियों वाले कूटागारों को भी जला डालती है, उसी प्रकार भिक्षुओ, जितने भी भय उत्पन्न होते हैं, वे मूर्ख से ही उत्पन्न होते हैं, पंडित से नहीं। जितने भी उपद्रव उत्पन्न होते हैं, वे मूर्ख से ही उत्पन्न होते हैं, पंडित से नहीं। जितने भी उपसर्ग उत्पन्न होते हैं, वे मूर्ख से ही उत्पन्न होते हैं, पंडित से नहीं।

"भिक्षुओ, इस प्रकार मूर्ख सभय होता है, पंडित निर्भय होता है, मूर्ख स-उपद्रव होता है, पंडित उपद्रव-रहित होता है, मूर्ख स-उपसर्ग होता है, पंडित उपसर्ग-रहित होता है। भिक्षुओ, पंडित से भय नहीं है, पंडित से उपद्रव नहीं है, पंडित से उपसर्ग नहीं है।

"इस कारण ठीक इसी प्रकार भिक्षुओ, सीखना चाहिए –जिन तीन धर्मों से युक्त व्यक्ति मूर्ख समझा जाता है उन तीन धर्मों को त्यागकर तथा जिन तीन धर्मों से युक्त व्यक्ति पंडित समझा जाता है उन तीन धर्मों से समन्वित होकर रहेंगे। ठीक इस प्रकार भिक्षुओ, तुम्हें सीखना चाहिए।"

२. लक्षण सुत्त

२. "कर्म ही मूर्ख का लक्षण है (अर्थात, कर्म से ही मूर्ख पहचाना जाता है)। भिक्षुओ, कर्म ही पंडित का लक्षण है (अर्थात, कर्म से ही पंडित पहचाना जाता है)। प्रज्ञा चरित्र से ही शोभायमान होती है।

"भिक्षुओ, इन तीन बातों से युक्त व्यक्ति को मूर्ख समझना चाहिए। किन तीन बातों से? कायिक-दुश्चरित से, वाचिक-दुश्चरित से तथा मानसिक-दुश्चरित से। भिक्षुओ, इन तीन बातों से युक्त व्यक्ति को मूर्ख जानना चाहिए।

"भिक्षुओ, इन तीन बातों से युक्त व्यक्ति को पंडित समझना चाहिए। किन तीन बातों से? कायिक-सुचरित से, वाचिक-सुचरित से तथा मानसिक-सुचरित से। भिक्षुओ, इन तीन बातों से युक्त व्यक्ति को पंडित जानना चाहिए।

"इस कारण ठीक इसी प्रकार भिक्षुओ, सीखना चाहिए –जिन तीन धर्मों से युक्त व्यक्ति मूर्ख समझा जाता है उन तीन धर्मों का त्याग कर तथा जिन तीन धर्मों से युक्त व्यक्ति पंडित समझा जाता है उन तीन धर्मों से समन्वित होकर रहेंगे। ठीक इस प्रकार भिक्षुओ, तुम्हें सीखना चाहिए।"

३. चिंतन सुत्त

३. "भिक्षुओ, मूर्ख के ये तीन लक्षण, निमित्त, चिह्न हैं। कौन-से तीन? भिक्षुओ, मूर्ख बुरे विचार रखता है, बुरी वाणी बोलता है, बुरे कर्म करता है। भिक्षुओ, यदि मूर्ख बुरे विचार न रखे, बुरी वाणी न बोले, बुरे कर्म न करे, तो पंडित-लोग यह कैसे जानेंगे कि यह महाशय असत्पुरुष हैं, मूर्ख हैं। क्योंकि भिक्षुओ, मूर्ख बुरे विचार रखता है, बुरी वाणी बोलता है, बुरे कर्म करता है, इसीलिए पंडित-लोग जान लेते हैं कि यह महाशय असत्पुरुष हैं, मूर्ख हैं। भिक्षुओ, ये तीन मूर्ख के लक्षण, निमित्त, चिह्न हैं।"

"भिक्षुओ, पंडित के ये तीन लक्षण, निमित्त, चिह्न हैं। कौन-से तीन?

"भिक्षुओ, पंडित अच्छे विचार रखता है, अच्छी वाणी बोलता है, अच्छे कर्म करता है। भिक्षुओ, यदि पंडित अच्छे विचार न रखे, अच्छी वाणी न बोले, अच्छे कर्म न करे तो पंडित लोग कैसे जानेंगे कि यह सत्पुरुष हैं, पंडित हैं। क्योंकि भिक्षुओ, पंडित अच्छे विचार रखता है, अच्छी वाणी बोलता है, अच्छे कर्म करता है, इसीलिए पंडित-लोग जान लेते हैं कि यह सत्पुरुष हैं, पंडित हैं। भिक्षुओ, ये तीन पंडित के लक्षण, निमित्त, चिह्न हैं। इसलिए ठीक इसी प्रकार भिक्षुओ, तुम्हें... सीखना चाहिए।"

४. अत्यय (दोष) सुत्त

४. "भिक्षुओ, तीन धर्मों (बातों) से युक्त को मूर्ख जानना चाहिए। कौन-से तीन से?

"वह अपने 'दोष' को 'दोष' करके नहीं देखता, 'दोष' को 'दोष' करके देखकर वह उसका 'प्रतिकर्म' नहीं करता, यदि कोई दूसरा अपना 'दोष' स्वीकार करे तो वह उसे धर्मानुसार क्षमा नहीं करता। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त को मूर्ख जानना चाहिए। इसलिए ठीक इसी प्रकार... सीखना चाहिए।"

"भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त को पंडित समझना चाहिए। कौन-से तीन से?

"वह अपने 'दोष' को 'दोष' करके देखता है, 'दोष' को 'दोष' करके देखकर वह उसका 'प्रतिकर्म' करता है, यदि कोई दूसरा अपना 'दोष' स्वीकार करे तो वह उसे धर्मानुसार क्षमा करता है। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त को पंडित जानना चाहिए। इसलिए ठीक इसी प्रकार... सीखना चाहिए।"

५. अयथार्थ सुत्त

५. "भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त को 'मूर्ख' जानना चाहिए। कौन-से तीन से?

"गलत ढंग से प्रश्न पूछने वाला होता है, गलत ढंग से प्रश्न का उत्तर देने वाला होता है, दूसरे के समग्र रूप से, परिमार्जित भाषा में, सुसंगत उत्तर दिये जाने पर भी अनुमोदन करने वाला नहीं होता। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त को 'मूर्ख' जानना चाहिए।"

"भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त को 'पंडित' जानना चाहिए। कौन-से तीन से?

"उचित ढंग से प्रश्न पूछने वाला होता है, उचित ढंग से प्रश्न का उत्तर देने वाला होता है, दूसरे के समग्र रूप से, परिमार्जित भाषा में, सुसंगत उत्तर दिये जाने पर अनुमोदन करने वाला होता है। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त को 'पंडित' जानना चाहिए। इसलिए ठीक इसी प्रकार... सीखना चाहिए।"

६. अकुसल सुत्त

६. "भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त को 'मूर्ख' जानना चाहिए। कौन-से तीन से?

"अकुशल कायिक-कर्म से, अकुशल वाचिक-कर्म से, तथा अकुशल मानसिक-कर्म से। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त 'मूर्ख' होता है।"

"भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त को 'पंडित' जानना चाहिए। कौन-से तीन?

"कुशल कायिक-कर्मसे, कुशल वाचिक-कर्मसे, कुशल मानसिक-कर्म से। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त को 'पंडित' जानना चाहिए। इसलिए ठीक इसी प्रकार... सीखना चाहिए।"

७. सावद्य सुत्त

७. "भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त को 'मूर्ख' जानना चाहिए। कौन-से तीन से?

"सदोष (सावद्य) कायिक-कर्मसे, सदोष वाचिक-कर्म से, सदोष मानसिक-कर्मसे युक्त...।

"भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त को 'पंडित' जानना चाहिए। कौन-से तीन से?

"निर्दोष (अनवद्य) कायिक-कर्मसे, निर्दोष वाचिक-कर्म से, निर्दोष मानसिक-कर्मसे...। इसलिए ठीक इसी प्रकार... सीखना चाहिए।"

८. दुर्भाव सुत्त

८. "भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त को 'मूर्ख' जानना चाहिए। कौन-से तीन से?

"दुर्भावपूर्ण कायिक-कर्मसे... दुर्भावपूर्ण मानसिक-कर्मसे...।

"भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त को 'पंडित' जानना चाहिए। कौन-से तीन से?

"सद्भावपूर्ण कायिक-कर्मसे... सद्भावपूर्ण मानसिक-कर्मसे...।

"भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त को 'पंडित' जानना चाहिए।

"इसलिए ठीक इसी प्रकार भिक्षुओ, सीखना चाहिए – जिन तीन धर्मों से युक्त व्यक्ति मूर्ख समझा जाता है उन तीन धर्मों का त्याग कर तथा जिन तीन धर्मों से युक्त व्यक्ति पंडित समझा जाता है उन तीन धर्मों से समन्वित होकर रहेंगे।

"ठीक इसी प्रकार भिक्षुओ, तुम्हें सीखना चाहिए।"

९. उच्छिन्नमूल सुत्त

९. "भिक्षुओ, इन तीन धर्मों (बातों) से युक्त मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष, मूल समेत उखाड़ दिये के समान (उच्छिन्नमूल), सत्त्वहीन हो विचरता है (अर्थात मिथ्या-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), अवगुणी होता है, सदोष

होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है। कौन-से तीन से?

“कायिकदुराचरण से, वाचिक दुराचरण से तथा मानसिक दुराचरण से।”

“भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष, मूल समेत उखाड़ दिये के समान, सत्त्वहीन हो विचरता है (अर्थात मिथ्या-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), अवगुणी होता है, सदोष होता है, विज्ञ-पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है।”

“भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त पंडित, व्यक्त, सत्पुरुष, मूल समेत उखाड़ दिये के समान न होकर सत्त्वयुक्त हो विचरता है (अर्थात सम्यक-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), गुणी होता है, निर्दोष होता है, विज्ञ-पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय होता है और बहुत पुण्य कमाता है। कौन-से तीन से?

“कायिकसदाचरण से, वाचिक सदाचरण से, तथा मानसिक सदाचरण से।

“भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त पंडित, व्यक्त, सत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान न होकर सत्त्वयुक्त हो विचरता है (अर्थात सम्यक-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), गुणी होता है, निर्दोष होता है और बहुत पुण्य कमाता है।”

१०. मल सुत्त

१०. “भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त व्यक्ति बिना तीन मलों का त्याग किये नरक में डाल दिये गये के समान होता है। कौन-से तीन से?

“दुश्शील होता है, तथा उसका दुःशील-मल अप्रहीण होता है; ईर्ष्यालु होता है तथा उसका ईर्ष्या-मल अप्रहीण होता है, मात्सर्य-युक्त होता है तथा उसका मात्सर्य-मल अप्रहीण होता है। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त बिना तीन मलों का त्याग किये नरकमें डाल दिये गये के समान होता है।”

“भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त व्यक्ति तीन मलों का त्याग कर स्वर्ग में डाल दिये गये के समान होता है। कौन-से तीन से?

“सदाचारी होता है और इसका दुराचार-रूपी मल प्रहीण होता है, ईर्ष्या-रहित होता है और इसका ईर्ष्यारूपी मल प्रहीण होता है, मात्सर्य-रहित होता है और इसका मात्सर्यरूपी मल प्रहीण होता है। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त व्यक्ति तीन मलों का त्याग कर स्वर्ग में डाल दिये गये के समान होता है।”

* * * * *

२. रथकार वर्ग

१. ज्ञात सुत्त

११. "भिक्षुओ, तीन धर्मों (बातों) से युक्त (ज्ञात) प्रसिद्ध भिक्षु बहुत जनों के अहित का कारण होता है, बहुत जनों के असुख का कारण होता है, बहुत जनों के अनर्थ तथा अहित का कारण होता है, और देव-मनुष्यों के दुःख का कारण होता है। कौन-से तीन से?

"प्रतिकूल कायिक-कर्म करने के लिए (दूसरे को) प्रेरित करता है, प्रतिकूल वाचिक-कर्म करने के लिए प्रेरित करता है, प्रतिकूल मानसिक-कर्म करने के लिए प्रेरित करता है। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त प्रसिद्ध भिक्षु बहुत जनों के अहित का कारण होता है, बहुत जनों के असुख का कारण होता है, बहुत जनों के अनर्थ तथा अहित का कारण होता है और देव-मनुष्यों के दुःख का कारण होता है।

"भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त प्रसिद्ध भिक्षु बहुत जनों के हित का कारण होता है, बहुत जनों के सुख का कारण होता है, बहुत जनों के अर्थ तथा हित का कारण होता है और देव-मनुष्यों के सुख का कारण होता है। कौन-से तीन से?

"अनुकूल कायिक-कर्म करता है, अनुकूल वाचिक-कर्म करता है, अनुकूल मानसिक-कर्म करता है। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त प्रसिद्ध भिक्षु बहुत जनों के हित का कारण होता है, बहुत जनों के सुख का कारण होता है, बहुत जनों के अर्थ तथा हित का कारण होता है और देव-मनुष्यों के सुख का कारण होता है।"

२. स्मरणीय सुत्त

१२. "भिक्षुओ, ये तीन बातें मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा को जन्मभर याद रहती हैं। कौन-सी तीन?

"भिक्षुओ, जिस जगह मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा जन्म ग्रहण करता है, भिक्षुओ, यह पहली बात है जो मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा को जन्मभर याद रहती है।

"फिर भिक्षुओ, जिस जगह मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा का राज्याभिषेक होता है, भिक्षुओ, यह दूसरी बात है जो मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा को जन्मभर याद रहती है।

"फिर भिक्षुओ, जिस जगह मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा संग्राम जीत कर, विजयी होकर, विजय के उसी स्थान पर रहता है, भिक्षुओ, यह तीसरी बात है जो मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा को जन्मभर याद रहती है।

"भिक्षुओ, ये तीन बातें मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा को जन्मभर याद रहती हैं। इसी प्रकार भिक्षुओ, ये तीन बातें भिक्षु को जन्मभर याद रहती हैं। कौन-सी तीन?

"भिक्षुओ, जिस जगह भिक्षु बाल-दाढ़ी मुँड़वा, काषाय वस्त्र पहन, घर से बे-घर हो प्रव्रजित होता है, भिक्षुओ, यह पहली बात है जो भिक्षु को जन्मभर याद रहती है।

"फिर भिक्षुओ, जिस जगह भिक्षु 'यह दुःख है', इसे यथाभूत जान लेता है, 'यह दुःख-समुदय है', इसे यथाभूत जान लेता है, 'यह दुःख-निरोध है', इसे यथाभूत जान लेता है, 'यह दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपदा है', इसे यथाभूत जान लेता है, भिक्षुओ, यह दूसरी बात है जो भिक्षु को जन्मभर याद रहती है।

"फिर भिक्षुओ, जिस जगह भिक्षु आस्रवों का क्षय करके, अनास्रव चित्त-विमुक्ति तथा प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करता है, भिक्षुओ, यह तीसरी बात है जो भिक्षु को जन्मभर याद रहती है।

"भिक्षुओ, ये तीन बातें भिक्षु को जन्मभर याद रहती हैं।"

३. आशा सुत्त

१३. "भिक्षुओ, लोक में तीन तरह के व्यक्ति हैं। कौन-से तीन?

"निराश (शून्याश), आशावान तथा पूर्णाश (आशापूर्ण)।[1]

---

१ पालि में यहां **'निरासो'**, **'आसंसो'** तथा **'विगतासो'** है । इनका अनुवाद क्रमशः निराश, आशावान तथा आशापूर्ण किया जाता है। यहां **'निरासो'** का अर्थ उस व्यक्ति से है जिसके मन में कोई आशा ही नहीं जगती। हिंदी में 'निराश' का अर्थ है जिसकी आशा ही पूरी नहीं हुई। इसका दूसरा अर्थ आशा रहित होना भी है, पर इस अर्थ में इसका प्रयोग हिंदी में बहुधा नहीं होता। लेकिन यहां **'निरासो'** से तात्पर्य वैसे व्यक्ति से नहीं है जिसकी आशा पूरी नहीं हुई, बल्कि वैसे व्यक्ति से है जिसके मन में कोई आशा ही नहीं जगती। 'जिसको कोई आशा ही नहीं' या 'जिसकी आशा पूरी नहीं हुई' में जिस तरह का अंतर है, वही अंतर 'शून्याश' और 'निराश' में है। यद्यपि बृहत हिंदी शब्द कोश में 'शून्याश' शब्द नहीं है, पर हिंदी में इस तरह का शब्द गढ़ा जाना चाहिए ताकि वह समृद्ध हो सके। 'शून्याश' जिस मानसिक स्थिति का बोध कराता है वह 'निराश' बोध नहीं कराता। 'विगतास' का पूर्णाश किया गया है जो 'बृहत हिंदी कोश' में है। इसी के अनुरूप 'शून्याश' गढ़ा गया है।

"भिक्षुओ, निराश व्यक्ति किसे कहते हैं?

"भिक्षुओ, एक व्यक्ति नीच-कुल में जन्म ग्रहण करता है, दरिद्र-कुल में जन्म ग्रहण करता है, अल्प खाद्य-पेय कुल में, दुर्जीविका-कुल में, जहां कठिनाई से खाना-पीना मिलता है जैसे चंडाल कुल में, शिकारियों के कुल में, बंस-फोड़ों के कुल में, रथकार के कुल में, मैला साफ करनेवालों के कुल में। वह दुर्वर्ण होता है, दुर्दर्शनीय, बौना, रोग-बहुल, काना, लूला, लंगड़ा वा पक्षाघात हुआ हुआ। उसे न अन्न-पान मिलता है, न वस्त्र मिलता है, न सवारी मिलती है, न माला-गंध-विलेपन मिलता है, न शय्या मिलती है, न निवासस्थान मिलता है और न प्रदीप मिलता है। वह सुनता है कि अमुक नाम के क्षत्रिय का क्षत्रियों द्वारा राज्याभिषेक हुआ है। उसके मन में यह नहीं होता कि मुझे भी, क्षत्रिय कब क्षत्रियाभिषेक से अभिषिक्त करेंगे – भिक्षुओ, ऐसा (व्यक्ति) निराश (शून्याश) व्यक्ति कहलाता है।

"भिक्षुओ, आशावान व्यक्ति किसे कहते हैं?

"भिक्षुओ, राज्याभिषिक्त, क्षत्रिय राजा का ज्येष्ठ पुत्र होता है, अभिषेकार्ह, अनभिषिक्त, वयः-प्राप्त। वह सुनता है अमुक नाम का क्षत्रिय क्षत्रियों द्वारा क्षत्रियाभिषेक से अभिषिक्त हुआ है। उसके मन में यह होता है कि क्षत्रिय मुझे भी कब क्षत्रियाभिषेक से अभिषिक्त करेंगे? भिक्षुओ, ऐसा (व्यक्ति) आशावान व्यक्ति कहलाता है।

"भिक्षुओ, पूर्णाश व्यक्ति किसे कहते हैं?

"भिक्षुओ, राज्याभिषिक्त क्षत्रिय राजा होता है। वह सुनता है कि अमुक नाम का क्षत्रिय क्षत्रियों द्वारा क्षत्रियाभिषेक से अभिषिक्त हुआ है। उसके मन में यह नहीं होता कि मुझे भी क्षत्रिय कब क्षत्रियाभिषेक से अभिषिक्त करेंगे। यह किसलिए? भिक्षुओ, अभिषेक से पूर्व की इसकी अभिषिक्त होने की आशा पूरी हो चुकी है। भिक्षुओ, ऐसा (व्यक्ति) पूर्णाश व्यक्ति कहलाता है।

"भिक्षुओ, इस लोक में ये तीन प्रकार के व्यक्ति हैं।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, भिक्षुओं में भी तीन प्रकार के भिक्षु हैं। कौन-से तीन?

"निराश (शून्याश), आशावान तथा पूर्णाश।

"भिक्षुओ, निराश भिक्षु किसे कहते हैं?

"भिक्षुओ, एक भिक्षु दुःशील होता है, पापी, अपवित्र, सशंकित आचरण वाला, प्रच्छन्नकर्मी (छिपकर दुष्कर्म करने वाला), श्रमण न होने पर भी श्रमण

होने का दावा करने वाला, ब्रह्मचारी न होते हुए भी ब्रह्मचारी होने का दावा करने वाला, भीतर से सड़ा हुआ, स्रावयुक्त, कूड़े के ढेर जैसा। वह सुनता है कि अमुक भिक्षु आस्रवों का क्षय करके ,अनास्रव चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करता है। उसके मन में यह नहीं होता – मैं भी कब आस्रवों का क्षय कर, अनास्रव चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमोक्ष को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करूंगा। भिक्षुओ, ऐसा (भिक्षु) निराश भिक्षु कहलाता है।

"भिक्षुओ, आशावान भिक्षु किसे कहते हैं?

"भिक्षुओ, भिक्षु सदाचारी होता है कल्याणधर्मी।वह सुनता है कि अमुक भिक्षु आस्रवों का क्षय करके ,अनास्रव चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करता है। उसके मन में यह होता है – मैं भी कब आस्रवों का क्षय कर... विहारकरूंगा।

"भिक्षुओ, ऐसा (भिक्षु) आशावान भिक्षु कहलाता है।

"भिक्षुओ, पूर्णाश भिक्षु किसे कहते हैं?

"भिक्षुओ, एक (भिक्षु) क्षीणास्रव अर्हत होता है। वह सुनता है कि अमुक भिक्षु आस्रवों का क्षय कर...विहार करता है। उसके मन में यह नहीं होता –मैं भी कब आस्रवों का क्षय कर...विहार करूंगा।यह किसलिए? भिक्षुओ, मुक्त होने से पूर्व की इसकी मुक्त होने की आशा शांत हो चुकी है।

"भिक्षुओ, ऐसा (भिक्षु) पूर्णाश भिक्षु कहलाता है। भिक्षुओ, भिक्षुओं में ये तीन प्रकार के भिक्षु हैं।"

४. चक्रवर्ती सुत्त

१४. "भिक्षुओ, जो चक्रवर्ती, धार्मिक, धर्म-राजा होता है, वह भी राजाविहीन होकर चक्रवर्तीराज्य नहीं करता।"

ऐसा कहने पर एक भिक्षु ने भगवान से यह कहा –"भंते, धार्मिक चक्रवर्ती, धर्म-राजा का राजा कौन?"

"भिक्षु! धर्म ही राजा है।" भगवान ने कहा –

"यहां भिक्षु! धार्मिक चक्रवर्ती, धर्म-राजा, धर्म के ही लिए, धर्म का सत्कार करते हुए, धर्म के प्रति गौरव प्रदर्शित करते हुए, धर्म की पूजा करते हुए, धर्म-ध्वज, धर्म-केतु, धर्माधिपत्य, जनता की धर्मानुकूल सुरक्षा की व्यवस्था करता है।

"यहां भिक्षु! और फिर, धार्मिक चक्रवर्ती, धर्म-राजा, धर्म के ही लिए, धर्म का सत्कार करते हुए, धर्म के प्रति गौरव प्रदर्शित करते हुए, धर्म की पूजा करते हुए, धर्म-ध्वज, धर्म-केतु, धर्माधिपत्य, क्षत्रियों की, अनुगामी क्षत्रियों की, सेना की, ब्राह्मण-गृहपतियों की, निगम-जनपद के लोगों की, श्रमण-ब्राह्मणों की तथा पशु-पक्षियों की धर्मानुकूल सुरक्षा की व्यवस्था करता है।

"हे भिक्षु! वह धार्मिक राजा चक्रवर्ती... धार्मिक सुरक्षा की व्यवस्था करके ...क्षत्रियों की... पशु-पक्षियों की, रक्षा के लिए धर्मानुसार ही (राज्य-) चक्र का प्रवर्तन करता है। वह चक्र किसी अन्य मनुष्य द्वारा, किसी शत्रु द्वारा, या किसी प्राणी द्वारा उल्टा घुमाया नहीं जा सकता।[1]

"इसी प्रकार हे भिक्षु! सम्यक संबुद्ध अर्हत, तथागत धार्मिक, धर्म-राजा, धर्म के ही लिए, धर्म का सत्कार करते हुए, धर्म के प्रति गौरव प्रदर्शित करते हुए, धर्म की पूजा करते हुए, धर्म-ध्वज, धर्म-केतु, धर्माधिपत्य, कायिक-कर्म के प्रति धार्मिक पहरेदारी की व्यवस्था करते हैं – इस प्रकार का कायिक-कर्म करना चाहिए, इस प्रकार का कायिक-कर्म नहीं करना चाहिए।

"और फिर भिक्षु! सम्यक संबुद्ध अर्हत, तथागत धार्मिक, धर्म-राजा, धर्म के ही लिए, धर्म का सत्कार करते हुए, धर्म के प्रति गौरव प्रदर्शित करते हुए, धर्म की पूजा करते हुए, धर्म-ध्वज, धर्म-केतु, धर्माधिपत्य वाचिक-कर्म के प्रति... वाचिक-कर्म करना चाहिए, इस प्रकार का वाचिक-कर्म नहीं करना चाहिए। ...मानसिक-कर्म करना चाहिए, इस प्रकार का मानसिक-कर्म नहीं करना चाहिए।

"हे भिक्षु! वह सम्यक संबुद्ध अर्हत, तथागत, धार्मिक, धर्म-राजा... धर्माधिपत्य पहरेदारी की व्यवस्था कर धर्म से ही अनुत्तर (श्रेष्ठ) धर्म-चक्र का प्रवर्तन करता है। उस धर्म-चक्र को लोक में न कोई दूसरा श्रमण, न कोई ब्राह्मण, न देव, न मार, न ब्रह्मा और न कोई और अप्रवर्तित कर सकता है।"

५. सचेतन सुत्त

१५. एक समय भगवान वाराणसी में ऋषिपतन मृगदाय में विहार कर रहे थे। वहां भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया –

"भिक्षुओ!"

१ पालि के **'अप्पटिवत्तियं'** का अर्थ होता है 'जो उल्टा घुमाया नहीं जा सकता' अर्थात जब धर्म-चक्र प्रवर्त्तन होता है तब उसे कोई उल्टा नहीं घुमा सकता। धर्मचक्र प्रवर्त्तित करना तो बड़ी बात है, उस प्रवर्त्तित धर्म-चक्र को कोई उल्टा भी नहीं घुमा सकता।

"भदंत !" कह उन भिक्षुओं ने भगवान को प्रतिवचन दिया। भगवान ने यह कहा –

"भिक्षुओ! पूर्व समय में सचेतन नाम का राजा हुआ था। भिक्षुओ! तब राजा सचेतन ने रथकार को बुलाकर कहा –

'सौम्य रथकार! छः महीनों के बाद संग्राम होगा। क्या तू इस बीच (रथ के) पहियों की नयी जोड़ी बना सकेगा?'

"भिक्षुओ, रथकार ने सचेतन राजा को प्रत्युत्तर दिया –

'बना सकूंगा।'

"तब भिक्षुओ, रथकार ने छः दिन कम छः महीने में एक पहिया बनाया। तब भिक्षुओ, राजा सचेतन ने रथकार को संबोधित किया –

'सौम्य रथकार! आज से छः दिन के बाद संग्राम होगा, नये पहियों की जोड़ी बनकर तैयार हुई?'

'देव! इन छः दिन कम छः महीनों में एक पहिया बन कर तैयार हुआ है।'

'सौम्य! इन छः दिनों में दूसरा एक पहिया बना सकोगे?'

"भिक्षुओ, रथकार ने सचेतन राजा को उत्तर दिया –

'देव! बना सकूंगा।'

"तब भिक्षुओ, रथकार ने छः दिनों में दूसरा पहिया तैयार किया और इन पहियों की नयी जोड़ी को लेकर राजा सचेतन के पास गया। जाकर उसने राजा सचेतन को यह कहा –

'देव! यह आपकी पहियों की जोड़ी तैयार है।'

'सौम्य रथकार! यह जो एक पहिया तूने छः दिन कम छः महीनों में तैयार किया, और यह जो दूसरा पहिया छः दिनों में तैयार किया, इन दोनों में क्या अंतर है? मैं इन दोनों में कोई भेद नहीं देखता।'

'देव! इन दोनों में अंतर है। देव! इन दोनों का अंतर देखें।'

"भिक्षुओ, तब रथकार ने छः दिन में बने हुए पहिये को प्रवर्तित किया। प्रवर्तित किया हुआ वह पहिया जितनी जोर से धकेला गया था उस जोर के समाप्त होते ही चक्कर खा कर जमीन पर गिर पड़ा। तब उसने जो पहिया छः दिन कम छः महीने में बनाया था उसे प्रवर्तित किया। प्रवर्तित किया हुआ वह पहिया जितने जोर से धकेला गया था उस जोर की गति के अनुसार जाकर मानो धुरी पर स्थित की तरह खड़ा हो गया।

'सौम्य रथकार! इसका क्या हेतु है, क्या कारण है कि जो यह छः दिन में बना हुआ पहिया है वह जितने जोर से प्रवर्तित किया गया था, उस जोर के समाप्त होते ही चक्कर खा कर जमीन पर गिर पड़ा, और जो पहिया छः दिन कम छः महीने में तैयार हुआ वह पहिया जितने जोर से प्रवर्तित किया गया था उस जोर के अनुसार जाकर धुरी पर स्थित की तरह खड़ा हो गया?'

'देव! जो यह पहिया छः दिनों में बनकर समाप्त हुआ है उसकी नेमि भी टेढ़ी है, सदोष है, कसर-सहित (त्रुटिपूर्ण है) है, उसके आरे भी टेढ़े हैं, सदोष हैं, कसर-सहित हैं, उसकी नाभि भी टेढ़ी है, सदोष है, कसर-सहित है। उसकी नेमि के भी टेढ़े, सदोष, तथा कसर-सहित होने से, उसके आरों के भी टेढ़े, सदोष तथा कसर-सहित होने से, उसकी नाभि भी टेढ़ी, सदोष तथा कसर-सहित होने से वह पहिया जितने जोर से प्रवर्तित किया गया था उस जोर के समाप्त होते ही चक्कर खा कर जमीन पर गिर पड़ा। और देव! यह जो पहिया छः दिन कम छः महीने में तैयार हुआ उसकी नेमि भी सीधी है, निर्दोष है, कसर-रहित है, उसके आरे भी सीधे हैं, निर्दोष हैं, कसर-रहित हैं, उसकी नाभि भी सीधी है, निर्दोष है तथा कसर-रहित है। उसकी नेमि के भी सीधे, निर्दोष तथा कसर-रहित होने से, उसके आरों के भी सीधे, निर्दोष तथा कसर-रहित होने से, उसकी नाभि के भी सीधे, निर्दोष तथा कसर-रहित होने से यह जो पहिया छः दिन कम छः महीने में तैयार हुआ वह पहिया जितने जोर से प्रवर्तित किया गया था उस जोर के अनुसार मानो धुरी पर स्थित की तरह खड़ा हो गया।'

"भिक्षुओ, संभव है कि तुम यह सोचो कि वह रथकार कोई दूसरा ही था। भिक्षुओ, यह बात इस प्रकार नहीं समझनी चाहिए। मैं ही उस समय वह रथकार था। उस समय मैं लकड़ी के टेढ़ेपन, दोष, लकड़ी की कसरें दूर करने में कुशल था। इस समय भिक्षुओ, मैं अर्हत सम्यक संबुद्ध, शरीर, मन तथा वाणी के टेढ़ेपन, दोष और कसरों को दूर करने में कुशल हूं।

"भिक्षुओ, जिस किसी भिक्षु वा भिक्षुणी के शरीर, वाणी तथा मन का टेढ़ापन, दोष तथा कसर दूर नहीं हुई है वे इस धर्म-विनय से उसी प्रकार गिरे हैं जैसे वह छः दिनों में बना हुआ पहिया।

"भिक्षुओ, जिस किसी भिक्षु या भिक्षुणी के शरीर, वाणी तथा मन का टेढ़ापन, दोष तथा कसर दूर हो गई है, भिक्षुओ, वे भिक्षु तथा भिक्षुणियां इस धर्म-विनय में उसी प्रकार प्रतिष्ठित हैं जैसे छः दिन कम छः महीने में बना हुआ पहिया।

"इसलिए ठीक इसी प्रकार भिक्षुओ, सीखना चाहिए: शरीर, वाणी तथा मन के टेढ़ेपन, दोषों और कसरों का त्याग करेंगे। भिक्षुओ, तुम्हें ऐसा ही सीखना चाहिए।"

६. अनुलोम मार्ग सुत्त

१६. "भिक्षुओ, तीन धर्मों (बातों) से युक्त भिक्षु अनुलोम-प्रतिपदा (मार्ग) का अनुगामी होता है और यह उसके आस्रवों के क्षय का आधार है। कौन-से तीन से?

"भिक्षुओ, यहां भिक्षु इंद्रियों को संयत रखता है, भोजन में मात्रज्ञ होता है, जागरूक रहने में लगा हुआ रहता है।

"भिक्षुओ, इंद्रियों को किस प्रकार संयत रखता है?

"भिक्षुओ, यहां भिक्षु चक्षु से रूप देखकर न उसके निमित्त[1] को ग्रहण करता है और न उसके अनुव्यंजन[2] को। जिस चक्षु-इंद्रिय के असंयत रहने से लोभ-दौर्मनस्य आदि पापी अकुशल धर्मों की उत्पत्ति हो सकती है, उसका संवर करने का प्रयत्न करता है, चक्षु-इंद्रिय की रक्षा करता है, चक्षु-इंद्रिय पर नियंत्रण प्राप्त करता है – श्रोत्र से शब्द सुन कर... घ्राण से गंध सूंघ कर... जिव्हा से रस चख कर... काय से स्पर्श कर... तथा मन से धर्म का ग्रहण कर न उनके निमित्त को ग्रहण करता है और न उनके अनुव्यंजन को, जिस मन-इंद्रिय के असंयत रहने से लोभ-दौर्मनस्य आदि पापी अकुशल-धर्मों की उत्पत्ति हो सकती है, उसका संवर करने का प्रयत्न करता है, मन-इंद्रिय की रक्षा करता है, मन-इंद्रिय पर नियंत्रण प्राप्त करता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु इंद्रियों पर नियंत्रण प्राप्त करता है।

"भिक्षुओ, भिक्षु भोजन में कैसे मात्रज्ञ होता है?

"भिक्षुओ, यहां भिक्षु ज्ञानपूर्वक ठीक से आहार ग्रहण करता है, न क्रीड़ा के लिए, न मद के लिए, न शरीर को मंडित करने के लिए और न विभूषित करने के लिए; बल्कि उतना ही जिससे इस काया की स्थिति बनी रहे, भूख के कारण जो दर्द हो उससे उपरत (विरत) रहने के लिए तथा ब्रह्मचर्य का अभ्यास करने के लिए ताकि पुरानी वेदना को दूर करें, नयी वेदना की उत्पत्ति न हो, और 'मेरी' (जीवन) यात्रा निर्दोष तथा सुखपूर्वक हो। इस प्रकार, भिक्षुओ, भिक्षु भोजन के विषय में मात्रज्ञ होता है।

---

१ **निमित्त** -- स्त्री और पुरुष का रूप या आकृति एक दूसरे के लिए **'निमित्त'** है।

२ उनकी आँखें, नाक तथा बोलने या हँसने का तरीका अनुव्यंजन हैं। निमित्त के विस्तार में जाना अनुव्यंजन है।

"भिक्षुओ, भिक्षु जागरूक रहने में कैसे लगा रहता है?

"भिक्षुओ, यहां भिक्षु दिन में चंक्रमण करता रह कर अथवा बैठा रह कर आवरण (नीवरण) धर्मों को दूर कर चित्त को परिशुद्ध करता है, रात के प्रथम प्रहर में चंक्रमण करता हुआ अथवा बैठा रह कर आवरण धर्मों को दूर कर चित्त को परिशुद्ध करता है, रात्रि के मध्यम प्रहर में पैर पर पैर रखकर दाहिनी करवट सिंह-शैय्या में लेटता है, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी हो, उठने के संकल्प को मन में जगह देकर, रात्रि के पिछले प्रहर में उठकर चंक्रमण करता हुआ अथवा बैठा हुआ आवरण धर्मों को दूर कर चित्त को परिशुद्ध करता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु जागरूक रहने में लगा हुआ रहता है। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त भिक्षु अनुलोम-प्रतिपदा का अनुगामी होता है और उसका जन्म आस्रवों के क्षय में लगा होता है।"

७. स्वकष्ट सुत्त

१७. "भिक्षुओ, इन तीन धर्मों (बातों) से स्वयं को भी कष्ट होता है, दूसरों को भी कष्ट होता है तथा दोनों को भी कष्ट होता है। कौन-से तीन धर्मों से?

"कायिक-दुश्चरित्रता से, वाचिक-दुश्चरित्रता से तथा मानसिक-दुश्चरित्रता से। भिक्षुओ, इन तीन बातों से स्वयं को भी कष्ट होता है, दूसरों को भी कष्टहोता है तथा दोनों को भी कष्टहोता है।"

"भिक्षुओ, तीन धर्मों से न स्वयं को भी कष्ट होता है, न दूसरों को भी कष्ट होता है और न दोनों को भी कष्टहोता है। कौन-से तीन?

"कायिक-सुचरित्रतासे, वाचिक-सुचरित्रता से तथा मानसिक-सुचरित्रता से। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से न स्वयं को भी कष्ट होता है, न दूसरों को भी कष्ट होता है और न दोनों को भी कष्टहोता है।"

८. देवलोक सुत्त

१८. "भिक्षुओ, यदि अन्य मतों के परिव्राजक तुम्हें यह पूछें – आयुष्मानो! क्या श्रमण गौतम देव-लोक में उत्पन्न होने के लिए ब्रह्मचर्य का जीवन जीता है? तो भिक्षुओ, ऐसा पूछने पर क्या तुम्हें पीड़ा नहीं होगी, लज्जा नहीं आयगी, घृणा नहीं होगी?

"भंते! हां।"

"भिक्षुओ, इससे पहले कि तुम्हें दिव्य-आयु, दिव्य-वर्ण, दिव्य-सुख, दिव्य-यश तथा दिव्य-आधिपत्य से पीड़ा हो, लज्जा हो, घृणा हो, तुम्हें

कायिक-दुश्चरितसे, वाचिक-दुश्चरित से तथा मानसिक-दुश्चरित से पीड़ा होनी चाहिए, लज्जा होनी चाहिए, घृणा होनी चाहिए।"

९. वणिक सुत्त (प्रथम)

१९. "भिक्षुओ, जिस दुकानदार में ये तीन बातें होती हैं, वह अप्राप्त धन को प्राप्त कर सकने में तथा प्राप्त धन को बढ़ा सकने में अक्षम होता है। कौन-सी तीन बातें ?

"यहां, भिक्षुओ, जो दुकानदार पूर्वाह्न में सावधानी से अपना कारोबार नहीं करता, मध्याह्न में सावधानी से अपना कारोबार नहीं करता, शाम में सावधानी से अपना कारोबार नहीं करता। भिक्षुओ, जिस दुकानदार में ये तीन बातें होती हैं वह अप्राप्त धन को प्राप्त कर सकने में तथा प्राप्त धन को बढ़ा सकने में अक्षम होता है।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, जिस भिक्षु में ये तीन धर्म होते हैं वह अप्राप्त कुशल-धर्म को प्राप्त कर सकने में तथा प्राप्त कुशल-धर्म को बढ़ा सकने में अक्षम होता है।

"कौन-से तीन?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु पूर्वाह्न के समय सम्यक-प्रकार से समाधि के निमित्त का अधिष्ठान नहीं करता, मध्याह्न के समय सम्यक प्रकार से समाधि के निमित्त का अधिष्ठान नहीं करता, शाम के समय समाधि के निमित्त का अधिष्ठान नहीं करता।

"भिक्षुओ, जिस भिक्षु में ये तीन धर्म होते हैं, वह अप्राप्त कुशल-धर्म को प्राप्त कर सकने में तथा प्राप्त कुशल-धर्मको बढ़ा सकने में अक्षमहोता है।

"भिक्षुओ, जिस दुकानदार में ये तीन बातें होती हैं, वह अप्राप्त धन को प्राप्त कर सकने में तथा प्राप्त धन को बढ़ा सकने में सक्षम होता है। कौन-सी तीन बातें?

"यहां, भिक्षुओ, जो दुकानदार पूर्वाह्न के समय सावधानी से अपना कारोबार करता है, मध्याह्न के समय सावधानी से अपना कारोबार करता है, शाम के समय सावधानी से अपना कारोबार करता है। भिक्षुओ, जिस दुकानदार में ये तीन बातें होती हैं वह अप्राप्त धन को प्राप्त कर सकने में तथा प्राप्त धन को बढ़ा सकने में सक्षमहोता है।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, जिस भिक्षु में ये तीन धर्म होते हैं, वह अप्राप्त कुशल-धर्म को प्राप्त कर सकने में तथा प्राप्त कुशल-धर्म को बढ़ा सकने में सक्षम होता है। कौन-से तीन?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु पूर्वाह्न के समय सम्यक प्रकार से समाधि के निमित्त का अधिष्ठान करता है, मध्याह्न के समय... शाम के समय समाधि के निमित्त का अधिष्ठान करता है। भिक्षुओ, जिस भिक्षु में ये तीन धर्म होते हैं वह अप्राप्त कुशल-धर्म को प्राप्त कर सकने में तथा प्राप्त कुशल-धर्म को बढ़ा सकने में सक्षम होता है।"

१०. वणिक सुत्त (द्वितीय)

२०. "भिक्षुओ, जिस दुकानदार में ये तीन बातें होती हैं, वह शीघ्र ही संपत्ति की अधिकता वा विपुलता को प्राप्त कर लेता है। कौन-सी तीन?

"यहां, भिक्षुओ, एक तो दुकानदार चक्षुमान होता है, दूसरे विदुर (जानकार) होता है, तीसरे विश्वासपत्र होता है।

"भिक्षुओ, दुकानदार चक्षुमान कैसे होता है? यहां, भिक्षुओ, दुकानदार बेचने के सामान को जानता है कि यह इस भाव खरीदा हुआ है, इस दाम पर बेचने से इतना मूल आ जायगा और इतना लाभ रहेगा। भिक्षुओ, इस प्रकार दुकानदार चक्षुमान होता है।

"भिक्षुओ, दुकानदार विदुर कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, दुकानदार बेचने का सामान खरीदने-बेचने में कुशल होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार दुकानदारविदुर होता है।

"भिक्षुओ, दुकानदार विश्वासपात्र कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, जो श्रीमान महाधनवान तथा महासंपत्तिशाली गृहपति वा गृहपति-पुत्र हैं वे उसके बारे में जानते हैं कि यह दुकानदार चक्षुमान है, विदुर है, पुत्र-स्त्री का पालन करने में समर्थ है तथा समय-समय पर हमें हमारे धन का सूद या लाभ देने में समर्थ है। वे उसे संपत्ति देते हैं कि सौम्य! यहां से यह संपत्ति ले जा, पुत्र-स्त्री का पोषण कर तथा समय-समय पर हमें भी सूद या लाभ दे। भिक्षुओ, इस प्रकार दुकानदार विश्वासपात्र होता है। भिक्षुओ, इन तीन बातों से दुकानदार शीघ्र ही संपत्ति की अधिकता व विपुलता को प्राप्त कर लेता है।

"इस प्रकार भिक्षुओ, जिस भिक्षु में ये तीन धर्म होते हैं वह शीघ्र ही कुशल-धर्मों में महानता वा विपुलता प्राप्त कर लेता है। कौन-से तीन?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु चक्षुमान होता है, विदुर होता है तथा विश्वासपात्र होता है।

"भिक्षुओ, भिक्षु चक्षुमान किस प्रकार होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु 'यह दुःख है' इसे यथार्थ रूप से जानता है... 'यह निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है' इसे यथार्थ रूप से जानता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु चक्षुमान होता है।

"भिक्षुओ, भिक्षु विदुर किस प्रकार होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु अकुशल-धर्मों का प्रहाण करने के लिए तथा कुशल-धर्मों के उत्पादन के लिए प्रयत्नशील होता है, सामर्थ्यवान होता है, दृढ़ पराक्रमी होता है। वह कुशल-धर्मों का जुआ कंधे पर धारण किये होता है, अर्थात वह बिना श्रेष्ठ मार्ग को प्राप्त किये प्रयत्न करना नहीं छोड़ता है। भिक्षुओ, भिक्षु इस प्रकार विदुर होता है।

"भिक्षुओ, भिक्षु किस प्रकार विश्वासपात्र होता है? यहां, भिक्षुओ, भिक्षु जो बहुश्रुत भिक्षु हैं, जो आगम या शास्त्र के जानकार हैं, जो धर्मधर हैं, जो विनयधर हैं, जो मातृका-धर हैं, उनके पास समय-समय पर जाकर पूछता है, प्रश्न करता है – भंते! यह कैसे है, इसका क्या अर्थ है? उसके लिए वे आयुष्मान ढँके को उघाड़ देते हैं, अस्पष्ट को स्पष्ट कर देते हैं, अनेक प्रकार के संदिग्ध विषयों में शंका-समाधान कर देते हैं।

"भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु विश्वासपात्र होता है। भिक्षुओ, जिस भिक्षु में ये तीन धर्म होते हैं वह शीघ्र ही कुशल-धर्मों में महानता वा विपुलता प्राप्त कर लेता है।"

* * * * *

३. पुद्गल वर्ग

१. समिद्ध सुत्त

२१. ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। तब आयुष्मान समिद्ध तथा आयुष्मान महाकोट्ठिक आयुष्मान सारिपुत्त के पास गये। जाकर आयुष्मान सारिपुत्त के साथ कुशलक्षेम की बातचीत की...एक ओर बैठे हुए आयुष्मान समिद्ध को आयुष्मान सारिपुत्त ने यह कहा –

"आयुष्मान समिद्ध! इस संसार में ये तीन प्रकार के लोग हैं। कौन-से तीन? एक काय-साक्षी, दूसरे दृष्टि-प्राप्त तथा तीसरे श्रद्धा-विमुक्त।

आयुष्मान! इस संसार में ये तीन प्रकार के लोग हैं। आयुष्मान! इन तीन प्रकार के लोगों में तुम्हें कौन-सा अधिक अच्छा, अधिक श्रेष्ठ जंचता है?"

"आयुष्मान सारिपुत्त! इस संसार में ये तीन प्रकार के लोग हैं। कौन-से तीन? काय-साक्षी, दृष्टि-प्राप्त तथा श्रद्धा-विमुक्त। आयुष्मान! इस संसार में ये तीन प्रकार के लोग हैं। आयुष्मान, इन तीन प्रकार के लोगों में जो यह श्रद्धा-विमुक्त है वह मुझे अधिक अच्छा, अधिक श्रेष्ठ जंचता है। यह किसलिए? आयुष्मान! इस व्यक्ति की श्रद्धा-इंद्रिय बलवती है।"

अब आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान महाकोट्ठिक को यह कहा – "आयुष्मान कोट्ठित! इस संसार में ये तीन प्रकार के लोग हैं। कौन-से तीन? कायसाक्षी... आयुष्मान! इस संसार में ये तीन प्रकार के लोग हैं। आयुष्मान! इन तीन प्रकार के लोगों में तुम्हें कौन-सा अधिक अच्छा, अधिक श्रेष्ठ जंचता है?"

"आयुष्मान सारिपुत्त! इस संसार में ये तीन प्रकार के लोग हैं। कौन-से तीन? काय-साक्षी... आयुष्मान! इस संसार में ये तीन प्रकार के लोग हैं। आयुष्मान! इन तीन प्रकार के लोगों में जो यह काय-साक्षी है वह मुझे अधिक अच्छा, अधिक श्रेष्ठ जंचता है। यह किसलिए? आयुष्मान! इस व्यक्ति की समाधि-इंद्रिय बलवती है।"

तब आयुष्मान महाकोट्ठिक ने आयुष्मान सारिपुत्त को यह कहा – "आयुष्मान सारिपुत्त! इस संसार में... कौन-से तीन? काय-साक्षी... आयुष्मान! इस संसार में ये तीन प्रकार के लोग हैं। आयुष्मान! इन तीन प्रकार के लोगों में जो यह दृष्टि-प्राप्त है वह मुझे अधिक अच्छा, अधिक श्रेष्ठ जंचता है। यह किसलिए? इस व्यक्ति की प्रज्ञा-इंद्रिय बलवती है।"

अब आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान समिद्ध तथा आयुष्मान महाकोट्ठिक को यह कहा –

"आयुष्मानो! हम सब ने अपनी-अपनी समझ के अनुसार व्यक्त किया। आओ, भगवान के पास चलें। पास जाकर भगवान से यह बात कहें। फिर जैसे हमारे भगवान कहेंगे वैसा स्वीकार करेंगे।"

आयुष्मान समिद्ध तथा आयुष्मान महाकोट्ठिक ने आयुष्मान सारिपुत्त को प्रत्युत्तर दिया – "ठीक है, आयुष्मान!" तब आयुष्मान सारिपुत्त, आयुष्मान समिद्ध तथा आयुष्मान महाकोट्ठिक भगवान के पास गये। पास पहुँचकर, भगवान को नमस्कार कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान

सारिपुत्त ने आयुष्मान समिद्ध तथा आयुष्मान महाकोट्ठिक के साथ जितनी बातचीत हुई थी सब भगवान से कह दी।

"सारिपुत्त! निश्चित रूप से यह कहना कि इन तीन प्रकार के लोगों में यह अधिक अच्छा है, यह अधिक श्रेष्ठ है, आसान नहीं है। सारिपुत्त! इसकी संभावना है कि जो यह व्यक्ति श्रद्धा-विमुक्त हो वह अर्हत्व के मार्ग पर आरूढ़ हो और जो यह व्यक्ति काय-साक्षी है वह सकृदागामी वा अनागामी हो और इसी प्रकार जो यह दृष्टि-प्राप्त है वह भी सकृदागामी वा अनागामी हो!

"सारिपुत्त! निश्चित रूप से यह कहना कि इन तीन प्रकार के लोगों में यह अधिक अच्छा है, यह अधिक श्रेष्ठ है, आसान नहीं है। सारिपुत्त! इसकी संभावना है कि जो यह व्यक्ति काय-साक्षी है वह अर्हत्व के मार्ग पर आरूढ़ हो और जो यह व्यक्ति श्रद्धा-विमुक्त है वह सकृदागामी वा अनागामी हो और इसी प्रकार जो यह दृष्टि-प्राप्त है वह भी सकृदागामी वा अनागामी हो।

"सारिपुत्त! निश्चित रूप से यह कहना कि इन तीन प्रकार के लोगों में यह अधिक अच्छा है, यह अधिक श्रेष्ठ है, आसान नहीं है। सारिपुत्त! इसकी संभावना है कि जो यह व्यक्ति दृष्टि-प्राप्त है, वह अर्हत्व के मार्ग पर आरूढ़ हो और जो यह व्यक्ति श्रद्धा-विमुक्त है, वह सकृदागामी वा अनागामी हो और इसी प्रकार जो यह काय-साक्षी है, वह भी सकृदागामी वा अनागामी हो।

"सारिपुत्त। निश्चित रूप से यह कहना कि इन तीन प्रकार के लोगों में यह अधिक अच्छा है, यह अधिक श्रेष्ठ है, आसान नहीं है।"

२. ग्लान सुत्त

२२. "भिक्षुओ, इस संसार में तीन तरह के रोगी हैं। कौन-से तीन तरह के ?

"यहां, भिक्षुओ, एक रोगी ऐसा होता है कि चाहे उसे अनुकूल भोजन मिले और चाहे न मिले; चाहे उसे अनुकूल औषध मिले और चाहे न मिले; चाहे उसे अनुकूल सेवक मिले और चाहे न मिले; वह उस रोग से मुक्त नहीं होता।

"यहां, भिक्षुओ, एक (दूसरा) रोगी ऐसा होता है कि चाहे उसे अनुकूल भोजन मिले, चाहे न मिले; चाहे उसे अनुकूल औषध मिले, चाहे न मिले, चाहे उसे अनुकूल सेवक मिले, और चाहे न मिले; वह उस रोग से मुक्त होता है।

"यहां, भिक्षुओ, एक (तीसरा) रोगी होता है कि उसे अनुकूल भोजन मिले, न मिलने से नहीं; अनुकूल औषध मिले, न मिलने से नहीं; अनुकूल सेवक मिले, न मिलने से नहीं; वह उस रोग से मुक्त होता है।

"भिक्षुओ, इनमें जो यह रोगी है जिसे अनुकूल भोजन मिले, न मिलने से नहीं, अनुकूल औषध मिले, न मिलने से नहीं, अनुकूल सेवक मिले, न मिलने से नहीं, तो वह रोग से मुक्त होता है, ऐसे ही रोगी के लिए पथ्य, औषध और सेवक की व्यवस्था करने के लिए कहा गया है। किंतु ऐसे रोगी को ही ध्यान में रखकर अन्य रोगियों की सेवा करनी चाहिए। भिक्षुओ, लोक में ये तीन तरह के रोगी हैं।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, इस संसार में ये तीन रोगी-समान मनुष्य हैं। कौन-से तीन?

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई चाहे उसे तथागत का दर्शन मिले, चाहे न मिले; चाहे तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म-विनय सुनना मिले, चाहे न मिले, वह कुशल-धर्मों में (आर्य अष्टांगिक) मार्ग को प्राप्त नहीं करता।

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई चाहे उसे तथागत का दर्शन मिले, चाहे न मिले; चाहे तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म-विनय सुनना मिले, चाहे न मिले, वह कुशल-धर्मों में (आर्य अष्टांगिक) मार्ग को प्राप्त करता है।

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई यदि उसे तथागत का दर्शन मिले, नहीं मिलने से नहीं; यदि उसे तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म-विनय सुनना मिले, न मिलने से नहीं, वह कुशल-धर्मों में (आर्य अष्टांगिक) मार्ग को प्राप्त करता है।

"भिक्षुओ, जो यह व्यक्ति तथागत का दर्शन मिलने से, न मिलने से नहीं; तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म-विनय सुनना मिलने से, न मिलने से नहीं; कुशल-धर्मों में मार्ग के सम्यकत्व का लाभ करता है, भिक्षुओ, इस एक व्यक्ति के लिए धर्म-देशना की अनुज्ञा की गयी है। भिक्षुओ, इस एक व्यक्ति के निमित्त से दूसरों को भी धर्मोपदेश दिया जाना चाहिए।

"भिक्षुओ, इस संसार में ये तीन रोगी-समान मनुष्य हैं।"

३. संस्कार सुत्त

२३. "भिक्षुओ, संसार में ये तीन तरह के व्यक्ति हैं। कौन-से तीन तरह के?

"यहां, भिक्षुओ, एक व्यक्ति दुर्भावपूर्ण कायिक कर्म की राशि बनाता है, दुर्भावपूर्ण वाचिक कर्म की राशि बनाता है, दुर्भावपूर्ण मानसिक कर्म की राशि बनाता है। वह दुर्भावपूर्ण शारीरिक-कर्म की राशि बनाकर, दुर्भावपूर्ण वाचिक-कर्म की राशि बनाकर, दुर्भावपूर्ण मानसिक-कर्म की राशि बनाकर दुर्भावपूर्ण (दुःखद) लोक में उत्पन्न होता है। वैसे ही लोक में उत्पन्न होकर वैसे

ही लोगों का स्पर्श पाकर, प्रभावित हो एकांत-दुःख वेदना का अनुभव करता है जैसे कि नरक में उत्पन्न हुए प्राणी।

"यहां, भिक्षुओ, एक व्यक्ति सद्भावपूर्ण कायिक-कर्म की राशि बनाता है, सद्भावपूर्ण वाचिक-कर्म की राशि बनाता है, सद्भावपूर्ण मानसिक-कर्म की राशि बनाता है। वह सद्भावपूर्ण कायिक-कर्म की राशि बनाकर... सद्भावपूर्ण मानसिक-कर्म की राशि बनाकर सद्भावपूर्ण लोक में उत्पन्न होता है। वैसे ही लोक में उत्पन्न होकर वैसे ही लोगों का स्पर्श पाकर, प्रभावित हो एकांत-सुख वेदना का अनुभव करता है जैसे कि शुभकीर्ण देवता।

"यहां, भिक्षुओ, एक व्यक्ति दुर्भावपूर्ण भी तथा सद्भावपूर्ण भी कायिक-कर्म की राशि बनाता है... मानसिक-कर्म की राशि बनाता है। वह दुर्भावपूर्ण भी तथा सद्भावपूर्ण भी कायिक-कर्म...मानसिक-कर्म की राशि बनाकर दुर्भावपूर्ण भी सद्भावपूर्ण भी लोक में उत्पन्न होता है। वैसे ही लोक में उत्पन्न होकर वैसे ही लोगों का स्पर्श पाकर, प्रभावित हो सुख-दुःख मिश्रित वेदनाओं का अनुभव करता है जैसे कुछ मनुष्य, कुछ देव तथा कुछ विनिपातिक।

"भिक्षुओ, संसार में ये तीन तरह के व्यक्ति हैं।"

४. बहूपकार सुत्त

२४. "भिक्षुओ, ये तीन व्यक्ति व्यक्ति का बहुत उपकार करने वाले होते हैं। कौन-से तीन?

"भिक्षुओ, जिस व्यक्ति के कारण व्यक्ति बुद्ध की शरण जाता है, धर्म की शरण जाता है तथा संघ की शरण जाता है, वह व्यक्ति उस व्यक्ति का बहुत उपकार करने वाला होता है।

"और भिक्षुओ, जिस व्यक्ति के कारण व्यक्ति 'यह दुःख है' इसे यथाभूत जानता है, 'यह दुःख-समुदय है' इसे...'यह दुःख-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है' इसे यथाभूत जानता है, भिक्षुओ, वह व्यक्ति उस व्यक्ति का बहुत उपकार करने वाला होता है।

"फिर भिक्षुओ, जिस व्यक्ति के कारण कोई व्यक्ति आस्रवों का क्षय करके इसी जीवन में अनास्रव चित्त-विमुक्ति तथा प्रज्ञा-विमुक्ति को स्वयं अभिज्ञात कर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करता है, वह व्यक्ति उस व्यक्ति का बहुत उपकार करने वाला होता है।

"भिक्षुओ, ये तीन व्यक्ति व्यक्ति का बहुत उपकार करने वाले हैं। भिक्षुओ, मैं कहता हूं कि इन तीन व्यक्तियों से बढ़कर व्यक्ति का कोई उपकार

करनेवाला नहीं है। भिक्षुओ, यदि व्यक्ति इन तीन व्यक्तियों का अभिवादन कर, सम्मान देने के लिए खड़ा होकर, हाथ-जोड़कर, मैत्रीपूर्ण व्यवहार कर, चीवर, पिंडपात, शयनासन, गिलान-प्रत्यय, भैषज्य-परिष्कार आदि देकर प्रत्युपकार करना चाहे तो भी यह सु-प्रत्युपकारनहीं होता।"

५. वज्रोपम सुत्त

२५. "भिक्षुओ, संसार में ये तीन प्रकारके लोग हैं। कौन-से तीन? पुराने (बहते, स्रावी) व्रण के समान चित्त वाला व्यक्ति, बिजली के समान चित्त वाला व्यक्ति तथा वज्र के समान चित्त वाला व्यक्ति।

"भिक्षुओ, पुराने व्रण के समान चित्त वाला व्यक्ति कैसा होता है? यहां, भिक्षुओ, कोई व्यक्ति क्रोधी-स्वभावका होता है, अशांत चित्तवाला, थोड़ा-सा भी कुछ कहने से वह बात उसे लग जाती है, उसे क्रोध आ जाता है, वह चिड़चिड़ा हो जाता है, वह कठोर हृदय हो विरोध करता है, वह क्रोध, द्वेष तथा अप्रसन्नता प्रकट करता है। जैसे पुराना व्रण लकड़ी या ठीकरा लग जाने से और भी बहने लग जाता है, इसी प्रकार भिक्षुओ, कोई व्यक्ति क्रोधी स्वभाव का होता है... प्रकट करता है। भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति पुराने व्रण के समान चित्त वाला व्यक्ति कहलाता है।

"भिक्षुओ, बिजली के समान चित्त वाला व्यक्ति कैसा होता है? यहां, भिक्षुओ, कोई व्यक्ति 'यह दुःख है' इसे यथार्थ रूप से जानता है...'यह दुःख-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है', इसे यथार्थ रूप से जानता है। जैसे भिक्षुओ, कोई आंख वाला व्यक्ति बिजली चमकती घोर अंधेरी रात में रूप देखे, इसी प्रकार भिक्षुओ, यहां एक व्यक्ति यह 'दु;ख है'...'यह दुःख-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है', इसे यथार्थ रूप से जानता है। भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति बिजली के समान चित्त वाला व्यक्ति कहलाता है।

"भिक्षुओ, वज्र के समान चित्त वाला व्यक्ति कैसा होता है? यहां, भिक्षुओ, कोई व्यक्ति आस्रवों का क्षय करके, इसी जीवन में अनास्रव चित्त-विमुक्ति तथा प्रज्ञा-विमुक्ति को स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करता है। भिक्षुओ, जैसे वज्र के लिए कुछ भी अभेद्य नहीं है, चाहे मणि हो, चाहे पाषाण हो, इसी प्रकार भिक्षुओ, एक व्यक्ति आस्रवों का क्षय कर... प्राप्तकर विहार करता है। भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति वज्र के समान चित्त वाला व्यक्ति कहलाता है।

"भिक्षुओ, इस संसार में ये तीन प्रकार के लोग हैं।"

६. सेवितव्य सुत्त

२६. "भिक्षुओ, लोक में तीन तरह के लोग हैं। कौन-से तीन तरह के? भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति होता है जिसका न अनुसरण करना चाहिए, न सेवा करनी चाहिए, न आदर करना चाहिए। भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति होता है जिसका अनुसरण करना चाहिए, सेवा करनी चाहिए, आदर करना चाहिए। भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति होता है जिसका सत्कार कर, गौरव कर, अनुसरण करना चाहिए, सेवा करनी चाहिए, आदर करना चाहिए।

"भिक्षुओ, वह व्यक्ति कैसा होता है जिसका न अनुसरण करना चाहिए, न सेवा करनी चाहिए, न आदर करना चाहिए?

"यहां, भिक्षुओ, कोई व्यक्ति शील, समाधि तथा प्रज्ञा से हीन होता है। भिक्षुओ, उस पर करुणा या अनुकंपा करने की स्थिति को छोड़कर न उसका अनुसरण करना चाहिए, न सेवा करनी चाहिए, न आदर करना चाहिए।

"भिक्षुओ, वह व्यक्ति कैसा होता है जिसका अनुसरण करना चाहिए, सेवा करनी चाहिए, आदर करना चाहिए?

"यहां, भिक्षुओ, कोई व्यक्ति शील, समाधि तथा प्रज्ञा में अपने जैसा होता है। ऐसे व्यक्ति का अनुसरण करना चाहिए, सेवा करनी चाहिए, आदर करना चाहिए। यह किसलिए? हम दोनों सदृश-शील वालों में शील-कथा आरंभ होगी, हमारी शील-कथा जारी रहेगी और उससे हमें सुख मिलेगा; हम दोनों सदृश-समाधि वालों के साथ समाधि-कथा आरंभ होगी, हमारी समाधि-कथा जारी रहेगी और उससे हमें सुख मिलेगा, हम दोनों सदृश-प्रज्ञा वालों के साथ प्रज्ञा-कथा आरंभ होगी, हमारी प्रज्ञा-कथा जारी रहेगी और उसमें हमें सुख मिलेगा – यही सोचकर ऐसे व्यक्ति का अनुसरण करना चाहिए, सेवा करनी चाहिए, आदर करना चाहिए।

"भिक्षुओ, वह व्यक्ति कैसा होता है जिसका सत्कार कर, गौरव कर, अनुसरण करना चाहिए, सेवा करनी चाहिए, आदर करना चाहिए?

"यहां, भिक्षुओ, कोई व्यक्ति शील, समाधि तथा प्रज्ञा में अधिक होता है। ऐसे व्यक्ति का सत्कार कर, गौरव कर, अनुसरण करना चाहिए, सेवा करनी चाहिए, आदर करना चाहिए। यह किसलिए? मैं अपरिपूर्ण शील-स्कंध को परिपूर्ण करूंगा, परिपूर्ण शील-स्कंध को वहां-वहां (जो इसके लिए अलाभप्रद है, अनुपकारकहै उसे छोड़कर लाभप्रद और उपकारक को)प्रज्ञा से संभाले रखूंगा, अपरिपूर्ण समाधि-स्कंध को परिपूर्ण करूंगा, परिपूर्ण

समाधि-स्कंध को वहां-वहां (जो इसके लिए अलाभप्रद है, अनुपकारक है उसे छोड़कर लाभप्रद और उपकारक को) प्रज्ञा से संभाले रखूंगा, अपरिपूर्ण प्रज्ञा-स्कंध को परिपूर्ण करूंगा, परिपूर्ण प्रज्ञा-स्कंध को वहां-वहां (जो इसके लिए अलाभप्रद है, अनुपकारक है उसे छोड़कर लाभप्रद और उपकारक को) प्रज्ञा से संभाले रखूंगा – यह सोचकर ऐसे व्यक्ति का सत्कार कर, गौरव कर, अनुसरण करना चाहिए, सेवा करनी चाहिए, आदर करना चाहिए।

"भिक्षुओ, लोक में ये तीन तरह के लोग हैं।"

"निहीयति पुरिसो निहीनसेवी, न च हायेथ कदाचि तुल्यसेवी।
सेट्ठमुपनमं उदेति खिप्पं, तस्मा अत्तनो उत्तरिं भजेथा"ति॥

["अपने से हीन व्यक्ति की संगति करनेवाला स्वयं हीन हो जाता है, समान की संगति करनेवाला कभी ह्रास को प्राप्त नहीं होता, अपने से श्रेष्ठ की संगति करनेवाला शीघ्र ही उन्नति को प्राप्त होता है। इसलिए अपने से श्रेष्ठ की ही संगति करनी चाहिए।"]

७. जुगुप्सितव्य (घृणा करने योग्य) सुत्त

२७. "भिक्षुओ, लोक में ये तीन तरह के लोग हैं। कौन-से तीन तरह के? भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति होता है जो घृणा करने योग्य होता है, जिसका न अनुसरण करना चाहिए, न सेवा करनी चाहिए, न आदर करना चाहिए। भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति होता है जो उपेक्षा करने योग्य होता है, जिसका न अनुसरण करना चाहिए, न सेवा करनी चाहिए, न आदर करना चाहिए। भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति होता है जिसका अनुसरण करना चाहिए, सेवा करनी चाहिए, आदर करना चाहिए।

"भिक्षुओ, वह व्यक्ति कैसा होता है जो घृणा करने योग्य होता है, जिसका न अनुसरण करना चाहिए, न सेवा करनी चाहिए, न आदर करना चाहिए?

"यहां, भिक्षुओ, एक व्यक्ति होता है दुःशील, पापी, अपवित्र, शंकित आचरण वाला, प्रच्छन्न (गुप्त) आचरण करनेवाला, अश्रमण होकर 'श्रमण' कहलानेवाला, अब्रह्मचारी होकर 'ब्रह्मचारी' कहलानेवाला, भीतर से सड़ा हुआ, बेकार, कूड़ा-करकट। भिक्षुओ, इस तरह का व्यक्ति घृणा करनेयोग्य होता है, जिसका न अनुसरण करना चाहिए, न सेवा करनी चाहिए, न आदर करना चाहिए। यह किसलिए? भिक्षुओ, चाहे कोई ऐसे व्यक्ति का कुछ भी अनुसरण न करता हो तो भी उसका अपयश होता है – यह पापियों का मित्र

है, यह पापियों का सहायक है, यह पापियों का जिगरी दोस्त है। जिस प्रकार गूह में लिबड़ा हुआ सर्प चाहे नहीं डँसे तो भी लीबेड़ देगा, इसी प्रकार भिक्षुओ, चाहे कोई ऐसे व्यक्ति का कुछ भी... पापियों का दोस्त है। इसलिए इस प्रकार का व्यक्ति घृणा करने योग्य होता है, जिसका न अनुसरण करना चाहिए, न सेवा करनी चाहिए, न आदर करना चाहिए।

"भिक्षुओ, वह व्यक्ति कैसा होता है जो उपेक्षा करने योग्य होता है, जिसका न अनुसरण करना चाहिए, न सेवा करनी चाहिए, न आदर करना चाहिए।

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई व्यक्ति क्रोधी-स्वभाव का होता है, अशांत चित्तवाला, कुछ थोड़ा-भी बोलने से बिगड़ जाता है, क्रोधित हो जाता है, चिड़चिड़ा हो जाता है, वह कठोरहृदय हो विरोधी हो जाता है, क्रोध, द्वेष और असंतोष प्रकट करता है। जैसे भिक्षुओ, पुराना व्रण लकड़ी या ठीकरा लग जाने से और बहने लग जाता है, इसी प्रकार भिक्षुओ, कोई-कोई व्यक्ति... असंतोष प्रकट करता है। जैसे भिक्षुओ, तिंडुक का अलाव लकड़ी या ठीकरे से छेड़ देने से और भी अधिक चिट-चिट करता है, इसी प्रकार भिक्षुओ, कोई-कोई व्यक्ति... असंतोष प्रकट करता है। जैसे भिक्षुओ, गूह का गड्ढा लकड़ी या ठीकरे से छेड़ देने से और भी अधिक दुर्गंध देता है, उसी प्रकार भिक्षुओ, कोई-कोई व्यक्ति क्रोधी स्वभाव का होता है, अशांत, कुछ थोड़ा-भी बोलने से... असंतोष प्रकट करता है। भिक्षुओ, इस प्रकार का व्यक्ति उपेक्षा करने योग्य होता है, जिसका न अनुसरण करना चाहिए, न सेवा करनी चाहिए, न आदर करना चाहिए। यह किसलिए? इस प्रकार का व्यक्ति मेरा अपमान भी कर सकता है, अपशब्द भी कह सकता है और मुझे अनर्थ, हानि भी पहुँचा सकता है। इसलिए इस प्रकार के व्यक्ति के प्रति उपेक्षा करनी चाहिए, उसका न अनुसरण करना चाहिए, न सेवा करनी चाहिए और न आदर करना चाहिए।

"भिक्षुओ, वह व्यक्ति कैसा होता है जिसका अनुसरण करना चाहिए, सेवा करनी चाहिए, आदर करना चाहिए?

"यहां, भिक्षुओ, एक व्यक्ति शीलवान होता है, कल्याणधर्मी। भिक्षुओ, ऐसे व्यक्ति का अनुसरण करना चाहिए, सेवा करनी चाहिए, आदर करना चाहिए। यह किसलिए? भिक्षुओ, ऐसे व्यक्ति का कोई कुछ अनुसरण न भी करे, तब भी उसका यश होता है – यह सज्जनों का मित्र है, सज्जनों का

सहायक है तथा सज्जनों का जिगरी दोस्त है। इसलिए इस प्रकार के व्यक्ति का अनुसरण करना चाहिए, सेवा करनी चाहिए, आदर करना चाहिए।

भिक्षुओ, इस संसार में ये तीन तरह के लोग हैं।"

"निहीयति पुरिसो निहीनसेवी, न च हायेथ कदाचि तुल्यसेवी।
सेट्ठमुपनमं उदेति खिप्पं, तस्मा अत्तनो उत्तरिं भजेथा"ति॥

["अपने से हीन व्यक्ति की संगत करने वाला स्वयं हीन हो जाता है, समान की संगत करने वाला कभी ह्रास को प्राप्त नहीं होता, अपने से श्रेष्ठ की संगत करने वाला शीघ्र ही उन्नति को प्राप्त होता है। इसलिए अपने से श्रेष्ठ की ही संगत करनी चाहिए।"]

८. गूथभाषी (विष्ठा) सुत्त

२८. "भिक्षुओ, संसार में तीन तरह के लोग हैं। कौन-से तीन तरह के? गूथ-भाषी, पुष्प-भाषी तथा मधु-भाषी।

"भिक्षुओ, गूथ-भाषी आदमी कैसा होता है? यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी चाहे उसे सभा में ले जाकर, चाहे परिषद में ले जाकर, चाहे जाति-समूह में ले जाकर, चाहे पूग (=श्रेणी, व्यवसाय-विशेष का संगठन) में ले जाकर और चाहे राज-दरबार में ले जाकर, यदि उससे यह कहकर साक्षी पूछी जाय कि हे पुरुष! जो जानता हो वह कह। वह न जानता हुआ कहेगा कि जानता हूं, जानता हुआ कहेगा कि नहीं जानता हूं; न देखता हुआ कहेगा कि देखता हूं और देखता हुआ कहेगा कि नहीं देखता हूं। ऐसा वह या अपने लिए या पराये के लिए करेगा या किसी भौतिक लाभ के लिए करेगा। वह जान-बूझ कर झूठ बोलने वाला होगा।

"भिक्षुओ, ऐसा आदमी गूथ-भाषी होता है।

"भिक्षुओ, पुष्प-भाषी आदमी कैसा होता है? यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी चाहे उसे सभा में ले जाकर, चाहे परिषद में ले जाकर, चाहे जाति-समूह में ले जाकर, चाहे पूग में ले जाकर और चाहे राज-दरबार में ले जाकर, यदि उससे यह कहकर साक्षी पूछी जाय कि हे पुरुष! जो भली प्रकार जानता हो वह कह। वह न जानता हुआ कहेगा कि नहीं जानता हूं, जानता हुआ कहेगा कि जानता हूं, न देखता हुआ कहेगा कि नहीं देखता हूं, देखता हुआ कहेगा कि देखता हूं। वह न अपने लिए, न पराये के लिए और न किसी भौतिक लाभ के लिए जान-बूझ कर झूठ बोलने वाला होगा। भिक्षुओ, ऐसा आदमी पुष्प-भाषी होता है।

"भिक्षुओ, मधु-भाषी आदमी कैसा होता है? यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी कठोर-वाणी बोलना छोड़ कठोर-वाणी से विरत होकर रहता है। जो वाणी निर्दोष होती है, कर्णप्रिय होती है, प्रेम पैदा करनेवाली होती है, हृदय में पैठ जाने वाली होती है, शिष्ट होती है, बहुत जनों को सुंदर, बहुत जनों को प्रिय लगने वाली होती है – ऐसी वाणी बोलता है। भिक्षुओ, ऐसा आदमी मधु-भाषी होता है।

"भिक्षुओ, संसार में ये तीन प्रकार के आदमी हैं।"

९. अंध सुत्त

२९. "भिक्षुओ, संसार में तीन प्रकार के लोग हैं। कौन-से तीन प्रकार के? अंधे, एक आंखवाले, दोनों आंख वाले।

"भिक्षुओ, अंधा आदमी कैसा होता है? यहां, भिक्षुओ, किसी-किसी आदमी के पास ऐसी आंख नहीं होती जिससे कि वह अप्राप्त संपत्ति को प्राप्त कर सके और प्राप्त संपत्ति को बढ़ा सके; उसकी ऐसी आंख भी नहीं होती जिससे वह कुशल-अकुशल धर्मों की पहचान कर सके, सदोष-निर्दोष धर्मों की पहचान कर सके, हीन-प्रणीत धर्मों की पहचान कर सके तथा परस्पर-विरोधी कृष्ण-शुक्ल धर्मों की पहचान कर सके। भिक्षुओ, ऐसा आदमी अंधा कहलाता है।

"और भिक्षुओ, एक-आंख वाला आदमी कैसा होता है? यहां, भिक्षुओ, किसी-किसी आदमी के पास ऐसी आंख होती है जिससे कि वह अप्राप्त संपत्ति को प्राप्त कर सके और प्राप्त संपत्ति को बढ़ा सके; किंतु उसकी ऐसी आंख नहीं होती जिससे वह कुशल-अकुशल धर्मों की पहचान कर सके, सदोष-निर्दोष धर्मों की पहचान कर सके, हीन-प्रणीत धर्मों की पहचान कर सके तथा परस्पर-विरोधी कृष्ण-शुक्ल धर्मों की पहचान कर सके। भिक्षुओ, ऐसा आदमी एक-आंख वाला कहलाता है।

"और भिक्षुओ, दो आंख वाला आदमी कैसा होता है? यहां, भिक्षुओ, किसी-किसी आदमी के पास ऐसी आंख होती है जिससे कि वह अप्राप्त संपत्ति को प्राप्त कर सके और प्राप्त संपत्ति को बढ़ा सके; और उसकी ऐसी आंख भी होती है जिससे वह कुशल-अकुशल धर्मों की पहचान कर सके, सदोष-निर्दोष धर्मों की पहचान कर सके, हीन-प्रणीत धर्मों की पहचान कर सके तथा परस्पर-विरोधी कृष्ण-शुक्ल धर्मों की पहचान कर सके। भिक्षुओ, ऐसा आदमी दो आंख वाला कहलाता है।

"भिक्षुओ, संसार में ये तीन तरह के लोग हैं।"

"न चेव भोगा तथारूपा, न च पुञ्ञानि कुब्बति।
उभयत्थ कलिग्गाहो, अन्धस्स हतचक्खुनो॥

"अथापरायं अक्खातो, एकचक्खु च पुग्गलो।
धम्माधम्मेन सठोसो, भोगानि परियेसति॥

"थेय्येन कूटकम्मेन, मुसावादेन चूभयं।
कुसलो होति सङ्घातुं, कामभोगी च मानवो।
इतो सो निरयं गन्त्वा, एकचक्खु विहञ्ञति॥

"द्विचक्खु पन अक्खातो, सेट्ठो पुरिसपुग्गलो।
धम्मलद्धेहि भोगेहि, उट्ठानाधिगतं धनं॥

"ददाति सेट्ठसङ्कप्पो, अब्यग्गमानसो नरो।
उपेति भद्दकं ठानं, यत्थ गन्त्वा न सोचति॥

"अन्धञ्च एकचक्खुञ्च, आरका परिवज्जये।
द्विचक्खुं पन सेवेथ, सेट्ठं पुरिसपुग्गल"न्ति॥

["जो चक्षु-विहीन अंधा आदमी होता है उसके पास न तो वैसे भोग-पदार्थ ही होते हैं और न वह कोई पुण्य ही करता है, वह दोनों तरह से अभागा है।

एक दूसरा आदमी होता है जो एक आंख वाला है, वह जो धर्माधर्म में शठ है, वह संपत्ति प्राप्त करता है – चोरी से, ठगी से, दोनों तरह से झूठ बोलकर। वह कामभोगी आदमी कामभोग के पदार्थों का संग्रह करने में कुशल होता है। किंतु वह एक आंख वाला आदमी यहां से नरक में जाकर विनाश को प्राप्त होता है।

जो दो आंख वाला आदमी होता है वही श्रेष्ठ कहा गया है। वह अप्रमाद तथा धर्म से भोग्य पदार्थों को प्राप्त करता है। फिर वह व्यग्रता-रहित श्रेष्ठ संकल्प वाला नर (उनमें से) दान करता है। (इस कर्म से) वह श्रेष्ठ स्थान में जन्म लेता है जहां जाकर उसे अनुताप नहीं होता। इसलिए अंधे तथा एक चक्षु वाले से दूर-दूर रहे। जो दोनों आंख वाला श्रेष्ठ व्यक्ति हो उसी की संगत करे।"]

१०. अवकुब्ज (औंधा घड़ा) सुत्त

३०. "भिक्षुओ, संसार में तीन तरह के लोग हैं। कौन-से तीन तरह के? औंधे-घड़े जैसी प्रज्ञा वाला आदमी, पल्ले (तराजू के दो हिस्सों में से कोई एक) जैसी प्रज्ञा वाला आदमी, बहुल-प्रज्ञ आदमी।

"भिक्षुओ, औंधे-घड़े जैसी प्रज्ञा वाला आदमी कैसा होता है?

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी भिक्षुओं से धर्म सीखने के लिए उनके पास विहार में निरंतर जाने वाला होता है। उसे भिक्षु आरंभ में कल्याणकारी, मध्य में कल्याणकारी, अंत में कल्याणकारी धर्म का उपदेश करते हैं, अर्थ-सहित, व्यंजन-सहित (अर्थात अर्थतः और अक्षरशः) संपूर्ण रूप से परिशुद्ध और परिपूर्ण धर्म को प्रकाशित करते हैं। वह आसन पर बैठा हुआ न उस उपदेश के आरंभ को मन में धारण करता है, न मध्य को और न अंत को। उस आसन से उठने पर भी न उस उपदेश के आरंभ को मन में धारण करता है, न मध्य को और न अंत को। भिक्षुओ, जैसे उल्टे घड़े में डाला हुआ पानी गिर पड़ता है, ठहरता नहीं है, इसी प्रकार भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी धर्म सीखने के लिए भिक्षुओं के पास... न अंत को। उस आसन से उठने पर भी... न अंत को। भिक्षुओ, ऐसा आदमी औंधे-घड़े जैसी प्रज्ञा वाला आदमी कहलाता है।

"भिक्षुओ, पल्ले जैसी प्रज्ञा वाला आदमी कैसा होता है?

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी भिक्षुओं से धर्म सीखने के लिए... प्रकाशित करते हैं। वह आसन पर बैठा हुआ उस उपदेश के आरंभ को भी मन में धारण करता है, मध्य को भी और अंत को भी। किंतु उस आसन से उठने पर न उस उपदेश के आरंभ को मन में धारण करता है, न मध्य को और न अंत को। जैसे भिक्षुओ, किसी आदमी के पल्ले में नाना प्रकार की खाद्य वस्तुयें हों, तिल हों, चावल हों, लड्डू हों, बेर हों; वह आसन से उठते समय असावधानी के कारण उन्हें बिखेर दे। उसी प्रकार भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी भिक्षुओं से धर्म सीखने के लिए... प्रकाशित करते हैं। वह आसन पर बैठा... अंत को। किंतु आसन से उठने पर... न अंत को। भिक्षुओ, ऐसा आदमी पल्ले जैसी प्रज्ञा वाला कहलाता है।

"भिक्षुओ, बहुल-प्रज्ञ आदमी कैसा होता है?

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी भिक्षुओं से धर्म सीखने के लिए... प्रकाशित करते हैं। वह आसन पर बैठा हुआ उस उपदेश के आरंभ को भी मन

में धारण करता है... अंत को। वह आसन से उठने पर भी उस उपदेश के आरंभ को भी मन में धारण करता है... अंत को भी। भिक्षुओ, जैसे सीधे घड़े में डाला हुआ पानी उसमें ठहरता है, गिरता नहीं है; इसी प्रकार भिक्षुओ, कोई-कोईआदमी भिक्षुओं से धर्म सीखने के लिए... प्रकाशित करते हैं। वह आसन पर बैठा हुआ उस उपदेश के आरंभ को भी मन में धारण करता है... अंत को भी। वह आसन से उठने पर भी उस उपदेश के आरंभ को भी मन में धारण करता है... अंत को भी। भिक्षुओ, ऐसा आदमी बहुल-प्रज्ञ आदमी कहलाता है।

"भिक्षुओ, संसार में ये तीन तरह के लोग हैं।"

"अवकुज्जपञ्ञो पुरिसो, दुम्मेधो अविचक्खणो।
अभिक्खणम्पि चे होति, गन्ता भिक्खून सन्तिके॥

"आदिं कथाय मज्झञ्च, परियोसानञ्च तादिसो।
उग्गहेतुं न सक्कोति, पञ्ञा हिस्स न विज्जति॥

"उच्छङ्गपञ्ञो पुरिसो, सेय्यो एतेन वुच्चति।
अभिक्खणम्पि चे होति, गन्ता भिक्खून सन्तिके॥

"आदिं कथाय मज्झञ्च, परियोसानञ्च तादिसो।
निसिन्नो आसने तस्मिं, उग्गहेत्वान ब्यञ्जनं।
वुट्ठितो नप्पजानाति, गहितं हिस्स मुस्सति॥

"पुथुपञ्ञो च पुरिसो, सेय्यो एतेहि वुच्चति।
अभिक्खणम्पि चे होति, गन्ता भिक्खुन सन्तिके॥

"आदिं कथाय मज्झञ्च, परियोसानञ्च तादिसो।
निसिन्नो आसने तस्मिं, उग्गहेत्वान ब्यञ्जनं॥

"धारेति सेट्ठसङ्कप्पो, अब्यग्गमानसो नरो।
धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो, दुक्खस्सन्तकरो सिया"ति॥

["दुर्बुद्धि, बे-अक्ल, औंधे घड़े जैसी प्रज्ञा वाला आदमी यदि भिक्षुओं के पास निरंतर भी जाता है, तो वह उस उपदेश का न आदि, न मध्य और न अंत ही ग्रहण कर सकता है, क्योंकि उसकी प्रज्ञा ही नहीं होती। उस आदमी की अपेक्षा पल्ले जैसी प्रज्ञा वाला आदमी श्रेष्ठ कहलाता है। वह यदि भिक्षुओं के पास निरंतर भी जाता है, तो वह आसन पर बैठे रहते समय उस धर्मोपदेश के

आदि, मध्य और अंत को व्यंजन-सहित ग्रहण कर लेता है। लेकिन उठने पर भली प्रकार नहीं जानता, क्योंकि ग्रहण किया हुआ भूल जाता है। इन दोनों से बहुल-प्रज्ञ आदमी श्रेष्ठतर माना जाता है। वह यदि भिक्षुओं के पास निरंतर भी जाता है, तो वह उस आसन पर बैठे रहते समय उस धर्मोपदेश के आदि, मध्य और अंत को व्यंजन-सहित ग्रहण कर लेता है। वह शांत-चित्त श्रेष्ठ-संकल्प वाला आदमी उस धर्म को अच्छी तरह धारण करता है। धर्मानुसार (बड़े तथा छोटे धर्मों के अनुसार) आचरण कर वह दुःख का अंत करने वाला होता है।"]

* * * * *

४. देवदूत वर्ग

१. सब्रह्मक सुत्त

३१. "भिक्षुओ, जिन कुलों के पुत्र माता-पिता की घर में पूजा करते हैं वे ऐसे कुल हैं जहां ब्रह्मा वास करते हैं। जिन कुलों के पुत्र माता-पिता की घर में पूजा करते हैं वे ऐसे कुल हैं जहां पूर्वाचार्य वास करते हैं। भिक्षुओ, जिन कुलों के पुत्र माता-पिता की घर में पूजा करते हैं वे कुल दान देने योग्य हैं अर्थात पूज्य हैं।

"भिक्षुओ, ब्रह्मा – यह माता-पिता का ही पर्याय है। भिक्षुओ, पूर्व-आचार्य – यह माता-पिता का ही पर्याय है। भिक्षुओ, जो व्यक्ति दान देने योग्य हैं वे भी माता-पिता के ही पर्याय हैं।

"यह किसलिए? भिक्षुओ, माता-पिता का अपनी संतान पर बहुत उपकार होता है। वे पालन करने वाले हैं, वे पोषण करने वाले हैं, उन्होंने इस लोक से परिचय कराया है।

"ब्रह्माति मातापितरो, पुब्बाचरियाति वुच्चरे।
आहुनेय्या च पुत्तानं, पजाय अनुकम्पका॥

"तस्मा हि ने नमस्सेय्य, सक्करेय्य च पण्डितो।
अन्नेन अथ पानेन, वत्थेन सयनेन च।
उच्छादनेन न्हापनेन, पादानं धोवनेन च॥

"ताय नं पारिचरियाय, मातापितूसु पण्डिता।
इधेव नं पसंसन्ति, पेच्च सग्गे पमोदती"ति॥

["माता-पिता ही 'ब्रह्मा' कहे जाते हैं, माता-पिता ही पूर्वाचार्य कहे जाते हैं, माता-पिता ही दान देने योग्य कहे जाते हैं। वे अपनी संतान पर बहुत अनुकंपा करने वाले हैं। इसलिए बुद्धिमान (संतान) को चाहिए कि उन्हें नमस्कार करे, उनका अन्न से, पान से, वस्त्र से, शयनासन से सत्कार करे तथा मालिश करके, नहला करके, पांव धोकर उनकी सेवा, सत्कार करे। जो पंडित परिचर्या से माता-पिता को संतुष्ट करता है उसकी यहां भी प्रशंसा होती है और मृत्यु होने पर वह स्वर्ग में भी आनंदित होता है।"]

२. आनन्द सुत्त

३२. एक समय आयुष्मान आनन्द भगवान के पास गये। पास जाकर भगवान को नमस्कार कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द ने भगवान से यह कहा –

"भंते! क्या भिक्षु को ऐसी समाधि का लाभ हो सकता है कि इस सविज्ञान शरीर में ही उसे अहंकार, ममत्व तथा मान का बोध न हो, और इस काया से बाहर भी जितने निमित्त हैं, उन निमित्तों में भी उसे अहंकार, ममत्व तथा मान का बोध न हो और जिस चित्त-विमुक्ति, जिस प्रज्ञा-विमुक्ति के साथ विहार करते हुए अहंकार, ममत्व तथा मान उत्पन्न नहीं होते, उस चित्त-विमुक्ति, उस प्रज्ञा-विमुक्ति को प्राप्त कर विहार करे?"

"आनन्द! भिक्षु को ऐसी समाधि का लाभ हो सकता है कि इस सविज्ञान शरीर में ही... प्राप्त कर विहार करे।"

"भंते! भिक्षु का वैसा समाधि-लाभ कैसा होता है कि इस सविज्ञान शरीर में ही... प्राप्त कर विहार करे?"

"यहां, आनन्द! इस विषय में भिक्षु को ऐसा लगता है –यही शांत है, यही प्रणीत है, जो यह सब संस्कारों का शमन, सभी उपधियों का त्याग, तृष्णा का क्षय, विराग, निरोध, निर्वाण है। इस प्रकार आनन्द! भिक्षु को ऐसी समाधि का लाभ हो सकता है कि इस सविज्ञान शरीर में ही... प्राप्त कर विहार करे।

"आनन्द! पुर्ण-प्रश्न पारायण में जो मैंने यह कहा है वह इसी अर्थ में कहा है –

"सङ्खाय लोकस्मिं परोपरानि, यस्सिञ्जितं नत्थि कुहिञ्चि लोके।
सन्तो विधूमो अनीघो निरासो, अतारि सो जातिजरन्ति ब्रूमी"ति॥

["संसार में उस पार तथा इस पार का ज्ञान प्राप्त करके जिसके मन में किसी भी विषय के संबंध में चंचलता नहीं है, उस शांत, निर्धूम (राग-रहित),

दुःख-रहित तथा तृष्णा-रहित पुरुष ने जाति-जरा को पार किया है – ऐसा मैं कहता हूं।”]

३. सारिपुत्त सुत्त

३३. एक समय आयुष्मान सारिपुत्त भगवान के पास गये। जाकर भगवान को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान सारिपुत्त को भगवान ने यह कहा –

“सारिपुत्त! मैं संक्षेप में भी धर्मोपदेश देता हूं, विस्तार से भी धर्मोपदेश देता हूं, संक्षिप्त-विस्तृत रूप से भी धर्मोपदेश देता हूं, किंतु उसके समझने वाले दुर्लभ हैं।”

“भगवान! इसी का समय है। सुगत! इसी का समय है। भगवान संक्षेप में भी धर्मोपदेश दें, विस्तार से भी धर्मोपदेश दें, संक्षिप्त-विस्तृत रूप से भी धर्मोपदेश दें; धर्म के समझने वाले होंगे।”

“तो सारिपुत्त! इस कारण ठीक इसी प्रकार सीखना चाहिए – इस सविज्ञान शरीर में अहंकार, ममत्व तथा मान उत्पन्न नहीं होगा, इससे बाहर सभी निमित्तों में भी अहंकार, ममत्व तथा मान उत्पन्न नहीं होगा, जिस चित्त-विमुक्ति, जिस प्रज्ञा-विमुक्ति को प्राप्त कर विहार करने पर अहंकार, ममत्व तथा मान उत्पन्न नहीं होते, उस चित्त-विमुक्ति, उस प्रज्ञा-विमुक्ति को प्राप्त कर विहार करेंगे। हे सारिपुत्त! ठीक इसी प्रकार सीखना चाहिए।

“क्योंकि सारिपुत्त! इस सविज्ञान शरीर में भिक्षु के मन में अहंकार, ममत्व तथा मान उत्पन्न नहीं होते, इससे बाहर के सभी निमित्तों में भी अहंकार, ममत्व तथा मान उत्पन्न नहीं होते, जिस चित्त-विमुक्ति, जिस प्रज्ञा-विमुक्ति को प्राप्त कर अहंकार, ममत्व तथा मान उत्पन्न नहीं होते उस चित्त-विमुक्ति को, उस प्रज्ञा-विमुक्ति को प्राप्त कर विहार करता है। हे सारिपुत्त! ऐसे भिक्षु के विषय में कहा जाता है कि इसने तृष्णा को छिन्न-भिन्न कर दिया, संयोजनों को निर्मूल कर दिया और मान को संपूर्ण रूप से समझकर दुःख का अंत कर दिया।

“सारिपुत्त! उदय-प्रश्न पारायण में जो मैंने यह कहा वह उक्त अर्थ में ही कहा –

“पहानं कामसञ्ञानं, दोमनस्सान चूभयं।
थिनस्स च पनूदनं, कुक्कुच्चानं निवारणं॥

“उपेक्खासतिसंसुद्धं, धम्मतक्क पुरेजवं।
अञ्ञाविमोक्खं पब्रूमि, अविज्जाय पभेदन”न्ति॥

[“कामनाओं तथा दौर्मनस्यों – इन दोनों का प्रहाण, आलस्य का नाश तथा कौकृत्यका निवारण, उपेक्षा तथा स्मृति की परिशुद्धि, सम्यक-संकल्प (धर्म-तर्क) ही अग्रणी होता है (मार्गदर्शन करता है) तथा अविद्या का प्रभेदन जहां है वहीं विमुक्ति है – ऐसा मैं कहता हूं।”]

४. निदान सुत्त

३४. “भिक्षुओ! कर्मों की उत्पत्ति के ये तीन हेतु (निदान) हैं। कौन-से तीन? लोभ कर्मों की उत्पत्ति का हेतु है, द्वेष कर्मों की उत्पत्ति का हेतु है, मोह कर्मों की उत्पत्तिका हेतु है।

“भिक्षुओ, जिस कर्म के मूल में लोभ है, जो लोभ से उत्पन्न हुआ है, जिसका निदान लोभ है, जिसका कारण लोभ है, उस कर्म के कर्ता का जन्म जहां होता है वहां वह कर्म विपाक उत्पन्न करता है, जहां वह कर्म पकता है, वहां उस कर्म का फल उसे भोगना होता है, उसी जन्म में अथवा अन्य किसी जन्म में।

“भिक्षुओ, जिस कर्म के मूल में द्वेष है, जो द्वेष से उत्पन्न हुआ है, जिसका निदान द्वेष है, जिसका कारण द्वेष है, उस कर्म के कर्ता का जन्म जहां होता है वहां वह कर्म विपाक उत्पन्न करता है, जहां वह कर्म पकता है, वहां उस कर्म का फल उसे भोगना होता है, उसी जन्म में अथवा अन्य किसी जन्म में।

“भिक्षुओ, जिस कर्म के मूल में मोह है, जो मोह से उत्पन्न हुआ है, जिसका निदान मोह है, जिसका कारण मोह है, उस कर्म के कर्ता का जन्म जहां होता है वहां वह कर्म विपाक उत्पन्न करता है, जहां वह कर्म पकता है, वहां उस कर्म का फल उसे भोगना होता है, उसी जन्म में अथवा अन्य किसी जन्म में।

“भिक्षुओ, जैसे बीज हों अखंडित, सड़े न हों, हवा-धूप से खराब न हुए हों, सारवान हों, अच्छी तरह रखे हों, अच्छी तरह तैयार की गयी भूमि वाले सुक्षेत्र में डाले गये हों और उस पर अच्छी वर्षा हो, तो भिक्षुओ, वे बीज वृद्धि तथा विपुलता को प्राप्त होंगे ही। इसी प्रकार भिक्षुओ, जिस कर्म के मूल में लोभ है... अथवा अन्य किसी जन्म में। जिस कर्म के मूल में द्वेष है... अथवा अन्य किसी जन्म में। जिस कर्म के मूल में मोह है... अथवा अन्य किसी जन्म में।

“भिक्षुओ, कर्मों की उत्पत्तिके ये तीन हेतु हैं।

"भिक्षुओ, कर्मों की उत्पत्ति के ये तीन हेतु हैं। कौन-से तीन? अलोभ कर्मों की उत्पत्ति का हेतु है, अद्वेष कर्मों की उत्पत्ति का हेतु है, अमोह कर्मों की उत्पत्ति का हेतु है।

"भिक्षुओ, जिस कर्म के मूल में अलोभ है, जो अलोभ से उत्पन्न हुआ है, जिसका निदान अलोभ है, जिसका कारण अलोभ है, लोभ के न रहने पर उस कर्म का प्रहाण हो जाता है, उसकी जड़ उखड़ जाती है, वह कटे ताड़ वृक्ष की तरह हो जाता है, वह अभावप्राप्त हो जाता है, उसकी भावी उत्पत्ति रुक जाती है।

"भिक्षुओ, जिस कर्म के मूल में अद्वेष है, जो अद्वेष से उत्पन्न हुआ है, जिसका निदान अद्वेष है, जिसका कारण अद्वेष है, द्वेष के न रहने पर उस कर्म का प्रहाण हो जाता है, उसकी जड़ उखड़ जाती है, वह कटे ताड़ वृक्ष की तरह हो जाता है, वह अभावप्राप्त हो जाता है, उसकी भावी उत्पत्ति रुक जाती है।

"भिक्षुओ, जिस कर्म के मूल में अमोह है, जो अमोह से उत्पन्न हुआ है, जिसका निदान अमोह है, जिसका कारण अमोह है, मोह के न रहने पर उस कर्म का प्रहाण हो जाता है, उसकी जड़ उखड़ जाती है, वह कटे ताड़ वृक्ष की तरह हो जाता है, वह अभावप्राप्त हो जाता है, उसकी भावी उत्पत्ति रुक जाती है।

"भिक्षुओ, जैसे बीज अखंडित हों, सड़े न हों, हवा-धूप से खराब न हुये हों, सारवान हों, अच्छी तरह रखे हों, उन्हें आदमी आग में जला डाले, आग में जलाकर राख कर दे, राख करके तेज हवा में उड़ा दे अथवा शीघ्रगामी नदी में बहा दे, उससे उन बीजों का मूल नष्ट हो जाये, वे कटे ताड़ वृक्ष की तरह हो जायें, वे अभावप्राप्त हो जायें, उनकी भावी उत्पत्ति रुक जाये। इसी प्रकार भिक्षुओ, जिस कर्म के मूल में अलोभ है... उसकी भावी उत्पत्ति रुक जाती है, जिस कर्म के मूल में अद्वेष है... उसकी भावी उत्पत्ति रुक जाती है, जिस कर्म के मूल में अमोह है... उसकी भावी उत्पत्ति रुक जाती है।

"भिक्षुओ, कर्मों की उत्पत्ति के ये तीन हेतु हैं।"

"लोभजं दोसजञ्चेव, मोहजञ्चापिविद्दसु।
यं तेन पकतं कम्मं, अप्पं वा यदि वा बहुं।
इधेव तं वेदनियं, वत्थु अञ्ञं न विज्जति॥

"तस्मा लोभञ्च दोसञ्च, मोहञ्चापि विद्दसु।
विज्जं उप्पादयं भिक्खु, सब्बा दुग्गतियो जहे"ति॥

["जो मूर्ख लोभ, द्वेष अथवा मोह से प्रेरित होकर चाहे छोटा, चाहे बड़ा कुछ भी कर्म करता है, उसे ही वह भोगना पड़ता है, दूसरे को दूसरे का किया नहीं भोगना पड़ता। इसलिए बुद्धिमान भिक्षु को चाहिए कि लोभ, द्वेष और मोह का त्याग कर विद्या का लाभ कर सारी दुर्गतियों से मुक्त हो।"]

५. हत्थक सुत्त

३५. ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान आळवी (राष्ट्र) में गौवों के आने-जाने के मार्ग पर सिंसप-वन में गिरे पत्तों के आसन पर बैठे थे।

तब पैदल घूमते हुए हत्थक (नामक) आळवक राजपुत्र ने भगवान को उस प्रकार गौवों के आने-जाने के मार्ग पर सिंसप-वन में गिरे पत्तों के आसन पर बैठे देखा। देखकर भगवान के पास गया। पास जाकर भगवान को नमस्कार कर एक ओर बैठ हत्थकआळवक ने भगवान को यह कहा –

"क्या भंते भगवान! आप सुख से सोये?"

"हां कुमार! मैं सुख से सोया। संसार में जो लोग सुखपूर्वक सोते हैं, मैं उनमें से एक हूं।"

"भंते! यह हेमंत ऋतु की शीत रात्रि है, माघ और फाल्गुन के बीच के आठ दिनों का समय है, हिम-पात के दिन हैं, गौवों के खुरों की मारी हुई कठोर भूमि है, पत्तों का पतला बिछौना है, पेड़ पर कहीं-कहीं थोड़े पत्ते हैं, ठंडे काषाय-वस्त्र हैं, पर्वत-प्रदेशों से ठंढी हवा (वैरम्भक) आ रही है, और भगवान ने यह कहा है – 'हां कुमार! मैं सुख से सोया। संसार में जो लोग सुखपूर्वक सोते हैं, मैं उनमें से एक हूं!"

"तो कुमार! मैं तुझ से ही पूछता हूं, जैसे तुझे अच्छा लगे वैसा कहना। कुमार! तो तू क्या समझता है यहां किसी गृहपति वा गृहपति-पुत्र का ऊंचा मकान हो, लिपा-पुता हो, जहां हवा न आती हो, अर्गल लगा हो, खिड़की बंद हो; वहां एक पलंग हो जिस पर चार अंगुल अधिक की झालर वाला आस्तरण बिछा हो, ऊन का आस्तरण बिछा हो, घने ऊन का आस्तरण बिछा हो, कदली मृग के श्रेष्ठ चर्म का आस्तरण बिछा हो, उस पलंग के ऊपर वितान तना हो, सिर और पांव की ओर दो लाल तकिये हों, तेल-प्रदीप जल रहा हो, चार भार्यायें अच्छी तरह सेवा कर रही हों तो कुमार, तुझे इस विषय में कैसा लगता है वह सुख-पूर्वक सोयेगा अथवा नहीं?"

"भंते! वह सुखपूर्वक सोयेगा। संसार में जो सुखपूर्वक सोते हैं उनमें से वह एक होगा।"

"तो कुमार! तुम क्या मानते हो क्या उस गृहपति अथवा गृहपति-पुत्र को (काम-) राग से उत्पन्न होने वाली ऐसी शारीरिक वा मानसिक जलन (परिदाह) हो सकती है जिस (काम-) राग से उत्पन्न होने वाली जलन के कारण वह दुःखी रहे?"

"हां भंते!"

"कुमार! जिस (काम-) राग से उत्पन्न जलन के कारण वह गृहपति अथवा गृहपति-पुत्र जलता रह कर दुःखी रह सकता है, तथागत का वह राग प्रहीण हो गया है, उसका जड़-मूल कट गया है, वह कटे ताड़-वृक्ष की तरह हो गया है, वह अभावप्राप्त हो गया है, उसकी भावी उत्पत्ति जाती रही है। इसलिए मैं सुखपूर्वक सोया।

"तो कुमार! तुम क्या मानते हो क्या उस गृहपति अथवा गृहपति-पुत्र को द्वेष से उत्पन्न होने वाली (द्वेषज)... मोह से उत्पन्न होने वाली (मोहज) ऐसी शारीरिक वा मानसिक जलन हो सकती है जिस मोह से उत्पन्न होने वाली जलन के कारण वह दुःखी रहे?"

"हां भंते!"

"कुमार! जिस मोह से उत्पन्न होने वाली जलन के कारण वह गृहपति अथवा गृहपति-पुत्र जलता रह कर दुःखी रह सकता है, तथागत का वह मोह प्रहीण हो गया है, उसका जड़-मूल कट गया है, वह कटे ताड़-वृक्ष की तरह हो गया है, वह अभावप्राप्त हो गया है, उसकी भावी उत्पत्ति जाती रही है। इसलिए मैं सुखपूर्वक सोया।"

"सब्बदा वे सुखं सेति, ब्राह्मणो परिनिब्बुतो।
यो न लिम्पति कामेसु, सीतिभूतो निरूपधि॥

"सब्बा आसत्तियो छेत्वा, विनेय्य हदये दरं।
उपसन्तो सुखं सेति, सन्तिं पप्पुय्य चेतसो"ति॥

["जो कामभोगों में लिप्त नहीं होता, जो शांत है, जो उपधि-रहित है, परिनिर्वृत्त है, वह ब्राह्मण निश्चित ही सुखपूर्वक सोता है। जो सभी आसक्तियों को काट कर हृदय के दुःख को दूर करता है, जो चित्त की शांति को प्राप्त करता है, ऐसा उपशांत, सुखपूर्व सोता है।"]

६. देवदूत सुत्त

३६. "भिक्षुओ, ये तीन देवदूत हैं। कौन-से तीन?

"भिक्षुओ, एक आदमी कायिक दुष्कर्म करता है, वाचिक दुष्कर्म करता है, मानसिक दुष्कर्म करता है। वह शरीर से दुष्कर्म करके, वाणी से दुष्कर्म करके, मन से दुष्कर्म करके शरीर छूटने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति में पड़कर नरक में उत्पन्न होता है। तो भिक्षुओ, उसे नाना नरक-पाल बाहों से पकड़कर यमराज के पास ले जाते हैं – 'देव! यह आदमी मातृ-सेवक नहीं, पितृ-सेवक नहीं, श्रमणों की सेवा करने वाला नहीं, ब्राह्मणों (क्षीणास्रव) की सेवा करने वाला नहीं, परिवार में बड़े-बूढ़ों का आदर करने वाला नहीं, हे देव! इसे सजा दें।'

"भिक्षुओ, उस आदमी से यमराज प्रथम देवदूत के बारे में प्रश्न करता है, पूछता है, बातचीत करता है – 'हे पुरुष! क्या तूने मनुष्य-लोक में प्रकट हुए प्रथम देवदूत को नहीं देखा?'

"वह बोला – 'स्वामी! नहीं देखा।'

"तब भिक्षुओ, यमराज उस आदमी से पूछता है – 'हे पुरुष! क्या तूने मनुष्य-लोक में किसी ऐसी स्त्री या पुरुष को नहीं देखा जिसकी आयु अस्सी वर्ष की हो, नब्बे वर्ष की हो अथवा सौ वर्ष की हो; जो बूढ़ा हो, जो शहतीर की तरह टेढ़ा हो, जो टूट गया हो, जिसके हाथ में लाठी हो, जो चलता हुआ कांपता हो, जो रोगी हो, जिसका यौवन जाता रहा हो, जिसके दांत टूट गये हों, जिसके बाल सफेद हो गये हों, जिसकी खोपड़ी गंजी हो गयी हो, जिसके झुर्रियां पड़ गयी हों तथा जिसके बदन पर काले-सफेद निशान पड़ गये हों?'

"वह बोला – 'स्वामी! देखा है।'

"तो भिक्षुओ, उसे यमराज ने कहा –'हे पुरुष! तुझ विज्ञ, स्मृतिमान वृद्ध के मन में यह नहीं हुआ कि मैं भी जरा को प्राप्त होने वाला हूं, मैं भी जरा के अधीन हूं। मैं शरीर, वाणी तथा मन से शुभ-कर्म करूं।'

"वह बोला – 'स्वामी! मुझ से न हो सका। मैंने प्रमाद किया।'

"तब भिक्षुओ, उसे यमराज ने कहा –'हे पुरुष! प्रमाद के कारण तूने शरीर, वाणी अथवा मन से शुभ कर्म नहीं किये। तो हे पुरुष! अब तेरे साथ तेरे प्रमाद के अनुरूप व्यवहार करेंगे। यह जो पाप-कर्म है, यह न तेरी माता ने किया है, न पिता ने किया है, न भाई ने किया है, न बहन ने किया है, न मित्र-अमात्यों ने किया है, न परिवार तथा रिश्तेदारों ने किया है, न देवताओं ने किया है, न श्रमण-ब्राह्मणों ने किया है; यह पाप-कर्म तेरे ही द्वारा किया गया है, तू ही इसका फल भोगेगा।'

"तो भिक्षुओ, यमराज प्रथम देवदूत के बारे में प्रश्न करके ,पूछ करके , बातचीत करके ,दूसरे देवदूत के बारे में प्रश्न करता है, पूछता है, बातचीत करता है –'हे पुरुष! क्या तूने मनुष्य-लोक में प्रकट हुए दूसरे देवदूत को नहीं देखा ?'

"वह बोला –'स्वामी! नहीं देखा।'

"तब भिक्षुओ, यमराज उस आदमी से पूछता है –'हे पुरुष! क्या तूने मनुष्य-लोक में किसी ऐसी स्त्री या पुरुष को नहीं देखा जो रोगी हो, जो दुःखी हो, जो बहुत बीमार हो, अपने मल-मूत्र में पड़ा हो, जिसे दूसरे ही आकर उठाते हों, दूसरे ही बिठाते हों?"

"वह बोला –'स्वामी! देखा है।'

"तो भिक्षुओ, उस यमराज ने कहा –'हे पुरुष! तुझ विज्ञ, स्मृतिमान वृद्ध के मन में यह नहीं हुआ कि मैं भी व्याधि को प्राप्त होने वाला हूं, मैं भी व्याधि के अधीन हूं। मैं शरीर, वाणी तथा मन से शुभ कर्म करूं?'

"वह बोला –'स्वामी! मुझ से न हो सका। मैंने प्रमाद किया।'

तब भिक्षुओ, उसे यमराज ने कहा –"हे पुरुष! प्रमाद के कारण तूने शरीर, वाणी अथवा मन से शुभ-कर्म नहीं किये।तो हे पुरुष! अब तेरे साथ तेरे प्रमाद के अनुरूप व्यवहार करेंगे।यह जो पाप-कर्म है, यह न तेरी माता ने किया है, न पिता ने किया है, न भाई ने किया है, न बहन ने किया है, न मित्र-अमात्यों ने किया है, न परिवार तथा रिश्तेदारों ने किया है, न देवताओं ने किया है, न श्रमण-ब्राह्मणों ने किया है, यह पाप-कर्म तेरे ही द्वारा किया गया है, तू ही इसका फल भोगेगा। "

"तो भिक्षुओ, यमराज द्वितीय देवदूत के बारे में प्रश्न करके ,बातचीत करके ,तृतीय देवदूत के बारे में प्रश्न करता है, पूछता है, बातचीत करता है – 'हे मनुष्य! क्या तूने मनुष्य-लोक में प्रकट हुए तीसरे देवदूत को नहीं देखा ?'

"वह बोला –'स्वामी! नहीं देखा।'

"तब भिक्षुओ, यमराज उस आदमी से पूछता है –'हे पुरुष! क्या तूने मनुष्य-लोक में किसी ऐसी स्त्री या पुरुष को नहीं देखा जिसे मरे एक दिन हो गया हो, जिसे मरे दो दिन हो गये हों, जिसे मरे तीन दिन हो गये हों, जो फूल गया हो, जिसका शरीर नीला पड़ गया हो, जिसके बदन में पीप पड़ गयी हो ?'

"वह बोला –'स्वामी! देखा है।'

"तो भिक्षुओ, उस यमराज ने कहा –'हे पुरुष! तुझ विज्ञ, स्मृतिमान वृद्ध के मन में यह नहीं हुआ कि मैं भी मरण को प्राप्त होने वाला हूं, मैं भी मरण के अधीन हूं। मैं शरीर, वाणी तथा मन से शुभ-कर्म करूं?'

"वह बोला – 'स्वामी! मुझ से न हो सका। मैंने प्रमाद किया।'

"तब भिक्षुओ, उसे यमराज ने कहा –'हे पुरुष! प्रमाद के कारण तूने शरीर, वाणी अथवा मन से शुभ-कर्म नहीं किये। तो हे पुरुष! अब तेरे साथ तेरे प्रमाद के अनुरूप व्यवहार करेंगे। यह जो पाप-कर्म है, यह न तेरी माता ने किया है, न पिता ने किया है, न भाई ने किया है, न बहन ने किया है, न मित्र-अमात्यों ने किया है, न परिवार तथा रिश्तेदारों ने किया है, न देवताओं ने किया है, न श्रमण-ब्राह्मणों ने किया है, यह पाप-कर्म तेरे ही द्वारा किया गया है, तू ही इसका फल भोगेगा'।

"तो भिक्षुओ, यमराज तृतीय देवदूत के बारे में प्रश्न करके, पूछ करके, बातचीत करके चुप हो जाता है।

"भिक्षुओ, उस आदमी को यमदूत पांच प्रकार के दंड से दंडित करते हैं – लोहे की तप्त कील हाथ में ठोकते हैं, लोहे की तप्त कील दूसरे हाथ में ठोकते हैं, लोहे की तप्त कील पांव में ठोकते हैं, लोहे की तप्त कील दूसरे पांव में ठोकते हैं, लोहे की तप्त कील छाती के बीच में ठोकते हैं। वह उससे दुःख-पूर्ण, तीव्र कष्टदायक, कटु वेदना का अनुभव करता है और तब तक नहीं मरता है जब तक उस पाप-कर्म का क्षय नहीं हो जाता।

"भिक्षुओ, उस आदमी को यमदूत लिटा कर कुल्हाड़ी से छीलते हैं। वह उससे दुःख-पूर्ण, तीव्र कष्ट-दायक, कटु वेदना का अनुभव करता है और तब तक नहीं मरता है जब तक उस पाप-कर्म का क्षय नहीं हो जाता।

"भिक्षुओ, उस आदमी को यमदूत पैर ऊपर सिर नीचे करके वसूले से छीलते हैं। वह उससे... हो जाता।

"भिक्षुओ, उस आदमी को यमदूत रथ में जोतकर जलती हुई, प्रज्वलित, प्रदीप्त भूमि पर चलाते भी हैं, हांकते भी हैं। वह उससे... हो जाता।

"भिक्षुओ, उस आदमी को यमदूत बड़े भारी, जलते हुए प्रज्वलित, प्रदीप्त, अंगारों के पर्वत पर चढ़ाते भी हैं, उतारते भी हैं। वह उससे... हो जाता।

"भिक्षुओ, उस आदमी को यमदूत पैर ऊपर सिर नीचे करके गर्म जलती हुई, प्रज्वलित, प्रदीप्त, तप्त लोहे की कड़ाही में डाल देते हैं। वह वहां खौलता

हुआ पकता है, वह वहां खौलता हुआ, पकता हुआ फेण के साथ एक बार ऊपर जाता है, एक बार नीचे जाता है, एक बार बीच में रहता है। वह उससे... हो जाता।

"भिक्षुओ, उस आदमी को यमदूत महानरक में डाल देते हैं। उस महानरक के –

"चतुक्कण्णो चतुद्वारो, विभत्तो भागसो मितो।
अयोपाकारपरियन्तो, अयसा पटिकुज्जितो॥

"तस्स अयोमया भूमि, जलिता तेजसा युता।
समन्ता योजनसतं, फरित्वा तिट्ठति सब्बदा"ति॥

["चार कोने हैं और चार द्वार हैं तथा वह हिस्सों में विभक्त है। उसके चारों ओर लोहे की दीवार है और वह लोहे से ढँका हुआ है। उसके चारों ओर सौ योजन लौह-मय भूमि हमेशा आग से प्रज्वलित रहती है।"]

"भिक्षुओ, पूर्व समय में यमराज के मन में यह हुआ – (मनुष्य-) लोक में जो पाप-कर्म करते हैं उन्हें इस प्रकार के बहुत से दंड मिलते हैं। अच्छा हो यदि मुझे मनुष्य होकर पैदा होना मिले, उस समय अर्हत सम्यक संबुद्ध तथागत का भी (मनुष्य-) लोक में जन्म हो, मैं उन भगवान का सत्संग करूं, वे भगवान मुझे धर्मोपदेश दें और मैं उन भगवान के उपदेश को जानूं।

"भिक्षुओ, मैं यह बात किसी दूसरे श्रमण या ब्राह्मण से सुनकर नहीं कहता, बल्कि, भिक्षुओ, जो कुछ मैंने स्वयं जाना है, स्वयं देखा है, स्वयं अनुभव किया है, वही कहता हूं।

"चोदिता देवदूतेहि, ये पमज्जन्ति माणवा।
ते दीघरत्तं सोचन्ति, हीनकायूपगा नरा॥

"ये च खो देवदूतेहि, सन्तो सप्पुरिसा इध।
चोदिता नप्पमज्जन्ति, अरियधम्मे कुदाचनं॥

"उपादाने भयं दिस्वा, जातिमरणसम्भवे।
अनुपादा विमुच्चन्ति, जातिमरणसङ्ख्ये॥

"ते अप्पमत्ता सुखिनो, दिट्ठधम्माभिनिब्बुता।
सब्बवेरभयातीता, सब्बदुक्खं उपच्चगु"न्ति॥

["देवदूतों (जरा, व्याधि, मरण) द्वारा शिक्षित किये जाने पर भी जो मनुष्य प्रमाद करते हैं, वे हीनावस्था को प्राप्त हो, दीर्घकाल तक संताप करते

हैं। जो सत्पुरुष देवदूतों द्वारा शिक्षित किये जाने पर आर्य-धर्म के विषय में कभी प्रमाद नहीं करते, वे जाति-मरण के कारण उपादान-स्कंधों को भय का कारण मान, उपादान-रहित हो जाति-मरण-क्षयस्वरूप निर्वाण को प्राप्त करते हैं। वे कल्याण को प्राप्त होते हैं। वे अप्रमत्त हो सुखी होते हैं। वे इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त कर सभी वैरों तथा भयों की सीमा लांघ जाते हैं। वे सभी दुःखों का अतिक्रमण कर लेते हैं।"]

७. चतुर्महाराज सुत्त

३७. "भिक्षुओ, पक्ष की अष्टमी के दिन चारों महाराजाओं के अमात्य-पार्षद इस लोक में यह देखने के लिए विचरते हैं कि क्या मनुष्य-लोक के अधिकांश लोग मातृ-सेवक हैं, पितृ-सेवक हैं, श्रमण-सेवक हैं, ब्राह्मण (क्षीणास्रव)-सेवक हैं, अपने-अपने कुल में बड़ों का आदर करने वाले हैं, उपोसथ रखने वाले हैं, जागरण करनेवाले हैं तथा पुण्य-कर्म करनेवाले हैं।

"भिक्षुओ, पक्ष की चतुर्दशी के दिन चारों महाराजाओं के पुत्र इस लोक में यह देखने के लिए विचरते हैं कि क्या मनुष्य-लोक के अधिकांश लोग मातृ-सेवक हैं, पितृसेवक हैं, श्रमण-सेवक हैं, ब्राह्मण (क्षीणास्रव)-सेवक हैं, अपने-अपने कुल में बड़ों का आदर करने वाले हैं, उपोसथ रखने वाले हैं, जागरण करने वाले हैं, तथा पुण्य-कर्म करने वाले हैं।

"भिक्षुओ, उसी प्रकार पूर्णिमा-उपोसथ के दिन चारों महाराजा स्वयं ही इस लोक में यह देखने के लिए विचरते हैं कि क्या मनुष्य-लोक के अधिकांश लोग मातृ-सेवक हैं, पितृ-सेवक हैं, श्रमण-सेवक हैं, ब्राह्मण (क्षीणास्रव)-सेवक हैं, अपने-अपने कुल में बड़ों का आदर करने वाले हैं, उपोसथ रखने वाले हैं, जागरण करने वाले हैं तथा पुण्य-कर्म करने वाले हैं।

"भिक्षुओ, यदि मनुष्य-लोक में ऐसे आदमी थोड़े होते हैं जो मातृ-सेवक हों, पितृ-सेवक हों, श्रमण-सेवक हों, ब्राह्मण-सेवक हों, अपने-अपने कुल में बड़ों का आदर करने वाले हों, उपोसथ रखने वाले हों, जागरण करने वाले हों तथा पुण्य-कर्म करने वाले हों, तो भिक्षुओ, वे चारों महाराजा त्रायस्त्रिंश लोक में सुधर्मा सभा में एकत्रित हुए देवताओं को कहते हैं – 'आयुष्मानो! ऐसे आदमी थोड़े हैं जो मातृ-सेवक हैं, पितृ-सेवक हैं, श्रमण-सेवक हैं, ब्राह्मण-सेवक हैं, अपने-अपने कुल में बड़ों का आदर करने वाले हैं, उपोसथ रखने वाले हैं, जागरण करने वाले हैं तथा पुण्य-कर्म करने वाले हैं।' भिक्षुओ, उससे त्रायस्त्रिंश देवता असंतुष्ट हो कहते हैं कि देवों की संख्या घटेगी और असुरों की संख्या बढ़ेगी।

"लेकिन भिक्षुओ, यदि मनुष्य-लोक में ऐसे आदमी अधिक होते हैं जो मातृ-सेवक हों, पितृ-सेवक हों, श्रमण-सेवक हों, ब्राह्मण-सेवक हों, अपने-अपने कुल में बड़ों का आदर करने वाले हों, उपोसथ रखने वाले हों, जागरण करने वाले हों तथा पुण्य-कर्म करने वाले हों तो भिक्षुओ, वे चारों महाराजा त्रायस्त्रिंश लोक में सुधर्मा सभा में एकत्रित हुए देवताओं को कहते हैं – 'आयुष्मानो! ऐसे आदमी बहुत हैं जो मातृ-सेवक हैं, पितृ-सेवक हैं, श्रमण-सेवक हैं, ब्राह्मण-सेवक हैं, अपने-अपने कुल में बड़ों का आदर करने वाले हैं, जागरण करने वाले हैं तथा पुण्य-कर्म करने वाले हैं।' भिक्षुओ, इससे त्रायस्त्रिंश देवता संतुष्ट हो कहते हैं – 'देव बढ़ते जायेंगे और असुर नष्ट होंगे।'

"भिक्षुओ, पूर्वकाल में त्रायस्त्रिंश देवताओं के देवेंद्र शक्र ने देवों को उद्‌बोधन करते हुए यह गाथा कही –

"चातुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।
पाटिहारियपक्खञ्च, अट्ठङ्गसुसमागतं।
उपोसथं उपवसेय्य, योपिस्स मादिसो नरो"ति॥

["जो भी नर मेरे सदृश होना चाहे वह पक्ष की चतुर्दशी, पूर्णिमा, अष्टमी तथा प्रातिहारिय-पक्ष (अतिरिक्त छुट्टी) को आठ शीलों वाला उपोसथ रखे।"]

"भिक्षुओ, देवेंद्र शक्र द्वारा कही गयी यह गाथा सुगीत नहीं है, दुर्गीत है, सुभाषित नहीं है, दुर्भाषित है। यह किसलिए? भिक्षुओ, देवेंद्र शक्र का राग, द्वेष, मोह क्षय नहीं हुआ है। भिक्षुओ, यदि कोई ऐसा भिक्षु जो अर्हत हो, क्षीणास्रव हो, श्रेष्ठ जीवन जी चुका हो, करणीय कर चुका हो, भार उतार चुका हो, सदर्थ प्राप्त कर चुका हो, भव-संयोजन क्षीण कर चुका हो, तथा सम्यक ज्ञान द्वारा विमुक्त हो गया हो, ऐसी गाथा कहे तो उसका यह कथन समुचित होगा –

"चातुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।
पाटिहारियपक्खञ्च, अट्ठङ्गसुसमागतं।
उपोसथं उपवसेय्य, योपिस्स मादिसो नरो"ति।

["जो भी नर मेरे सदृश होना चाहे वह पक्ष की चतुर्दशी, पूर्णिमा, अष्टमी तथा प्रातिहारिय-पक्ष (अतिरिक्त छुट्टी) को आठ शीलों वाला उपोसथ रखे।]

"यह किसलिए ?क्योंकि भिक्षुओ, वह भिक्षु राग, द्वेष, मोह रहित है।"

८. चतुर्महाराज सुत्त (द्वितीय)

३८. "भिक्षुओ, पूर्वकाल में त्रायस्त्रिंश देवताओं का नेतृत्व करने वाला देवेंद्र शक्र हुआ है। उस समय उसने यह गाथा कही –

'चातुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।
पाटिहारियपक्खञ्च, अट्ठङ्गसुसमागतं।
उपोसथं उपवसेय्य, योपिस्स मादिसो नरो'ति॥

["जो भी नर मेरे सदृश होना चाहे वह पक्ष की चतुर्दशी, पूर्णिमा, अष्टमी तथा प्रातिहारिय-पक्ष (अतिरिक्त छुट्टी) को आठ शीलों वाला उपोसथ रखे।"]

"भिक्षुओ, देवेंद्र शक्र द्वारा कही गयी यह गाथा सुगीत नहीं है, दुर्गीत है, सुभाषित नहीं है, दुर्भाषित है। यह किसलिए? क्योंकि भिक्षुओ, देवेंद्र शक्र जन्म, बुढ़ापा, मरण, शोक, क्रंदन (रोना-पीटना), दुःख, दौर्मनस्य, अशांति से मुक्त नहीं है। मैं कहता हूं कि वह दुःख से मुक्त नहीं है। भिक्षुओ, जो भिक्षु अर्हत हो, क्षीणास्रव हो, श्रेष्ठ जीवन जी चुका हो, करणीय कर चुका हो, भार उतार चुका हो, सदर्थ प्राप्त कर चुका हो, भव-संयोजन क्षीण कर चुका हो तथा सम्यक ज्ञान द्वारा विमुक्त हो गया हो, ऐसी गाथा कहे तो उसका यह कथन समुचित है –

'चातुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।
पाटिहारियपक्खञ्च, अट्ठङ्गसुसमागतं।
उपोसथं उपवसेय्य, योपिस्स मादिसो नरो'ति।

["जो भी नर मेरे सदृश होना चाहे वह पक्ष की चतुर्दशी, पूर्णिमा, अष्टमी तथा प्रातिहारिय-पक्ष (अतिरिक्त छुट्टी) को आठ शीलों वाला उपोसथ रखे।"]

"यह किसलिए? भिक्षुओ, वह भिक्षु, जन्म, बुढ़ापा, मरण, शोक, क्रंदन, दुःख, दौर्मनस्य, अशांति से मुक्त है। मैं कहता हूं कि वह दुःख से मुक्त है।"

९. सुकुमार सुत्त

३९. "भिक्षुओ, मैं सुकुमार था, परम सुकुमार, अत्यंत सुकुमार। भिक्षुओ, मेरे पिता के घर पुष्करणियां बनी थीं – एक में उत्पल (नील कमल) पुष्पित होते थे, एक में पद्म (लाल कमल) तथा एक में पुंडरीक (श्वेत कमल)। यह सभी मेरे ही लिए थे। भिक्षुओ, उस समय मैं वह चंदन धारण नहीं करता था जो काशी का न हो, भिक्षुओ, काशी की ही बनी मेरी पगड़ी होती थी, काशी का ही कंचुक, काशी का ही निवासन (=अंदर पहनने का वस्त्र), काशी

का ही उत्तरासंग। भिक्षुओ, रात-दिन मेरे सिर पर श्वेत-छत्र तना रहता था ताकि मुझे शीत न लगे, गरमी न लगे, धूल न लगे, तिनके न लगें तथा ओस न लगे। भिक्षुओ, उस समय मेरे तीन प्रासाद थे – एक हेमंत-ऋतु के लिए, एक ग्रीष्म-ऋतु के लिए तथा एक वर्षा-ऋतु के लिए। भिक्षुओ, मैं वर्षा के चारों महीने प्रासाद से नीचे नहीं उतरता था। उस समय मैं तूर्य-वादन करने वाली स्त्रियों से घिरा रहता था। भिक्षुओ, जैसे दूसरे घरों में दासों तथा नौकर-चाकरों को बिलङ्ग (एक पौधा जिससे खट्टी दलिया बनायी जाती थी) और कणजक (टूटे चावल का) दिया जाता था, वैसे ही भिक्षुओ, मेरे पिता के घर में दासों तथा नौकर-चाकरों को मांस तथा शाली (=धान) का भात दियाजाता था।

"भिक्षुओ, उस समय इस प्रकार का ऐश्वर्य भोगते हुए तथा इस प्रकार की सुकुमारता लिए हुए मेरे मन में यह हुआ –अज्ञानी सामान्य जन स्वयं जरा को प्राप्त होने वाला होकर, स्वयं जरा के अधीन होकर, किसी दूसरे बूढ़े को देखकर अपनी मर्यादा भूलकर कष्ट पाता है, लज्जित होता है तथा घृणा करता है बिना यह सोचे कि मैं भी तो बुढ़ापे को प्राप्त होने वाला हूं, बुढ़ापे के अधीन हूं। यदि मैं स्वयं बुढ़ापे को प्राप्त होने वाला होकर, स्वयं बुढ़ापे के अधीन होकर दूसरे बूढ़े को देखकर कष्ट पाऊं, लज्जित होऊं, तथा घृणा करूं, तो यह मेरे योग्य न होगा। भिक्षुओ, इस प्रकार विचार करते-करते मेरे मन में यौवन के प्रति जो यौवन-मद था वह सब जाता रहा।

"अज्ञानी सामान्य जन स्वयं व्याधि को प्राप्त होने वाला होकर, स्वयं व्याधि के अधीन होकर, किसी दूसरे व्याधि-ग्रस्त को देखकर अपनी मर्यादा भूलकर कष्ट पाता है, लज्जित होता है तथा घृणा करता है बिना यह सोचे कि मैं भी तो व्याधि को प्राप्त होने वाला हूं, व्याधि के अधीन हूं। यदि मैं स्वयं व्याधि को प्राप्त होने वाला होकर, स्वयं व्याधि के अधीन होकर, दूसरे व्याधि-ग्रस्त को देखकर कष्ट पाऊं, लज्जित होऊं तथा घृणा करूं, तो यह मेरे योग्य न होगा। भिक्षुओ, इस प्रकार विचार करते-करते मेरे मन में आरोग्य के प्रति जो आरोग्य-मद था वह सब जाता रहा।

"अज्ञानी सामान्य जन स्वयं मरण को प्राप्त होने वाला होकर, स्वयं मरण के अधीन होकर, किसी दूसरे मृत्यु-प्राप्त को देखकर, अपनी मर्यादा भूलकर कष्ट पाता है, लज्जित होता है तथा घृणा करता है बिना यह सोचे कि मैं भी तो मरण को प्राप्त होने वाला हूं, मरण के अधीन हूं। यदि मैं स्वयं मरण को प्राप्त होने वाला होकर, स्वयं मरण के अधीन होकर, किसी मृत्यु-प्राप्त को देखकर कष्ट पाऊं, लज्जित होऊं तथा घृणा करूं, तो यह मेरे योग्य न होगा। भिक्षुओ,

इस प्रकार विचार करते-करते मेरे मन में जीवन के प्रति जो जीवन-मद था वह सब जाता रहा।

"भिक्षुओ, तीन प्रकार के मद हैं। कौन-से तीन?

"यौवन-मद, आरोग्य-मद तथा जीवन-मद।

"भिक्षुओ, यौवन-मद में मत्त अज्ञानी सामान्य जन कायिक-दुष्कर्म करता है, वाचिक-दुष्कर्म करता है तथा मानसिक-दुष्कर्म करता है। वह शरीर, वाणी तथा मन से दुष्कर्म करके शरीर के छूटने पर, मरने के बाद, अपायगति, दुर्गति में पड़कर नरक में उत्पन्न होता है। भिक्षुओ, आरोग्य-मद से मत्त अज्ञानी सामान्य जन कायिक-दुष्कर्म करता है, वाचिक ... मानसिक ... करता है। वह शरीर, वाणी तथा मन से... नरक में उत्पन्न होता है। भिक्षुओ, जीवन-मद से मत्त अज्ञानी सामान्य जन कायिक-दुष्कर्म करता है... वह शरीर, वाणी तथा मन से... मरने के बाद... नरक में उत्पन्न होता है।

"भिक्षुओ, यौवन-मद से मत्त भिक्षु शिक्षा का त्याग कर पतित होता है। भिक्षुओ, आरोग्य-मद से मत्त भिक्षु शिक्षा का त्याग कर पतित होता है। भिक्षुओ, जीवन-मद से मत्त भिक्षु शिक्षा का त्याग कर पतित होता है।

"ब्याधिधम्मा जराधम्मा, अथो मरणधम्मिनो।
यथाधम्मा तथासन्ता, जिगुच्छन्ति पुथुज्जना॥

"अहञ्चे तं जिगुच्छेय्यं, एवंधम्मेसु पाणिसु।
न मेतं पटिरूपस्स, मम एवं विहारिनो॥

"सोहं एवं विहरन्तो, ञत्वा धम्मं निरूपधिं।
आरोग्ये योब्बनस्मिञ्च, जीवितस्मिञ्च ये मदा॥

"सब्बे मदे अभिभोस्मि, नेक्खम्मे दट्ठु खेमतं।
तस्स मे अहु उस्साहो, निब्बानं अभिपस्सतो॥

"नाहं भब्बो एतरहि, कामानि पटिसेवितुं।
अनिवत्ति भविस्सामि, ब्रह्मचरियपरायणो"ति॥

["सामान्य जन स्वयं जरा, व्याधि तथा मरण के अधीन होते हुए भी इस प्रकार के ही दूसरे जनों से घृणा करते हैं। यदि मैं जरा, व्याधि तथा मरण के अधीन प्राणियों से घृणा करूं तो यह मेरे अनुरूप नहीं होगा। उपधि-रहित धर्म (निर्वाण) को जानकर आरोग्य, यौवन तथा जीवनरूपी जो मद हैं उन सब को

मैंने अभिभूत (जीत) कर लिया हैं, नैष्कर्म्य में ही मैंने कल्याण देखा, निर्वाण को पूर्ण रूप से देखा तो मेरे मन में उत्साह है। मैं अब कामभोगों का सेवन करने के योग्य नहीं हूं। मैं अब ब्रह्मचर्य-परायण होकर पीछे न लौटने वाला होऊंगा।"]

१०. अधिपति सुत्त

४०. "भिक्षुओ, तीन आधिपत्य हैं। कौन-से तीन?

"स्वाधिपत्य, लोकाधिपत्य, धर्माधिपत्य।

"भिक्षुओ, स्वाधिपत्य क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, एक भिक्षु अरण्यवासी होकर, अथवा वृक्ष-तले रहने वाला होकर अथवा शून्यागार में रहने वाला होकर इस प्रकार विचार करता है –'न मैं चीवर के लिए घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ, न पिंडपात (=भोजन) के लिए, न शयनासन के लिए, न यह-वह कुछ होने के लिए। मैं जाति, जरा, मरण, शोक, क्रंदन, दुःख, दौर्मनस्य, अशांति में गिरा हुआ हूं –दुःख में गिरा हूं, दुःख में डूबा हुआ। संभव है कि इस दुःखस्कंध का संपूर्ण विनाश देख सकूं। मैं जिस प्रकार के कामभोगों को छोड़कर घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ, वैसे ही कामभोगों के पीछे पड़ूं, तो यह उससे भी बुरा होगा। यह मेरे अनुरूप नहीं है।'

"वह यह विचार करता है –'मेरा प्रयत्न बिना विचलित हुए क्रियाशील होगा, स्मृति निर्भ्रांत हो उपस्थित रहेगी, शरीर प्रश्रब्ध तथा उत्तेजना-रहित रहेगा और चित्त समाहित तथा एकाग्र रहेगा।' वह अपने-आप का ही आधिपत्य स्वीकार कर अकुशल का त्याग करता है, कुशल की भावना करता है, सदोष को छोड़ता है, निर्दोष की भावना करता है –अपने जीवन को शुद्ध बनाता है। भिक्षुओ, इसे स्वाधिपत्य कहते हैं।

"भिक्षुओ, लोकाधिपत्य क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, एक भिक्षु अरण्यवासी होकर, अथवा वृक्ष-तले रहने वाला होकर अथवा शून्यागार में रहने वाला होकर इस प्रकार विचार करता है –'न मैं चीवर के लिए घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ, न पिंडपात (=भोजन) के लिए, न शयनासन के लिए, न यह-वह कुछ होने के लिए। मैं जाति, जरा, मरण शोक, क्रंदन, दुःख, दौर्मनस्य, अशांति में गिरा हुआ हूं –दुःख में गिरा हुआ, दुःख में डूबा हुआ – अच्छा हो कि उस दुःख का संपूर्ण विनाश देख सकूं। इस प्रकार प्रव्रजित हुआ मैं यदि कामभोग संबंधी संकल्प-विकल्पों को मन में जगह दूं, व्यापाद (=क्रोध) संबंधी संकल्प-विकल्पों को मन में जगह दूं;

विहिंसा संबंधी संकल्प-विकल्पों को मन में जगह दूं; तो यह संसार बहुत बड़ा है! इस महान संसार में कुछ श्रमण-ब्राह्मण ऐसे हैं जो ऋद्धिमान हैं, दिव्य चक्षु वाले हैं, दूसरे के मन की बात जान लेने वाले हैं। वे दूर से भी देख लेते हैं, पास होने पर भी दिखाई नहीं देते हैं, वे चित्त से भी चित्त की बात जान लेते हैं। वे भी मेरे बारे में जान लेंगे – इस कुलपुत्र को देखो! यह श्रद्धापूर्वक घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ है, किंतु ऐसा होकर भी यह पापी अकुशल-धर्मों से युक्त हो विहार करता है। कुछ देवता भी हैं जो ऋद्धिमान हैं, दिव्यचक्षुधर हैं तथा पर-चित्त को जान लेने वाले हैं। वे भी मुझे इस प्रकार जान लेंगे – इस कुलपुत्र को देखो! यह श्रद्धापूर्वक घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ है, किंतु ऐसा होकर भी यह पापी अकुशल-धर्मों से युक्त हो विहार करता है।'

"वह यह विचार करता है – 'बिना विचलित हुए मेरा प्रयत्न क्रियाशील होगा, स्मृति निर्भ्रांत हो उपस्थित रहेगी, शरीर प्रश्रब्ध तथा उत्तेजना-रहित रहेगा और चित्त समाहित तथा एकाग्र रहेगा।' वह लोक का ही आधिपत्य स्वीकार कर अकुशल का त्याग करता है, कुशल की भावना करता है, सदोष को छोड़ता है, निर्दोष की भावना करता है – अपने जीवन को शुद्ध बनाता है। भिक्षुओ, इसे लोकाधिपत्य कहते हैं।

"भिक्षुओ, धर्माधिपत्य क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, एक भिक्षु अरण्यवासी होकर, अथवा वृक्ष-तले रहने वाला होकर अथवा शून्यागार में रहने वाला होकर इस प्रकार विचार करता है – 'न मैं चीवर के लिए घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ, न पिंडपात (=भोजन) के लिए, न शयनासन के लिए, न यह-वह कुछ होने के लिए। मैं जाति, जरा, मरण, शोक, क्रंदन, दुःख, दौर्मनस्य, अशांति में गिरा हुआ हूं – दुःख में गिरा हुआ, दुःख में डूबा हुआ। अच्छा हो कि इस दुःख का संपूर्ण विनाश देख सकूं। भगवान का धर्म सु-आख्यात है, सांदृष्टिक (इहलोक-संबंधी) है, अकालिक है, इसके बारे में कहा जा सकता है कि आओ और स्वयं देख लो, निर्वाण की ओर ले जाने वाला है, इसका विज्ञजन (ज्ञानीजन) स्वयं साक्षात कर सकते हैं। मेरे सब्रह्मचारी (साथी) हैं जो जानते हुए, देखते हुए विहार करते हैं। यदि मैं इस प्रकार के सु-आख्यात धर्म-विनय में प्रव्रजित होकर भी आलसी रहूं, प्रमादी रहूं तो यह मेरे अनुरूप नहीं होगा।'

"वह यह विचार करता है – 'बिना विचलित हुए मेरा प्रयत्न क्रियाशील होगा, स्मृति निर्भ्रांत हो उपस्थित रहेगी, शरीर प्रश्रब्ध तथा उत्तेजना-रहित रहेगा और चित्त समाहित तथा एकाग्र रहेगा।' वह धर्म का ही आधिपत्य

स्वीकार कर अकुशल का त्याग करता है, कुशल की भावना करता है, सदोष को छोड़ता है, निर्दोष की भावना करता है – अपने जीवन को शुद्ध बनाता है। भिक्षुओ, इसे धर्माधिपत्य कहते हैं। भिक्षुओ, ये तीन आधिपत्य हैं।"

"नत्थि लोके रहो नाम, पापकम्मं पकुब्बतो।
अत्ता ते पुरिस जानाति, सच्चं वा यदि वा मुसा॥

"कल्याणं वत भो सक्खि, अत्तानं अतिमञ्ञसि।
यो सन्तं अत्तनि पापं, अत्तानं परिगूहसि॥

"पस्सन्ति देवा च तथागता च, लोकस्मिं बालं विसमं चरन्तं।
तस्मा हि अत्ताधिपतेय्यको च, लोकाधिपो च निपको च झायी॥

"धम्माधिपो च अनुधम्मचारी, न हीयति सच्चपरक्कमो मुनि।
पसय्ह मारं अभिभुय्य अन्तकं, यो च फुसी जातिक्खयं पधानवा।
सो तादिसो लोकविदू सुमेधो, सब्बेसु धम्मेसु अतम्मयो मुनी"ति॥

["पाप-कर्म करने वाले के लिए लोक में छिपकर काम करने की जगह नहीं है। हे पुरुष! जो कुछ तू अच्छा या बुरा करता है, वह सत्य है या मृषा (मिथ्या) है, यह बात तेरा अपना-आप तो जानता ही है। हे मित्र! तु सुंदर है पर अपने आपका ही अवमान (तिरस्कार) करता है। तू अपने पाप को अपने से ही छिपाता है। लोक में मूर्ख आदमी जो अनुचित कर्म करता है उसे देवता और तथागत देखते हैं। इसलिए निपुण और ध्यानी, स्वाधिपत्य, लोकाधिपत्य, धर्माधिपत्य स्वीकार करने वाला, धर्मानुसार आचरण करने वाला यथार्थ-पराक्रमी मुनि कभी ह्रास को प्राप्त नहीं होता। वह प्रयत्नवान मुनि मार तथा अंतक (यमराज) को पराजित कर जाति-क्षय (निर्वाण) को स्पर्श करता है। इस प्रकार का लोक का जानकार बुद्धिमान मुनि सभी धर्मो (विषयों) की तृष्णा के पार हो जाता है।"]

* * * * *

५. चूळ वर्ग

१. सन्मुखभाव सुत्त

४१. "भिक्षुओ, इन तीन के होने से श्रद्धावान कुलपुत्र बहुत पुण्य कमाता है। किन तीन के?

"भिक्षुओ, श्रद्धा के होने से श्रद्धावान कुलपुत्र बहुत पुण्य कमाता है। भिक्षुओ, दातव्य (दान देने योग्य)-वस्तु के होने से श्रद्धावान कुलपुत्र बहुत पुण्य कमाता है। भिक्षुओ, दक्षिणा (दान) देने योग्य व्यक्ति के मिलने से श्रद्धावान कुलपुत्र बहुत पुण्य कमाता है।

"भिक्षुओ, इन तीन के होने से श्रद्धावान कुलपुत्र बहुत पुण्य कमाता है।"

२. त्रय स्थानिक सुत्त

४२. "भिक्षुओ, तीन बातों से, श्रद्धावान और प्रसन्नचित्त वाले की पहचान होती है। कौन-सी तीन से?

"वह शीलवानों (सदाचारियों) के दर्शन की इच्छा रखने वाला होता है, वह सद्धर्म सुनने की इच्छा रखने वाला होता है, वह मात्सर्य-रहित होकर गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है, उदारता से दान देने वाला[1], शुद्ध मन से उत्सर्गरत (त्यागकर प्रसन्न होने वाला), जिसके पास याचना की जा सकती है तथा दान का संविभाग करनेवाला। भिक्षुओ, इन तीन बातों से श्रद्धावान की, प्रसन्नचित्त की पहचान होती है।

"दस्सनकामो सीलवतं, सद्धम्मं सोतुमिच्छति।
विनये मच्छेरमलं, स वे सद्धोति वुच्चती"ति॥

["शीलवानों का दर्शन करना चाहता है, सद्धर्म सुनना चाहता है, मात्सर्य (कंजूसपन) को दूर करता है – वही श्रद्धावान कहलाता है।"]

३. ध्यातव्य सुत्त

४३. "भिक्षुओ, दूसरों को धर्मोपदेश देने वाले को ये तीन बातें स्पष्ट होनी चाहिए। कौन-सी तीन? जो धर्मोपदेश देता है वह शब्दार्थ तथा भावार्थ दोनों का जानकार होता है, जो धर्मोपदेश सुनता है वह शब्दार्थ तथा भावार्थ दोनों का जानकार होता है, जो धर्मोपदेश देते तथा धर्मोपदेश सुनते हैं वे शब्दार्थ तथा भावार्थ दोनों के जानकार होते हैं। भिक्षुओ, इन तीन बातों का ख्याल कर दूसरों को धर्मोपदेशदेना योग्य है।"

---

१ यहां पालि में **मुत्तचागो पयतपाणि, वोस्सग्गरतो याचयोगो दानसंविभागरतो** वाक्यखंड है। **'मुत्तचागो'** का अर्थ 'उदारतापूर्वक दान देने वाला' होता है; **'पयतपाणि'** का अर्थ 'परिशुद्ध हाथवाला अर्थात शुद्ध मन से दान देने वाला'। **'वोस्सग्गरत'** अर्थात 'उत्सर्गरत' (त्यागकर प्रसन्न होने वाला)। **'याचयोगो'** का अर्थ 'जिसके पास याचना की जा सकती है' अर्थात जो मुक्तहस्त है। **'दानसंविभागरतो'** का अर्थ 'उदारतापूर्वक धन का संविभाग करनेवाला, दान देने वाला'।

४. कथाफलसुत्त

४४. "भिक्षुओ, तीन के होने से (धर्म-) कथा लाभकारी होती है।[१] कौन-से तीन? जो धर्मोपदेश देता है वह शब्दार्थ तथा भावार्थ दोनों का जानकार होता है, जो धर्मोपदेश सुनता है वह शब्दार्थ तथा भावार्थ दोनों का जानकार होता है, जो धर्मोपदेश देते तथा धर्मोपदेश सुनते हैं वे शब्दार्थ तथा भावार्थ दोनों के जानकार होते हैं। भिक्षुओ, इन तीन के होने से कथा लाभकारी होती है।"

५. पंडित सुत्त

४५. "भिक्षुओ, इन तीन बातों को पंडितों ने प्रज्ञापित किया है, सत्पुरुषों ने प्रज्ञापित किया है। कौन-सी तीन को?

"भिक्षुओ, दान को पंडितों ने प्रज्ञापित किया है, सत्पुरुषों ने प्रज्ञापित किया है। भिक्षुओ, प्रव्रज्या को पंडितों ने प्रज्ञापित किया है, सत्पुरुषों ने प्रज्ञापित किया है। भिक्षुओ, माता-पिता की सेवा को पंडितों ने प्रज्ञापित किया है, सत्पुरुषों ने प्रज्ञापित किया है। भिक्षुओ, इन तीन बातों को पंडितों ने प्रज्ञापित किया है, सत्पुरुषों ने प्रज्ञापित किया है।

"सब्भि दानं उपञ्ञत्तं, अहिंसा संयमो दमो।
मातापितु उपट्ठानं, सन्तानं ब्रह्मचारिनं॥

"सतं एतानि ठानानि, यानि सेवेथ पण्डितो।
अरियो दस्सनसम्पन्नो, स लोकं भजते सिव"न्ति॥

["सत्पुरुषों ने दान, अहिंसा, संयम तथा दम की प्रशंसा की है और शांत, श्रेष्ठाचरण करने वाले तरुणों द्वारा की जाने वाली माता-पिता की सेवा की प्रशंसा की है। सत्पुरुषों द्वारा प्रशंसित बातों के अनुसार जो पंडित आचरण करता है वह श्रेष्ठ है, वह दर्शनीय है, वह कल्याण को प्राप्त होता है।"]

६. सीलवंत सुत्त

४६. "भिक्षुओ, जिस गांव अथवा निगम के आश्रय में शीलवान प्रव्रजित (भिक्षु) रहते हैं, वहां के रहने वाले तीन तरह से बहुत पुण्य कमाते हैं। कौन-से तीन तरह से?

---

१ यहां कहने का तात्पर्य है कि तीन के होने से कथा लाभकारी होती है। 'कथा शुरू करने की बात' और 'कथा लाभकारी होने की बात' में बड़ा अंतर है। अट्ठकथा में **'पवत्तिनीति अप्पटिहता निय्यानिका'** अर्थात 'बिना रुकावट के निर्वाण की ओर ले जाने वाली है'- यह कहा गया है।

"काया से, वाणी से तथा मन से।

"भिक्षुओ, जिस गांव अथवा निगम के आश्रय में सदाचारी प्रव्रजित (भिक्षु) रहते हैं, वहां के रहने वाले तीन तरह से बहुत पुण्य लाभ कमाते हैं।"

७. संस्कृत-लक्षण सुत्त

४७. "भिक्षुओ, संस्कृत-धर्मों के ये तीन लक्षण हैं। कौन-से तीन?

"उनकी उत्पत्ति (उत्पाद) दिखाई देती है, उनका विनाश (व्यय) दिखाई देता है, उनमें परिवर्तन दिखाई देता है। भिक्षुओ, संस्कृत-धर्मों के ये तीन लक्षण हैं।"

८. असंस्कृत-लक्षण सुत्त

४८. "भिक्षुओ, असंस्कृत-धर्मों के ये तीन लक्षण हैं। कौन-से तीन?

"न उनकी उत्पत्ति दिखाई देती है, न विनाश दिखाई देता है और न उनमें परिवर्तन दिखाई देता है। भिक्षुओ, असंस्कृत-धर्मों के ये तीन लक्षण हैं।"

९. पर्वतराज सुत्त

४९. "भिक्षुओ, पर्वतराज हिमालय के आश्रित रहते हुए महाशाल वृक्ष तीन तरह से वृद्धि को प्राप्त होते हैं। कौन-से तीन तरह से?

"शाखायें तथा पत्ते बढ़ते हैं, छाल तथा पपड़ी बढ़ती है, फल्गुसार में वृद्धि होती है। भिक्षुओ, पर्वतराज हिमालय के आश्रित रहते हुए महाशाल वृक्ष तीन तरह से वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, श्रद्धावान कुलपति के आश्रय में रहने वाले जनों में तीन बातों की वृद्धि होती है। किन तीन बातों की?

"श्रद्धा की वृद्धि होती है, शील की वृद्धि होती है, तथा प्रज्ञा की वृद्धि होती है। भिक्षुओ, श्रद्धावान कुलपति के आश्रय में रहने वाले जनों में तीन बातों की वृद्धि होती है।

"यथापि पब्बतो सेलो, अरञ्ञस्मिं ब्रहावने।
तं रुक्खा उपनिस्साय, वड्ढन्ते ते वनप्पती॥

"तथेव सीलसम्पन्नं, सद्धं कुलपतिं इध।
उपनिस्साय वड्ढन्ति, पुत्तदारा च बन्धवा।
अमच्चा ञातिसङ्घा च, ये चस्स अनुजीविनो॥

"त्यास्स सीलवतो सीलं, चागं सुचरितानि च।
पस्समानानुकुब्बन्ति, अत्तमत्थं विचक्खणा॥

"इध धम्मं चरित्वान, मग्गं सुगतिगामिनं।
नन्दिनो देवलोकस्मिं, मोदन्ति कामकामिनो"ति॥

["जिस प्रकार घनघोर जंगल में शैल-पर्वत के आश्रय में रहने वाले वृक्ष वृद्धि को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार यहां श्रद्धावान, शीलवान कुलपति के आश्रय में रहने वाले पुत्र-कलत्र, बंधु, अमात्य, जातिसंघ तथा अन्य आश्रित-जन वृद्धि को प्राप्त होते हैं –बुद्धिमान जन उस सदाचारी के शील तथा त्याग का अनुकरण करते हैं। वे सुगतगामियों के मार्ग धर्म के अनुसार आचरण करके इच्छाओं की पूर्ति होने से देव-लोक में प्रसन्न हो मोद को प्राप्त होते हैं।"]

१०. कठोर प्रयत्न करणीय सुत्त

५०. "भिक्षुओ, तीन अवसरों पर कठोर प्रयत्न करना चाहिए। कौन-से तीन?

"जो अनुत्पन्न पाप हैं, अकुशल-धर्म हैं उनके उत्पन्न न होने देने के लिए कठोर प्रयत्न करना चाहिए; जो अनुत्पन्न कुशल-धर्म हैं उनके उत्पन्न करने के लिए कठोर प्रयत्न करना चाहिए, जो दुःख-पूर्ण, तीव्र, प्रखर, कटु, प्रतिकूल, बुरी, प्राणहर शारीरिक वेदनायें हों उन्हें सहन करने का कठोर प्रयत्न करना चाहिए।

"भिक्षुओ, इन तीन अवसरों पर कठोर प्रयत्न करना चाहिए।

"भिक्षुओ, जब भिक्षु, जो अनुत्पन्न पाप हैं, अकुशल-धर्म हैं उनके उत्पन्न न होने देने के लिए कठोर प्रयत्न करता है, जो अनुत्पन्न कुशल धर्म हैं उनके उत्पन्न करने के लिए कठोर प्रयत्न करता है, जो दुःखपूर्ण, तीव्र, प्रखर, कटु, प्रतिकूल, बुरी, प्राणहर शारीरिक वेदनायें होती हैं; उन्हें सहन करने का कठोर प्रयत्न करता है, तो भिक्षुओ, भिक्षु सम्यक प्रकार से दुःख का अंत करने के लिए स्मृतिमान, निपुण प्रयत्नवान कहलाता है।"

११. महाचोर सुत्त

५१. "भिक्षुओ, तीन बातों से समन्वागत (युक्त) महाचोर सेंध भी लगाता है, लूट-मार भी करता है, डाका भी डालता है, रास्ते में भी लूटता (बटमारी करता) है। कौन-सी तीन?

"भिक्षुओ, इस संबंध में महाचोर विषम-आश्रित होता है, गहन-आश्रित होता है तथा बलवान-आश्रित होता है।

"भिक्षुओ, महाचोर विषम-आश्रित कैसे होता है? यहां, भिक्षुओ, महाचोर नदियों के दुर्गम प्रदेश में या दुर्लंघ्य पर्वतों के प्रदेश में रहता है। इस प्रकार भिक्षुओ, महाचोर विषम-आश्रित होता है।

"भिक्षुओ, महाचोर गहन-आश्रित कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, महाचोर घास के गहन जंगल में छिपा होता है, वृक्षों के गहन जंगल में छिपा होता है, वन में छिपा होता है, महावन में छिपा होता है। इस प्रकार भिक्षुओ, महाचोर गहन-आश्रित होता है।

"भिक्षुओ, महाचोर बलवान-आश्रित कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, महाचोर राजाओं या राजाओं के महामात्यों का आश्रित होता है। उसके मन में होता है कि यदि मुझे कोई कुछ कहेगा तो ये राजा या राजाओं के महामात्य मेरे बचाव में कुछ कहेंगे।यदि उसे कोई कुछ कहता है तो ये राजा वा राजाओं के महामात्य उसके बचाव में कुछ कहते हैं। इस प्रकार भिक्षुओ, महाचोर बलवान-आश्रित होता है। भिक्षुओ, इन तीन बातों से समन्वागत (युक्त) महाचोर सेंध भी लगाता है, लूट-मार भी करता है, डाका भी डालता है, रास्ते में भी लूटता है।

"इसी प्रकार, भिक्षुओ, तीन बातों से समन्वागत पापी भिक्षु मूल समेत उखाड़ दिये के समान सत्त्वहीन हो विचरता है (अर्थात मिथ्या-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), अवगुणी होता है, सदोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित होता है तथा बहुत अपुण्य कमाता है। कौन-सी तीन?

"यहां, भिक्षुओ, पापी भिक्षु विषम-आश्रित होता है, गहन-आश्रित होता है तथा बलवान-आश्रित होता है।

"भिक्षुओ, पापी भिक्षु विषम-आश्रित कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, पापी भिक्षु विषम कायिक-कर्म से समन्वागत होता है, विषम वाचिक-कर्म से समन्वागत होता है, विषम मानसिक-कर्म से समन्वागत होता है। इस प्रकार भिक्षुओ, पपी भिक्षु विषम-आश्रित होता है।

"भिक्षुओ, पापी-भिक्षु गहन-आश्रित कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, पापी भिक्षु मिथ्या-दृष्टि वाला होता है, अतिवादी दृष्टि से समन्वागत। इस प्रकार भिक्षुओ, पपी भिक्षु गहन-आश्रित होता है।

"भिक्षुओ, पापी भिक्षु बलवान-आश्रित कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, पापी भिक्षु राजाओं या राजाओं के महामात्यों का आश्रित होता है। उसके मन में होता है कि यदि मुझे कोई कुछ कहेगा तो ये राजा या राजाओं के महामात्य मेरा बचाव करेंगे।यदि उसे कोई कुछ कहता है तो ये राजा या राजाओं के महामात्य उसका बचाव करते हैं। इस प्रकार भिक्षुओ, पापी भिक्षु बलवान-आश्रित होता है। इस प्रकार भिक्षुओ, इन तीन बातों से समन्वागत पापी भिक्षु अपने को स्वयं चोट पहुँचाता है, सदोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित होता है तथा बहुत अपुण्य कमाता है।"

* * * * *

विषय-सूची

त्रिक -निपात (६-१०)

२. द्वितीय पंचाशतक

२. द्वितीय पंचाशतक

(६) १. ब्राह्मण वर्ग

१. दो ब्राह्मण सुत्त (प्रथम)

५२. एक समय दो ब्राह्मण –जो जरा-जीर्ण थे, वृद्ध थे, बूढ़े थे, जिनकी आयु बहुत थी, जो वयः-प्राप्त थे, जो एक सौ बीस वर्ष के थे – भगवान के पास गये। जाकर भगवान को...एक ओर बैठे उन ब्राह्मणों ने भगवान को यह कहा –

"हे गौतम! हम ब्राह्मण हैं, जरा-जीर्ण हैं, वृद्ध हैं, बूढ़े हैं, हमारी आयु बहुत है, हम वयः-प्राप्त हैं, हम एक सौ बीस वर्ष के हैं। तो भी हमने शुभ-कर्म नहीं किये हैं। कुशल-कर्म नहीं किये हैं जो हम भयभीतों की शरण हो । आप गौतम हमें उपदेश दें। आप गौतम हमारा अनुशासन करें जो दीर्घ काल तक हमारे हित और सुख के लिए हो।

"हे ब्राह्मणो! तुम सचमुच जरा-जीर्ण हो, वृद्ध हो, बूढ़े हो, तुम्हारी आयु बहुत है, तुम वयः-प्राप्त हो, तुम एक सौ बीस वर्ष के हो। तो भी तुमने शुभ-कर्म नहीं किये हैं। कुशल-कर्म नहीं किये हैं जो हम भयभीतों की शरण हो सके। हे ब्राह्मणो! यह संसार जरा, व्याधि तथा मरण द्वारा (खींचकर) ले जाया जाता है। इस प्रकार जरा, व्याधि तथा मरण द्वारा खींचकर ले जाये जाने वाले का संसार में जो यह शरीर, वाणी तथा मन का संयम है वही उस परलोक-प्राप्त व्यक्ति का त्राण है, वही आश्रय-स्थान है, वही द्वीप है, वही शरण-स्थान है, वही सहारा है।"

"उपनीयति जीवितमप्पमायु, जरूपनीतस्स न सन्ति ताणा।
एतं भयं मरणे पेक्खमानो, पुञ्ञानि कयिराथ सुखावहानि॥

"योध कायेन संयमो, वाचाय उद चेतसा।
तं तस्स पेतस्स सुखाय होति, यं जीवमानो पकरोति पुञ्ञ"न्ति॥

["जीवन अल्प है। बुढ़ापे द्वारा (खींचकर) ले जाये जाने वाले के लिए कोई शरण स्थान नहीं है। मृत्यु में भय देखकर मनुष्य को चाहिए कि वह सुखदायी पुण्य-कर्म करे।

जो यहां शरीर, वाणी तथा मन का संयम है, तथा जीते-जी वह जो पुण्य कर्म करता है वह उस व्यक्ति के लिए परलोक प्राप्त होने पर सुख का कारण होता है।"]

२. दो ब्राह्मण सुत्त (द्वितीय)

५३. एक समय दो ब्राह्मण –जो जरा-जीर्ण थे, वृद्ध थे, बूढ़े थे, जिन की आयु बहुत थी, जो वयः-प्राप्त थे, जो एक सौ बीस वर्ष के थे – भगवान के पास गये। जाकर भगवान को...एक ओर बैठे उन ब्राह्मणों ने भगवान को यह कहा –

"हे गौतम! हम ब्राह्मण हैं, जरा-जीर्ण हैं, वृद्ध हैं, बूढ़े हैं, हमारी आयु बहुत है, हम वयः-प्राप्त हैं, हम एक सौ बीस वर्ष के हैं। तो भी हमने शुभ-कर्म नहीं किये हैं। कुशल-कर्म नहीं किये हैं जो हम भयभीतों की शरण हो। आप गौतम हमें उपदेश दें। आप गौतम हमारा अनुशासन करें जो दीर्घकाल तक हमारे हित और सुख के लिए हो।

"हे ब्राह्मणो! तुम सचमुच जरा-जीर्ण हो, वृद्ध हो, बूढ़े हो, तुम्हारी आयु बहुत है, तुम वयः-प्राप्त हो, तुम एक सौ बीस वर्ष के हो। तो भी तुमने शुभ-कर्म नहीं किये हैं। कुशल-कर्म नहीं किये हैं जो हम भयभीतों की शरण हो। हे ब्राह्मणो! यह संसार जरा, व्याधि, मरण से जल रहा है। इस प्रकार जरा, व्याधि तथा मरण से आदीप्त (जलते) संसार में जो यह शरीर, वाणी, तथा मन का संयम है वही उस परलोक-प्राप्त व्यक्ति का त्राण है, वही आश्रय-स्थान है, वही द्वीप है, वही शरण-स्थान है, वही सहारा है।"

"आदित्तस्मिं अगारस्मिं, यं नीहरति भाजनं।
तं तस्स होति अत्थाय, नो च यं तत्थ डय्हति॥

"एवं आदित्तो खो लोको, जराय मरणेन च।
नीहरेथेव दानेन, दिन्नं होति सुनीहतं॥

“योध कायेन संयमो, वाचाय उद चेतसा।
तं तस्स पेतस्स सुखाय होति,
यं जीवमानो पकरोति पुञ्ञ”न्ति॥

[“घर में आग लगी हो तो जो सामान उस आग में से बचा लिया जाता है, वही काम आता है। जो सामान आग में जल जाता है, वह काम नहीं आता। इसी प्रकार यह संसार जरा तथा मरण से जल रहा है। इसमें से दान देकर जो निकाला जा सके, निकाल ले। जो दिया उतना ही अच्छी तरह बचाया गया है।

जो यहां शरीर, वाणी तथा मन का संयम है, तथा जीते-जी वह जो पुण्य कर्म करता है वह उस व्यक्ति के लिए परलोक प्राप्त होने पर सुख का कारण होता है।”]

३. अन्य ब्राह्मण सुत्त

५४. एक समय एक ब्राह्मण भगवान के पास गया। जाकर भगवान के साथ... एक ओर बैठे हुए उस ब्राह्मण ने भगवान को यह कहा –

“हे गौतम! ‘धर्म सांदृष्टिक है, धर्म सांदृष्टिक है’ (जीवन में देखा जानेवाला) सांदृष्टिक है ऐसा कहा जाता है। कहां तक धर्म सांदृष्टिक है, तत्कालफलदायक है, (अकालिक) आओ और देखो कहलाने योग्य है, निर्वाण तक ले जाने वाला है, प्रत्येक विज्ञ द्वारा साक्षात करने योग्य है।

“हे ब्राह्मण! जिसका चित्त, राग से अभिभूत है, राग के वशीभूत है, वह अपने अहित की भी बात सोचता है, दूसरे के अहित की भी बात सोचता है, दोनों के अहित की भी बात सोचता है तथा चैतसिक दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव करता है।

“राग के प्रहीण हो जाने पर न वह अपने अहित की बात सोचता है, न दूसरे के अहित की बात सोचता है, न दोनों के अहित की बात सोचता है तथा न चैतसिक दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव करता है।

“हे ब्राह्मण! जिसका चित्त राग से अभिभूत है... वह कायिक-दुष्कर्म करता है,... वाचिक ... मानसिक-दुष्कर्म करता है। राग के प्रहीण होने पर न कायिक-दुष्कर्म करता है... न वाचिक ... न मानसिक ...। हे ब्राह्मण!... जिसका... अपने हित को यथाभूत नहीं जानता है... दूसरे के ... दोनों के हित को...। राग के प्रहीण हो जाने पर अपना हित यथाभूत जानता है... परहित... दोनों का हित यथाभूत जानता है। हे ब्राह्मण! इस प्रकार भी धर्म सांदृष्टिक होता है...।

“हे ब्राह्मण! जिसका चित्त, द्वेष से अभिभूत है, द्वेष के वशीभूत है, वह अपने अहित की भी बात सोचता है, दूसरे के अहित की भी बात सोचता है, दोनों के अहित की भी बात सोचता है तथा चैतसिक दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव करता है। द्वेष का नाश हो जाने पर न वह अपने अहित की बात सोचता है, न दूसरे के अहित की बात सोचता है, न दोनों के अहित की बात सोचता है तथा न चैतसिक दु;ख-दौर्मनस्य का अनुभव करता है…। हे ब्राह्मण! इस प्रकार भी धर्म सांदृष्टिक होता है…।

“हे ब्राह्मण! जिसका चित्त, मोह से अभिभूत है, मोह के वशीभूत है, वह अपने अहित की भी बात सोचता है, दूसरे के अहित की भी बात सोचता है, दोनों के अहित की भी बात सोचता है तथा चैतसिक दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव करता है। मोह का नाश हो जाने पर न वह अपने अहित की बात सोचता है, न दूसरे के अहित की बात सोचता है, न दोनों के अहित की बात सोचता है तथा न चैतसिक दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव करता है…। हे ब्राह्मण! इस प्रकार भी धर्म सांदृष्टिक होता है…”।

“हे गौतम! सुंदर है… आप गौतम आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।”

४. परिव्राजक सुत्त

५५. एक समय एक ब्राह्मण परिव्राजक भगवान के पास गया… एक ओर बैठे हुए ब्राह्मण परिव्राजक ने भगवान को यह कहा –“हे गौतम! ‘धर्म सांदृष्टिक है, धर्म सांदृष्टिक है’ –ऐसा कहा जाता है। कौन-सा गुण होने से धर्म सांदृष्टिक होता है, अकालिक ,एहिपस्सिक ,ओपनयिक तथा प्रत्येक विज्ञ द्वारा साक्षात किया जा सकने वाला?”

“हे ब्राह्मण! जिसका चित्त राग से… वह अपने अहित की बात… (पूर्वानुसार) अनुभव करता है। राग का नाश हो जाने पर… अनुभव करता है। राग का नाश हो जाने पर… अनुभव करता है।

“हे ब्राह्मण! जिसका चित्त राग से… कायिक-दुष्कर्म करता है, वाचिक … मानसिक-दुष्कर्म करता है। राग का नाश होने पर न कायिक-दुष्कर्म करता है, न वाचिक … न मानसिक-दुष्कर्म करता है।

“हे ब्राह्मण! जिसका चित्त राग से… वह यथाभूत अपना हित भी नहीं जानता है, यथाभूत दूसरे का हित भी नहीं जानता है, यथाभूत दोनों का भी हित नहीं जानता है। राग का प्रहाण हो जाने पर यथाभूत अपना भी हित

जानता है... दूसरे का... यथाभूत दोनों का भी हित जानता है। इस प्रकार भी ब्राह्मण! धर्म सांदृष्टिक होता है...।

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त द्वेष से...

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त मोह से मूढ़ है... वह अपने अहित की बात... अनुभव करता है। मोह का प्रहाण हो जाने पर... अनुभव करता है।

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त मोह से मूढ़ है... कायिक-दुष्कर्म करता है, वाचिक... मानसिक-दुष्कर्म करता है। मोह का प्रहाण होने पर न कायिक-दुष्कर्म करता है, न वाचिक... न मानसिक-दुष्कर्म करता है।

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त मोह से मूढ़ है... वह यथाभूत अपना हित भी नहीं जानता है,... दूसरे का... दोनों का भी यथाभूत हित नहीं जानता है। मोह का प्रहाण हो जाने पर यथाभूत अपना हित भी जानता है,... दूसरे का... दोनों का...। हे ब्राह्मण! इस प्रकार भी धर्मसांदृष्टिक होता है"।

"हे गौतम! सुंदर है... आप गौतम आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

५. निर्वृत सुत्त

५६. एक समय जाणुस्सोणि ब्राह्मण भगवान के पास गया... एक ओर बैठे जाणुस्सोणि ब्राह्मण ने भगवान को यह कहा –

"हे गौतम! 'निर्वाण सांदृष्टिक है, निर्वाण सांदृष्टिक है' – ऐसा कहा जाता है। कौन-सा गुण होने से निर्वाण 'सांदृष्टिक' होता है, अकालिक, एहिपस्सिक, ओपनयिक तथा प्रत्येक विज्ञ द्वारा साक्षात किया जा सकने वाला?

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त राग से... वह अपने अहित की बात... दोनों के अहित की बात... अनुभव करता है। राग का प्रहाण हो जाने पर... न वह अपने अहित... न दोनों के अहित की बात... अनुभव करता है। हे ब्राह्मण! इस प्रकार भी निर्वाण 'सांदृष्टिक' होता है...

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त द्वेष से दूषित है...

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त मोह से मूढ़ है... वह अपने अहित की बात... अनुभव करता है। मोह का प्रहाण हो जाने पर... न वह अपने अहित की बात... न दोनों के अहित की बात... अनुभव करता है। हे ब्राह्मण! जो इस

संपूर्ण रागक्षय का अनुभव करना है संपूर्ण द्वेष क्षय का संपूर्ण मोहक्षय का अनुभव करना है इस प्रकार भी निर्वाण 'सांदृष्टिक' होता है, अकालिक, एहिपस्सिक, ओपनयिक तथा प्रत्येक विज्ञ द्वारा साक्षात किया जा सकने वाला होता है"।

"हे गौतम! सुंदर है... आप गौतम आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

६. पलोक (क्षय) सुत्त

५७. एक समय एक महाशाल ब्राह्मण भगवान के पास गया।... एक ओर बैठे हुए उस महाशाल ब्राह्मण ने भगवान को यह कहा –

"हे गौतम! मैंने बड़े-बूढ़े आचार्य-प्राचार्य, पूर्व के ब्राह्मणों से सुना है कि पहले यह संसार इतना अधिक बसा हुआ था, मानों अवीचि नरक हो; ग्राम, निगम तथा राजधानियों में मनुष्यों की इतनी घनी आबादी थी कि मुर्गा आसानी से एक गांव से दूसरे गांव जा सकता था।

"हे गौतम! इसका क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है जिससे अब मनुष्यों का क्षय हो गया है, कमी दिखाई दे रही है, ग्राम अग्राम हो गये हैं, निगम अनिगम हो गये हैं, नगर अनगर हो गये हैं तथा जनपद अजनपद?"

"ब्राह्मण! अब मनुष्य अधर्म-रागानुरक्त हैं, विषम-लोभ के वशीभूत हैं, मिथ्याधर्म से समन्वागत हैं। वे अधर्म-रागानुरक्त होने के कारण, विषम-लोभ के वशीभूत होने के कारण, मिथ्या-धर्म से समन्वागत होने के कारण, तेज शस्त्र लेकर परस्पर एक दूसरे की जान लेते हैं। इससे बहुत मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होते हैं। हे ब्राह्मण! यह भी एक कारण है, यह भी एक प्रत्यय है जिससे अब मनुष्यों का क्षय हो गया है, कमी दिखाई दे रही है, ग्राम अग्राम हो गये हैं, निगम अनिगम हो गये हैं, नगर अनगर हो गये हैं तथा जनपद अजनपद।

"फिर ब्राह्मण! अब मनुष्य अधर्म-रागानुरक्त हैं, विषम-लोभ के वशीभूत हैं, मिथ्याधर्म से समन्वागत हैं। उनके अधर्म-रागानुरक्त होने के कारण, विषम-लोभ के वशीभूत होने के कारण, मिथ्या-धर्म से समन्वागत होने के कारण अच्छी वर्षा नहीं होती। इससे दुर्भिक्ष होता है, फसल खराब हो जाती है, उसमें फफूंदी का रोग लग जाता है, डंठल रह जाते हैं। इससे बहुत मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होते हैं। हे ब्राह्मण, यह भी एक कारण है, यह भी एक प्रत्यय है जिससे अब मनुष्यों का क्षय हो गया है, कमी दिखाई दे रही है, ग्राम अग्राम हो गये हैं, निगम अनिगम हो गये हैं, नगर अनगर हो गये हैं, तथा जनपद अजनपद।

“फिर ब्राह्मण! अब मनुष्य अधर्म-रागानुरक्त हैं, विषम-लोभ के वशीभूत हैं, मिथ्या धर्म के अनुयायी हैं। उनके अधर्म-रागानुरक्त होने के कारण, विषम-लोभ के वशीभूत होने के कारण, मिथ्या-धर्म से समन्वागत होने के कारण यक्ष अधिपति भयानक यक्षों को मनुष्य-पथ पर छोड़ देते हैं। इससे बहुत मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होते हैं। हे ब्राह्मण! यह भी एक कारण है, यह भी एक प्रत्यय है जिससे अब मनुष्यों का क्षय हो गया है, कमी दिखाई देती है, ग्राम अग्राम हो गये हैं, निगम अनिगम हो गये हैं, नगर अनगर हो गये हैं तथा जनपद अजनपद।”

“हे गौतम! सुंदर है... आप गौतम आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।”

७. वच्छगोत्त सुत्त

५८. एक समय वच्छगोत्त परिव्राजक भगवान के पास गया। ...एक ओर बैठे वच्छगोत्त परिव्राजक ने भगवान से कहा –“हे गौतम! मैंने यह सुना है कि श्रमण गौतम ऐसा कहता है कि मुझे ही दान देना चाहिए, अन्यों को नहीं; मेरे ही श्रावकों (शिष्यों) को दान देना चाहिए, अन्यों को नहीं; मुझे ही देने से महान फल होता है, अन्यों को देने से महान फल नहीं होता, मेरे ही श्रावकों को देने से महान फल होता है, अन्यों को देने से नहीं। हे गौतम! जो ऐसा कहता है कि श्रमण गौतम ऐसा कहता है कि ‘मुझे ही दान... देने से नहीं,’ क्या वे आप गौतम के कथनानुसार कहने वाले हैं, क्या वे आप गौतम पर मिथ्या आरोप तो नहीं लगाते? क्या वे आपके धर्म की सही-सही व्याख्या करते हैं? इससे आपके सहधर्मी और आपके वाद को मानने वाले आलोच्य (निंदा के पात्र) तो नहीं हो जाते? हम आप गौतम पर मिथ्या आरोपण नहीं करना चाहते।”

“हे वत्स! जो यह कहते हैं कि श्रमण गौतम ऐसा कहता है कि मुझे ही दान... देने से नहीं, वे मेरे कथनानुसार कहने वाले नहीं हैं, वे मुझ पर मिथ्या आरोप लगाते हैं। हे वत्स! जो किसी दूसरे को दान देने से रोकता है वह तीन तरह से बाधक होता है, तीन की हानि करनेवाला होता है। कौन-से तीन?

“दाता के पुण्य-लाभ में बाधक होता है, प्रतिग्राहक की लाभ-प्राप्ति में बाधक होता है और सबसे पहले अपनी ही हानि, बहुत हानि करनेवाला होता है। वत्स! जो किसी दूसरे को दान देने से रोकता है वह इन तीन तरह से बाधक होता है, तीन की हानि करने वाला होता है। वत्स! मेरा तो यह कहना है कि गूथ-कूप वा गंदे गढ़े में भी जो कीड़े रहते हैं उनके लिए भी यदि कोई थाली का

धोवन या प्याले का धोवन फेंकता है कि इससे उसमें रहने वाले कीड़े जीते रहें, उससे भी, हे वत्स! मैं पुण्य की प्राप्ति कहता हूं। मनुष्यों को दान देने की बात का तो कहना ही क्या!

"किंतु, वत्स! मैं शीलवान को दान देने का महान फल कहता हूं, वैसा दुःशील को देने का नहीं। शीलवान पांच बातों से प्रहीण[१] (रहित) होता है और वह पांच बातों से समन्वागत (युक्त) होता है।

"किन पंच बातों से वे प्रहीण होते हैं?

"उसका कामच्छंद प्रहीण होता है, व्यापाद (क्रोध) प्रहीण होता है, थिनमिद्ध (आलस्य) प्रहीण होता है, उद्धच्चकुक्कुच्च (उद्धतपन तथा अनुताप) प्रहीण होता है, विचिकित्सा (संदेह) प्रहीण होता है। ये पांच बातें प्रहीण होती हैं।

"किन पंच बातों से वह समन्वागत होता है?

"अशैक्ष शील-स्कंध से समन्वागत होता है, अशैक्ष समाधि-स्कंध से समन्वागत होता है, अशैक्ष्य प्रज्ञा-स्कंध से समन्वागत होता है, अशैक्ष्य विमुक्ति-स्कंध से समन्वागत होता है, अशैक्ष्य विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-स्कंध से समन्वागत होता है। इन पांच बातों से वह समन्वागत होता है।

"ऊपर की पांच बातों से प्रहीण तथा इन पांच बातों से समन्वागत को जो दान दिया जाता है, उसका महान फल होता है – यह मैं कहता हूं।"

"इति कण्हासु सेतासु, रोहिणीसु हरीसु वा।
कम्मासासु सरूपासु, गोसु पारेवतासु वा॥

"यासु कासुचि एतासु, दन्तो जायति पुङ्गवो।
धोरय्हो बलसम्पन्नो, कल्याणजवनिक्कमो।
तमेव भारे युञ्जन्ति, नास्स वण्णं परिक्खरे॥

"एवमेवं मनुस्सेसु, यस्मिं कस्मिञ्चि जातिये।
खत्तिये ब्राह्मणे वेस्से, सुद्दे चण्डालपुक्कुसे॥

"यासु कासुचि एतासु, दन्तो जायति सुब्बतो।
धम्मट्ठो सीलसम्पन्नो, सच्चवादी हिरीमनो॥

"पहीनजातिमरणो, ब्रह्मचरियस्स केवली।
पन्नभारो विसंयुत्तो, कतकिच्चो अनासवो॥

१ यहां पालि में **'पहीन'** शब्द है। इसका अर्थ 'प्रहीण', 'रहित', 'त्यक्त', 'नष्ट' होता है।

“पारगू सब्बधम्मानं, अनुपादाय निब्बुतो।
तस्मिंयेव विरजे खेत्ते, विपुला होति दक्खिणा॥

“बाला च अविजानन्ता, दुम्मेधा अस्सुताविनो।
बहिद्धा देन्ति दानानि, न हि सन्ते उपासरे॥

“ये च सन्ते उपासन्ति, सप्पञ्ञे धीरसम्मते।
सद्धा च नेसं सुगते, मूलजाता पतिट्ठिता॥

“देवलोकञ्च ते यन्ति, कुले वा इध जायरे।
अनुपुब्बेन निब्बानं, अधिगच्छन्ति पण्डिता”ति॥

[“चाहे कृष्णवर्ण की हों, चाहे श्वेत-वर्ण की हों, चाहे लोहितवर्ण की हों, चाहे भूरे वर्ण की हों, चाहे चितकबरे रंग की हों, चाहे अपने बछड़ों जैसी हों और चाहे कबूतरी रंग की हों –इनमें से जिस किसी की कोख से भी संयत, भार ढो सकने वाला, शक्तिसंपन्न, अच्छी गति वाला वृषभ जन्म ग्रहण करता है, उसे ही भार ढोने के लिए जोत दिया जाता है, उसके वर्ण की परीक्षा नहीं की जाती। इसी प्रकार मनुष्यों में भी –जिस-तिस जाति में –चाहे क्षत्रिय जाति में, चाहे ब्राह्मण जाति में, चाहे वैश्य जाति में, चाहे शूद्र जाति में, चाहे चंडाल जाति में और चाहे पुक्कुस (मैला साफ करने वाला) जाति में, जो कोई भी संयत, सुव्रत, धर्मस्थित, शीलसंपन्न, सत्यवादी, पापभीरु, जाति-मरण के बंधनों से मुक्त, ब्रह्मचर्य में पूर्णता प्राप्त, भारविहीन, बंधनमुक्त, कृतकृत्य, आस्रव-रहित, सब धर्मों में पारंगत, उपादान-स्कंधों के बंधन से मुक्त, तथा निर्वाणप्राप्त जन्म ग्रहण करता है उसी रज-रहित (पुण्य-) क्षेत्र में दान देने से दक्षिणा विपुल फलदायी होती है। जो मूर्ख हैं, जो अजानकार हैं, जो दुर्बुद्धि हैं, जो अज्ञानी हैं वे इनसे बाहर लोगों को दान देते हैं, वे शांत जनों की सेवा नहीं करते।जो पंडितों द्वारा मान्य, प्रज्ञावान, शांत जनों की सेवा करते हैं, उनकी श्रद्धा सुगत (बुद्ध) के प्रति मूलरूप से प्रतिष्ठित है। वे देव-लोक को प्राप्त होते हैं तथा यहां (श्रेष्ठ) कुल में जन्म लेते हैं। ऐसे पंडितजन क्रमशः निर्वाण को प्राप्त होते हैं।”]

८. तिकण्ण सुत्त

५९. एक समय तिकण्ण ब्राह्मण भगवान के पास गया। पास जाकर भगवान के साथ...। एक ओर बैठे हुए तिकण्ण ब्राह्मण ने भगवान के सामने त्रैविद्य ब्राह्मणों का गुणानुवाद करना आरंभ किया –‘त्रैविद्य ब्राह्मण ऐसे होते हैं, त्रैविद्य ब्राह्मण ऐसे होते हैं!’

भगवान ने पूछा –"ब्राह्मण! ब्राह्मण लोग ब्राह्मणों के त्रैविद्य होने की किस प्रकार व्याख्या करते हैं?"

"यहां, हे गौतम! त्रैविद्य ब्राह्मण माता तथा पिता दोनों की ओर से सुजन्मा होता है, सात पीढ़ियों तक शुद्ध होता है, उस पर जातिवाद की दृष्टि से कोई दोष नहीं लगा होता, कोई आक्षेप नहीं लगा होता, वह अध्यायक होता है, वह मंत्रधर होता है, वह निघंटु-केटुभ सहित तीनों वेदों का –जिनके अक्षर आदि (शिक्षा, निरुक्त आदि) प्रभेद हैं –पारंगत होता है तथा इतिहास जिनमें पांचवां माना जाता है, उसका भी पारंगत होता है। वह पदों का जानकार होता है, व्याख्याकार होता है तथा लोकायत का और महापुरुषलक्षण-शास्त्र का संपूर्ण जानकार होता है। हे गौतम! इस प्रकार ब्राह्मण लोग ब्राह्मणों के त्रैविद्य होने की व्याख्या करते हैं।"

"हे ब्राह्मण! ब्राह्मण लोग ब्राह्मणों के त्रैविद्य होने की जो व्याख्या करते हैं वह एक बात है, किंतु आर्य-विनय (सद्धर्म) में त्रैविद्य होने की व्याख्या बिल्कुल दूसरी है।"

"हे गौतम! आर्य-विनय में त्रैविद्य कैसे होता है? अच्छा हो आप गौतम मुझे वैसा धर्मोपदेश दें जैसे आर्य-विनय में त्रैविद्य होता है।"

"तो ब्राह्मण, सुन! अच्छी तरह मन में धारण कर। कहता हूं।"

"बहुत अच्छा!" कह तिकण्ण ब्राह्मण भगवान की बात सुनने लगा। भगवान ने ऐसा कहा –

"यहां, हे ब्राह्मण! भिक्षु कामभोगों से अलग, पृथक हो, अकुशल-धर्मों से पृथक हो, सवितर्क, सविचार, एकांतजन्य, प्रीतिसुख-युक्त प्रथम-ध्यानलाभी हो विहार करता है; वितर्क-विचारों का उपशमन होने के अनंतर, आंतरिक प्रसाद-युक्त, चित्त की एकाग्रता-युक्त, वितर्क-विचार-रहित, समाधिजन्य प्रीतिसुख-युक्त द्वितीय ध्यान का लाभी हो विहार करता है; प्रीति से भी वैराग्य-युक्त हो, उपेक्षावान बन विहार करता है, स्मृतिमान हो, संप्रज्ञानी हो, काया से सुखद संवेदनाओं का अनुभव करता है, जिसके बारे में आर्य-जन कहते हैं कि 'उपेक्षावान है, स्मृतिमान है, सुखपूर्वक विहार करने वाला है', ऐसा तृतीय ध्यान प्राप्त कर विहार करता है; सुख और दुःख दोनों का प्रहाण कर पूर्वस्थित सौमनस्य-दौर्मनस्य के अस्तंगमन होने से, अदुःख-असुख रूप उपेक्षा-स्मृति से परिशुद्ध चतुर्थ ध्यान लाभी हो विहार करता है।

"वह इस प्रकार के समाहित, शुद्ध, पर्यवदात, परिशुद्ध, राग-दोष-रहित, विगतोपक्लेश (क्लेश-रहित) चित्त के मृदु-भाव प्राप्त कर लेने पर, गढ़नीय

(सुघट्य, कमनीय), स्थित तथा अचंचल हो जाने पर उसे पूर्वजन्म को अनुस्मरण करने की ओर झुकाता है। वह अनेक प्रकार के पूर्वजन्मों का अनुस्मरण करता है – जैसे एक जन्म भी, दो जन्म भी, तीन जन्म भी, चार जन्म भी, पांच जन्म भी, दस जन्म भी, बीस जन्म भी, तीस जन्म भी, चालीस जन्म भी, पचास जन्म भी, सौ जन्म भी, हजार जन्म भी, लाख जन्म भी, अनेक संवर्तकल्प, अनेक विवर्तकल्प, अनेक संवर्त-विवर्तकल्प –'मैं अमुक स्थान पर था, ऐसा नाम था, ऐसा गोत्र था, ऐसा वर्ण था, ऐसा आहार था, उस प्रकार का सुख-दुःख भोगा था, इतनी आयु पर्यंत रहा, फिर वहां से च्युत होकर अमुक जगह उत्पन्न हुआ। वहां भी ऐसा नाम था, ऐसा गोत्र था, ऐसा वर्ण था, ऐसा आहार था, ऐसा सुख-दुःख भोगा था, इतनी आयु पर्यंत रहा, फिर वहां से च्युत होकर यहां उत्पन्न हुआ।' इस प्रकार सविस्तार से विशिष्टताओं सहित अनेक प्रकार से पूर्वजन्मों का स्मरण करता है। यह उस अप्रमत्त, आतापी और दृढ़संकल्प हो विहार करने वाले की प्रथम विद्या होती है। अविद्या का नाश हो गया, विद्या उत्पन्न हो गयी, अंधकार जाता रहा, प्रकाश उत्पन्न हो गया।

"वह इस प्रकार के समाहित, शुद्ध, पर्यवदात, परिशुद्ध, राग-दोष रहित, विगतोपक्लेश (क्लेश रहित) चित्त के मृदु-भाव प्राप्तकर लेने पर, गढ़नीय (सुघट्य), स्थित तथा अचंचल हो जाने पर उसे प्राणियों की च्युति तथा उत्पत्ति जानने के लिए झुकाता है। वह दिव्य, विशुद्ध, अलौकिक[1] चक्षु से च्युत होते तथा उत्पन्न होते प्राणियों को देखता है। वह निकृष्ट-श्रेष्ठ, सुवर्ण-दुर्वर्ण, कर्मानुसार सुगति-प्राप्त, दुर्गति-प्राप्त प्राणियों को जानता है – 'ये प्राणी कायिक-दुष्कर्म से युक्त हैं, वाचिक-दुष्कर्म से युक्त हैं, मानसिक-दुष्कर्म से युक्त हैं, आर्यों (श्रेष्ठ जनों) के निंदक हैं, मिथ्या-दृष्टि वाले हैं तथा मिथ्या-कर्मी हैं, वे शरीर छूटने पर, मरने के बाद, अपायगति प्राप्तकर नरक में उत्पन्न हुए हैं। अथवा ये प्राणी कायिक शुभ-कर्म से युक्त हैं, वाचिक शुभ-कर्म से युक्त हैं, मानसिक शुभ-कर्म से युक्त हैं, आर्यों (श्रेष्ठ-जनों) के प्रशंसक हैं, सम्यक-दृष्टि वाले हैं तथा सम्यक-कर्मी हैं, वे शरीर छूटने पर मरने के बाद, सुगति को प्राप्तकर स्वर्गलोक में उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार वह दिव्य, विशुद्ध, अलौकिक चक्षु से च्युत होते तथा उत्पन्न होते प्राणियों को देखता है। वह

---

१ पालि के **'अतिक्कन्त मानुसकेन'** (बु. सं. अतिक्रान्त मानुष्यक) का अर्थ 'अलौकिक' करना ठीक होगा ।

निकृष्ट-श्रेष्ठ, सुवर्ण, दुर्वर्ण सुगति-प्राप्त, दुर्गति-प्राप्त प्राणियों को जानता है। यह उस अप्रमत्त, आतापी और दृढ़संकल्प हो विहार करने वाले की दूसरी विद्या होती है। अविद्या का नाश हो गया, विद्या उत्पन्न हो गयी, अंधकार जाता रहा, प्रकाश उत्पन्न हो गया।

“वह इस प्रकार के समाहित, शुद्ध, पर्यवदात, परिशुद्ध, राग-दोष-रहित, विगतोपक्लेश (क्लेश रहित) चित्त के मृदु-भाव प्राप्त कर लेने पर, गढ़नीय (सुघट्य, कमनीय), स्थित तथा अचंचल हो जाने पर चित्त को आस्रवों के क्षय के ज्ञान की ओर झुकाता है। ‘यह दुःख है’, इसे वह यथाभूत जानता है, ‘यह दुःख-समुदय है’, इसे वह यथाभूत जानता है, ‘यह दुःख-निरोध है’, इसे वह यथाभूत जानता है, ‘यह दुःख-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है’, इसे वह यथाभूत जानता है। ‘ये आस्रव हैं’, इसे वह यथाभूत जानता है, ‘यह आस्रव-समुदय है’, इसे वह यथाभूत जानता है, ‘यह आस्रव-निरोध है’, इसे वह यथाभूत जानता है, ‘यह आस्रव-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है’, इसे वह यथाभूत जानता है। उसके इस प्रकार जानते हुए का, इस प्रकार देखते हुए का चित्त कामास्रव से विमुक्त हो जाता है, भवास्रव से भी विमुक्त हो जाता है, अविद्यास्रव से भी विमुक्त हो जाता है। विमुक्त हो जाने पर, ‘विमुक्त हूं’, यह ज्ञान होता है। वह यह यथाभूत जानता है – ‘जन्म क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, अब यहां जन्म लेने का कुछ भी कारण नहीं रहा।’ यह उस अप्रमत्त, आतापी और दृढ़संकल्प हो विहार करने वाले की प्राप्त की हुई तीसरी विद्या होती है। अविद्या का नाश हो गया, विद्या उत्पन्न हो गयी, अंधकार जाता रहा, प्रकाश उत्पन्न हो गया।

“अनुच्चावचसीलस्स, निपकस्स च झायिनो।
चित्तं यस्स वसीभूतं, एकग्गं सुसमाहितं॥

“तं वे तमोनुदं धीरं, तेविज्जं मच्चुहायिनं।
हितं देवमनुस्सानं, आहु सब्बप्पहायिनं॥

“तीहि विज्जाहि सम्पन्नं, असम्मूळ्हविहारिनं।
बुद्धं अन्तिमदेहिनं, तं नमस्सन्ति गोतमं॥

“पुब्बेनिवासं यो वेदी, सग्गापायञ्च पस्सति।
अथो जातिक्खयं पत्तो, अभिञ्ञावोसितो मुनि॥

“एताहि तीहि विज्जाहि, तेविज्जो होति ब्राह्मणो।
तमहं वदामि तेविज्जं, नाञ्ञं लपितलापन”न्ति॥

["जिसका शील डांवाडोल नहीं है, जो दक्ष है, जो ध्यानी है, जिसका चित्त वश में है, जो एकाग्र है, जो खूब समाहित है, उस अंधकार-नाशक को, धैर्यवान को, त्रैविद्य को, मृत्युंजयी को, सर्वस्वत्यागी को देव-मनुष्यों का हित करने वाला कहा गया है। जो तीन विद्याओं से युक्त है, जो ज्ञानयुक्त विहरता है, जो अंतिम देहधारी है, जो बुद्ध है, उस गौतम को (लोग) नमस्कार करते हैं। जो पूर्वजन्मों को जानता है, जो स्वर्ग-नरक को देखता है, जिसने जन्म के क्षय को प्राप्त किया है, जो अभिज्ञाप्राप्त है, जो मुनि है, वह ब्राह्मण (श्रेष्ठ-पुरुष) इन तीन विद्याओं से त्रैविद्य होता है। मैं उसे ही त्रैविद्य कहता हूं, किसी दूसरे प्रलापी को नहीं।"]

"इसी प्रकार हे ब्राह्मण! आर्य-विनय (सद्धर्म) में त्रैविद्य होता है।

"हे गौतम! ब्राह्मणों का त्रैविद्य दूसरी तरह का होता है तथा आर्य-विनय में त्रैविद्य दूसरी तरह का। हे गौतम! ब्राह्मणों का त्रैविद्य इस आर्य-विनय के त्रैविद्य की तुलना में सोलह में से एक कला के भी बराबर नहीं।

"हे गौतम! सुंदर है... आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

९. जाणुस्सोणि सुत्त

६०. एक समय जाणुस्सोणि ब्राह्मण भगवान के पास गया। ...एक ओर बैठे हुए जाणुस्सोणि ब्राह्मण ने भगवान से कहा –

"हे गौतम! जिसके यहां यज्ञ हो, श्राद्ध हो, थाली-पाक[१] हो, दातव्य[२] हो, उसे त्रैविद्य ब्राह्मणों को ही दान देना चाहिए।"

"ब्राह्मण! ब्राह्मण लोग ब्राह्मणों के त्रैविद्य होने की कैसी व्याख्या करते हैं?"

"हे गौतम! त्रैविद्य ब्राह्मण माता तथा पिता दोनों की ओर से सुजन्मा होता है, सात पीढ़ियों तक शुद्ध होता है, उस पर जातिवाद की दृष्टि से कोई दोष नहीं लगा होता, कोई आक्षेप नहीं लगा होता, वह अध्यायक होता है, वह मंत्रधर होता है, वह निघंटु-केटुभ सहित तीनों वेदों का –जिनके अक्षर आदि प्रभेद हैं –पारंगत होता है तथा इतिहास जिनमें पांचवां माना जाता है, उसका

१ पालि शब्द **'थालिपाक'** का अर्थ दूध में पकाया गया जौ या चावल होता है।

२ पालि शब्द **'देयधम्म'** के अन्तर्गत -- चीवर, पिण्डपात (भोजन) सेनासन (शयनासन) गिलानपच्चय भेसज्ज परिक्खार (रोगी का पथ्य और दवा) अन्न, पान, वत्थ (वस्त्र) यान (सवारी) माला, गंध, विलेपन (उबटन) सेय्या (शय्या) आवसथ (निवास-स्थान) और पदीपेय्य (प्रदीप-सामग्री) आते हैं।

भी पारंगत होता है। वह पदों का जानकार होता है, व्याख्याकार होता है तथा लोकायत का और महापुरुषलक्षण शास्त्र का संपूर्ण जानकार होता है। हे गौतम! इस प्रकार ब्राह्मण लोग ब्राह्मणों के त्रैविद्य होने की व्याख्या करते हैं।"

"हे ब्राह्मण! ब्राह्मण लोग ब्राह्मणों के त्रैविद्य होने की व्याख्या दूसरी तरह से करते हैं, किंतु आर्य-विनय (सद्धर्म) में त्रैविद्य अन्य प्रकार से होता है।"

"हे गौतम! आर्य-विनय में त्रैविद्य कैसे होता है? अच्छा हो आप गौतम मुझे वैसा धर्मोपदेश दें जैसे आर्य-विनय में त्रैविद्य होता है।"

"तो ब्राह्मण, सुन! अच्छी तरह मन में धारण कर। कहता हूं।"

"बहुत अच्छा!" कह जाणुस्सोणि ब्राह्मण भगवान की बात सुनने लगा। भगवान ने ऐसा कहा –

"हे ब्राह्मण!" भिक्षु कामभोगों से पृथक हो... चतुर्थ ध्यान लाभी हो विहरता है।

"वह इस प्रकार के समाहित, शुद्ध, पर्यवदात, परिशुद्ध, राग-दोष-रहित, विगतोपक्लेश (क्लेश-रहित) चित्त के मृदु-भाव प्राप्तकर लेने पर, गढ़नीय (सुघट्य), स्थित तथा अचंचल हो जाने पर उसे पूर्वजन्म-स्मरण की ओर झुकाता है। वह अनेक प्रकार के पूर्वजन्मों का अनुस्मरण करता है – जैसे एक जन्म भी, दो जन्म भी... इस प्रकार सविस्तार से विशिष्टताओं सहित अनेक प्रकार से पूर्वजन्मों का स्मरण करता है। यह उस अप्रमत्त, आतापी और दृढ़संकल्प हो विहार करने वाले की प्रथम विद्या होती है। अविद्या का नाश हो गया, विद्या उत्पन्न हो गयी, अंधकार जाता रहा, प्रकाश उत्पन्न हो गया।

"वह इस प्रकार के समाहित, शुद्ध, पर्यवदात, परिशुद्ध, राग-दोष-रहित, विगतोपक्लेश (क्लेश-रहित) चित्त के मृदु-भाव प्राप्तकर लेने पर, गढ़नीय (सुघट्य), स्थित तथा अचंचल हो जाने पर उसे प्राणियों की च्युति तथा उत्पत्ति के ज्ञान की ओर झुकाता है। वह दिव्य, विशुद्ध, अलौकिक चक्षु से... प्राणियों को जानता है। यह उस अप्रमत्त, आतापी और दृढ़संकल्प हो विहार करने वाले की दूसरी विद्या होती है। अविद्या का नाश हो गया, विद्या उत्पन्न हो गयी, अंधकार जाता रहा, प्रकाश उत्पन्न हो गया।

"वह इस प्रकार के समाहित, शुद्ध, पर्यवदात, परिशुद्ध, राग-दोष-रहित, विगतोपक्लेश (क्लेश-रहित) चित्त के मृदु-भाव प्राप्त कर लेने पर, गढ़नीय (सुघट्य), स्थित तथा अचंचल हो जाने पर चित्त को आस्रवों के क्षय के ज्ञान की ओर झुकाता है। 'यह दुःख है', इसे वह यथाभूत जानता है। 'यह

दु:ख-समुदय है', इसे वह यथाभूत जानता है। 'यह दु:ख-निरोध है', इसे वह यथाभूत जान लेता है। 'यह दु:ख-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है', इसे वह यथाभूत जानता है। इस प्रकार जानते हुए, इस प्रकार देखते हुए का चित्त कामास्रव से विमुक्त हो जाता है, भवास्रव से भी विमुक्त हो जाता है, अविद्यास्रव से भी विमुक्त हो जाता है। विमुक्त हो जाने पर 'विमुक्त हूं', यह ज्ञान होता है। वह यह यथाभूत जानता है –'जन्म क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, अब यहां जन्म लेने का कुछ भी कारण नहीं रहा।' यह उस अप्रमत्त, आतापी और दृढ़संकल्प हो विहार करने वाले की तीसरी विद्या होती है। अविद्या का नाश हो गया, विद्या उत्पन्न हो गयी, अंधकार जाता रहा, प्रकाश उत्पन्न हो गया।

"यो सीलब्बतसम्पन्नो, पहितत्तो समाहितो।
चित्तं यस्स वसीभूतं, एकग्गं सुसमाहितं॥

"पुब्बेनिवासं यो वेदी, सग्गापायञ्च पस्सति।
अथो जातिक्खयं पत्तो, अभिञ्ञावोसितो मुनि॥

"एताहि तीहि विज्जाहि, तेविज्जो होति ब्राह्मणो।
तमहं वदामि तेविज्जं, नाञ्ञं लपितलापन"न्ति॥

["जो वह शील-व्रत से युक्त है, जो दृढ़ संकल्प वाला है, जो समाहित है, जिसका चित्त उसके वश में है, जो एकाग्र है, जो खूब समाहित है, जो पूर्वजन्म को जानता है, जो स्वर्ग-नरक को देखता है, जिसने जन्म के क्षय को प्राप्त किया है, जो अभिज्ञाप्राप्त है, जो मुनि है, वह ब्राह्मण (श्रेष्ठ-पुरुष) इन तीन विद्याओं से त्रैविद्य होता है। मैं उसे ही त्रैविद्य कहता हूं, किसी दूसरे प्रलापी को नहीं।"]

"इस प्रकार हे ब्राह्मण! आर्य-विनय (सद्धर्म) में त्रैविद्य होता है।"

"हे गौतम! ब्राह्मणों का त्रैविद्य दूसरी तरह का होता है तथा आर्य-विनय में त्रैविद्य दूसरी तरह का। हे गौतम! ब्राह्मणों का त्रैविद्य इस आर्य-विनय के त्रैविद्य की तुलना में सोलह में से एक कला के भी बराबर नहीं।

"हे गौतम! सुंदर है... आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

१०. सङ्गारव सुत्त

६१. एक समय सङ्गारव ब्राह्मण भगवान के पास गया... एक ओर बैठे सङ्गारव ब्राह्मण ने भगवान को यह कहा –

"हे गौतम! हम ब्राह्मण हैं। हम यज्ञ करते भी हैं और करवाते भी हैं। हे गौतम! जो यज्ञ करता है तथा जो यज्ञ करवाता है, वे सभी ऐसे पुण्य-मार्ग का अनुगमन करते हैं जो अनेकों के लिए होता है अर्थात यह यज्ञ का करना कराना (अनेकों के लिए होता है)। किंतु हे गौतम! यह जो जिस-तिस कुल से, घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाते हैं, वे तो अकेले ही अपना दमन करते हैं, अकेले ही अपना शमन करते हैं, तथा अकेले ही परिनिर्वाण (शांति) को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार यह जो प्रव्रजित होना है यह अकेले के लिए पुण्य-मार्ग है यह अकेले के लिए पुण्य-मार्ग है।"

"तो ब्राह्मण! तुझसे ही प्रतिप्रश्न करता हूं, जैसा तुझे ठीक लगे वैसा कह। हे ब्राह्मण! बता तू क्या मानता है? यहां इस संसार में तथागत जन्म ग्रहण करते हैं, अर्हत, सम्यक संबुद्ध, विद्या तथा आचरण से युक्त, सुगत, लोकज्ञ, अनुत्तर, दमनीय पुरुषों के सारथी, देवताओं तथा मनुष्यों के शास्ता, बुद्ध, भगवान। वे ऐसा कहते हैं – 'आओ, यह मार्ग है, यह प्रतिपदा है जिस पर प्रतिपन्न (आरूढ़) होकर मैं स्वयं ब्रह्मचर्य जीवन में ओत-प्रोत अनुत्तर (श्रेष्ठ) निर्वाण को साक्षात करके कहता हूं। आओ, तुम भी वैसे ही चलो, जैसे आचरण करने से तुम भी अनुत्तर ब्रह्मचर्य-गत अभिज्ञा को स्वयं साक्षात कर विहार करोगे।' इस प्रकार शास्ता इस धर्म की देशना करते हैं और दूसरे तदनुसार आचरण करते हैं। वे अनेक सौ भी होते हैं, अनेक सहस्र भी होते हैं तथा अनेक लाख भी होते हैं। तो ब्राह्मण! तुम क्या मानते हो? ऐसा होने पर जो यह प्रव्रज्या-पथ है, क्या यह एक से संबंध रखने वाला पुण्य-पथ है अथवा अनेक से संबंध रखने वाला?"

"ऐसा होने पर तो, हे गौतम! यह जो प्रव्रज्या-पथ है, यह अनेक से संबंध रखने वाला पुण्य-पथ होता है।"

ऐसा कहने पर आयुष्मान आनन्द ने सङ्गारव ब्राह्मण को यह कहा – "ब्राह्मण! इन दो मार्गों में से कौन-सा मार्ग तुझे अधिक कम-खर्चीला, अधिक कम-झंझटिया तथा महान फलवाला, महान परिणाम वाला मालूम देता है?"

ऐसा कहने पर सङ्गारव ब्राह्मण ने आयुष्मान आनन्द को यह कहा – "जैसे आप गौतम वैसे आप आनन्द हैं, आप दोनों ही मेरे पूज्य हैं, आप दोनों ही मेरी प्रशंसा के पात्र हैं।"

दूसरी बार भी आयुष्मान आनन्द ने सङ्गारव ब्राह्मण को यह कहा – "ब्राह्मण! मैं तुझ से यह नहीं पूछता हूं कि कौन तेरे पूज्य हैं अथवा कौन तेरी प्रशंसा के पात्र हैं। ब्राह्मण! मैं तो तुझ से पूछता हूं कि इन दो मार्गों में कौन-सा

मार्ग तुझे अधिक कम-खर्चीला, अधिक कम-झंझटी तथा महान फल वाला, महान परिणाम वाला मालूम देता है?"

दूसरी बार भी सङ्गारव ब्राह्मण ने आयुष्मान आनन्द को यह कहा –"जैसे आप गौतम वैसे आप आनन्द हैं, आप दोनों ही मेरे पूज्य हैं, आप दोनों ही मेरी प्रशंसा के पात्र हैं।"

तीसरी बार भी आयुष्मान आनन्द ने सङ्गारव ब्राह्मण को यह कहा – "ब्राह्मण! मैं तुझ से यह नहीं पूछता हूं कि कौन तेरे पूज्य हैं अथवा कौन तेरी प्रशंसा के पात्र हैं। ब्राह्मण! मैं तो तुझ से यह पूछता हूं कि इन दो मार्गों में कौन-सा मार्ग तुझे अधिक कम-खर्चीला, अधिक कम-झंझटी तथा महान फल वाला, महान परिणाम वाला मालूम देता है?"

तीसरी बार भी सङ्गारव ब्राह्मण ने आयुष्मान आनन्द को यह कहा – "जैसे आप गौतम वैसे आप आनन्द हैं, आप दोनों ही मेरे पूज्य हैं, आप दोनों ही मेरी प्रशंसा के पात्र हैं।"

उस समय भगवान के मन में यह हुआ – तीसरी बार भी आनन्द द्वारा समुचित प्रश्न पूछे जाने पर सङ्गारव ब्राह्मण उससे कतराता ही है, प्रश्न का उत्तर नहीं देता। मैं ही उससे बात करूं।

तब भगवान ने सङ्गारव ब्राह्मण को यह कहा –"ब्राह्मण! आज राजा के अंतःपुर में, राज्य-परिषद में इकट्ठे हुए लोगों में क्या बातचीत चली थी?"

"हे गौतम! आज राजा के अंतःपुर में, राज्य-परिषद में इकट्ठे हुए लोगों में यह बातचीत चली थी कि पहले भिक्षुओं की संख्या थोड़ी थी किंतु उनमें से बहुत से असाधारण मनुष्य-धर्म अथवा ऋद्धि-बल का प्रदर्शन करते थे; आज भिक्षुओं की संख्या अधिक है किंतु उनमें से थोड़े ही ऐसा करते हैं। हे गौतम! आज राजा के अंतःपुर में, राज्य-परिषद में इकट्ठे हुए लोगों में यह बातचीत चली थी।"

"ब्राह्मण! ये तीन प्रातिहार्य (असाधारण कृतियां) हैं। कौन-से तीन? ऋद्धि-प्रातिहार्य, आदेशना-प्रातिहार्य तथा अनुशासनी-प्रातिहार्य।

"ब्राह्मण! ऋद्धि-प्रातिहार्य किसे कहते हैं?

"यहां, ब्राह्मण! कोई-कोई अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करता है – 'एक होकर भी अनेक हो जाता है, अनेक होकर भी एक हो जाता है, प्रकट हो जाता है, अदृश्य हो जाता है, दीवार के पार, प्राकार के पार, पर्वत के पार उन्हें छूता हुआ चला जाता है मानो जैसे आकाश में; पृथ्वी पर भी

डूबता-उतराता है मानो जैसे पानी में; पानी के भी ऊपर-ऊपर चलता है मानो जैसे पृथ्वी पर; आकाश में भी पालथी मारकर जाता है मानो जैसे कोई पक्षी हो, इस प्रकार का ऋद्धिमान, इस प्रकार के महाप्रतापी चंद्र-सूर्य को भी हाथ से छूता है, ब्रह्मलोक तक भी सशरीर पहुँच जाता है।' हे ब्राह्मण! यह ऋद्धि-प्रातिहार्य कहलाता है।

"ब्राह्मण! आदेशना-प्रातिहार्य किसे कहते हैं?

"हे ब्राह्मण! कोई-कोई निमित्त (लक्षण) देखकर बताता है –'तुम्हारा मन ऐसा है, तुम्हारा मन इस प्रकार का है, तुम्हारा चित्त ऐसा है।' वह बहुत भी कहता है, तो भी जैसा वह कहता है वैसा ही होता है, अन्यथा नहीं होता।

"हे ब्राह्मण! कोई-कोई निमित्त देखकर नहीं कहता, बल्कि मनुष्यों, अमनुष्यों अथवा देवताओं का शब्द सुनकर कहता है –'तुम्हारा मन ऐसा है, तुम्हारा मन इस प्रकार का है, तुम्हारा चित्त ऐसा है।' वह बहुत भी कहता है, तो भी जैसा वह कहता है वैसा ही होता है, अन्यथा नहीं होता।

"हे ब्राह्मण! कोई-कोई न निमित्त देखकर कहता है, न मनुष्यों, अमनुष्यों अथवा देवताओं का शब्द सुनकर कहता है, बल्कि वितर्क करके, विचार करके वितर्क से उत्पन्न शब्द सुनकर कहता है –'तुम्हारा मन ऐसा है, तुम्हारा मन इस प्रकार का है, तुम्हारा चित्त ऐसा है।' वह बहुत भी कहता है, तो भी जैसा वह कहता है वैसा ही होता है, अन्यथा नहीं होता।

"हे ब्राह्मण! कोई-कोई न निमित्त देखकर कहता है, न मनुष्यों, अमनुष्यों अथवा देवताओं का शब्द सुनकर कहता है, न वितर्क करके, विचार करके वितर्क से उत्पन्न शब्द सुनकर कहता है, बल्कि वितर्क-रहित, विचार-रहित समाधि-प्राप्त चित्त से चित्त का स्पर्श करके अच्छी तरह जानता है –'जिस प्रकार इस समय इनके मन का संस्कार चल रहा है, इसके बाद यह महाशय इस प्रकार का वितर्क करेंगे।' वह बहुत भी कहता है, तो भी जैसा वह कहता है वैसा ही होता है, अन्यथा नहीं होता। ब्राह्मण! यह आदेशना-प्रातिहार्य कहलाता है।

"ब्राह्मण! अनुशासनी-प्रातिहार्य किसे कहते हैं?

"यहां, ब्राह्मण! कोई-कोई ऐसा अनुशासन करता है –'ऐसा वितर्क करो, ऐसा वितर्क मत करो, मन में ऐसा विचार करो, मन में ऐसा विचार मत करो, इसको छोड़ो, इसको मनमें धारण कर विचरो।'

"ब्राह्मण! इसे अनुशासनी-प्रातिहार्य कहते हैं। ब्राह्मण, ये तीन प्रातिहार्य हैं।

"ब्राह्मण! इन तीन प्रातिहार्यों में तुझे कौन-सा प्रातिहार्य सुंदरतर तथा श्रेष्ठतर लगता है?"

"हे गौतम! इनमें से जो यह एक प्रातिहार्य है कि कोई-कोई अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करता है... ब्रह्मलोक तक भी सशरीर पहुँच जाता है – हे गौतम! इस प्रातिहार्य को जो करता है वही अनुभव करता है, जो करता है उसी को वह होता है। हे गौतम! यह प्रातिहार्य तो मुझे माया-सदृश लगता है। हे गौतम! यह भी जो एक प्रातिहार्य है कि कोई-कोई निमित्त देखकर बताता है... देवताओं का शब्द सुनकर...वितर्क से उत्पन्न शब्द सुनकर...चित्त से चित्त का स्पर्श करके जानता है... हे गौतम! इस प्रातिहार्य को भी जो करता है वही अनुभव करता है, जो करता है उसी को वह होता है। हे गौतम! यह प्रातिहार्य भी मुझे माया-सदृश ही लगता है। लेकिन हे गौतम! यह जो एक प्रातिहार्य है कि कोई-कोई ऐसा अनुशासन करता है... मन में धारण कर विचरो; हे गौतम! इन तीन प्रातिहार्यों में मुझे यही एक प्रातिहार्य सुंदरतर तथा श्रेष्ठतर लगता है।

"हे गौतम! आश्चर्य है! हे गौतम! अद्भुत है कि आप गौतम ने कैसी सुभाषित वाणी कही है। हम आप गौतम को इन तीनों प्रातिहार्यों से युक्त समझते हैं। आप गौतम ही अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करते हैं... ब्रह्मलोक तक भी सशरीर पहुँच जाते हैं। आप गौतम ही वितर्क-रहित, विचार-रहित समाधि-प्राप्त चित्त से चित्त का स्पर्श करके जानते हैं कि जिस प्रकार इस समय इनका मन-संस्कार चल रहा है, इसके बाद यह महाशय इस प्रकार का वितर्क करेंगे। आप गौतम ही ऐसा अनुशासन करते हैं कि ऐसा वितर्क करो, ऐसा वितर्क मत करो, मन में ऐसा विचार करो, मन में ऐसा विचार मत करो, इसको छोड़ो, इसे मनमें धारण कर विहरो।"

"निश्चय से ब्राह्मण! मैंने तुझे (अपने गुणों के) समीप लाकर ही बात कही है। लेकिन अब मैं (स्पष्ट रूप से) व्याख्या करता हूं। ब्राह्मण! मैं ही अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करता हूं... ब्रह्मलोक तक भी सशरीर पहुँच जाता हूं। मैं ही ब्राह्मण! वितर्क-रहित, विचार-रहित समाधि-प्राप्त चित्त से चित्त का स्पर्श करके जानता हूं कि जिस प्रकार इस समय इनका मन-संस्कार चल रहा है इसके बाद यह महाशय इस प्रकार का वितर्क करेंगे। हे ब्राह्मण! मैं ही ऐसा अनुशासन करता हूं कि ऐसा वितर्क करो, ऐसा वितर्क मत करो, मन में ऐसा विचार करो, मन में ऐसा विचार मत करो, इसको छोड़ो, इसे मन में धारण कर विहरो।"

"हे गौतम! क्या आप गौतम के अतिरिक्त कोई दूसरा एक भिक्षु भी ऐसा है जो इन तीनों प्रातिहार्यों से संपन्न है?"

"हे ब्राह्मण! न केवल एक सौ, न दो सौ, न तीन सौ, न चार सौ, न पांच सौ बल्कि इससे भी अधिक ऐसे भिक्षु होंगे जो इन प्रातिहार्यों से संपन्न हों।"

"हे गौतम! इस समय वे भिक्षु कहां विहार करते हैं?"

"ब्राह्मण! इसी भिक्षु-संघ में।"

"सुंदर गौतम! बहुत सुंदर गौतम! जैसे कोई उल्टे को सीधा कर दे, ढँके को उघाड़ दे, मार्ग-भूले को रास्ता बता दे अथवा अंधेरे में मशाल धारण करे, जिससे आंख वाले चीजों को देख सकें। इसी प्रकार गौतम ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया है। मैं आप गौतम, धर्म तथा संघ की शरण जाता हूं। आप गौतम आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

(७) २. महा वर्ग

१. विभिन्न वाद सुत्त

६२. "भिक्षुओ, ये तीन, तैर्थिकों के ऐसे मत हैं जो पंडितों द्वारा कड़ाई से प्रश्न किये जाने पर, पूछताछ किये जाने पर, चर्चा किये जाने पर, परंपरा के अनुसार जहां कहीं भी जाकर रुकते हैं वहां अकर्मण्यता पर ही जाकर रुकते हैं। कौन से तीन?

"भिक्षुओ, कुछ श्रमण-ब्राह्मणों का यह मत है, यह दृष्टि है कि जो कुछ भी कोई आदमी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है वह सब पूर्व-कर्मों के फलस्वरूप अनुभव करता है।

"भिक्षुओ, कुछ श्रमण-ब्राह्मणों का यह मत है, यह दृष्टि है कि जो कुछ भी कोई आदमी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है वह सब ईश्वर-निर्माण के कारण अनुभव करता है।

"भिक्षुओ, कुछ श्रमण-ब्राह्मणों का यह मत है, यह दृष्टि है कि जो कुछ भी कोई आदमी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है वह सब बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के अनुभव करता है।

"भिक्षुओ, जिन श्रमण-ब्राह्मणों का यह मत है, यह दृष्टि है कि जो कुछ भी कोई आदमी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है, वह सब पूर्व-कर्मों के फलस्वरूप अनुभव करता है, उनके पास जाकर मैं उनसे प्रश्न करता हूं –'आयुष्मानो! क्या सचमुच तुम्हारा यह मत है कि जो कुछ भी कोई

आदमी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है, वह सब पूर्व-कर्मों के फलस्वरूप अनुभव करता है?'

"मेरे ऐसे पूछने पर वे 'हां' उत्तर देते हैं।

"तब उनसे मैं कहता हूं – 'तो आयुष्मानो! तुम्हारे मत के अनुसार पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूप आदमी प्राणी-हिंसा करने वाले होते हैं, पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूप आदमी चोरी करने वाले होते हैं, पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूप आदमी अब्रह्मचारी होते हैं, पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूप आदमी झूठ बोलने वाले होते हैं, पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूप आदमी चुगलखोर होते हैं, पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूप आदमी कठोर बोलने वाले होते हैं, पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूप आदमी व्यर्थ बकवास करने वाले होते हैं, पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूप आदमी लोभी होते हैं, पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूप आदमी क्रोधी होते हैं, तथा पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूपआदमी मिथ्या-दृष्टि वाले होते हैं।

'तो भिक्षुओ, इस प्रकार वे जो पूर्व-कर्म को ही सारभूत कारण मानने वाले हैं उनके मन में न तो इच्छा ही जगती है और न वे प्रयत्न ही करते हैं और न इस काम को करने की या उस काम को न करने की आवश्यकता ही समझते हैं। तब क्रियावादिता या अक्रियावादिता की वास्तव में आवश्यकता ही नहीं दिखाई पड़ती। तो आपको "श्रमण" कैसे कहा जा सकता है क्योंकि आप अनारक्षित हैं और आपकी स्मृति नष्ट हो गयी है। अर्थात, आपकी इंद्रियां असंयत हैं और आप बिल्कुल स्मृतिमान नहीं हैं।'

"भिक्षुओ, इस प्रकार का मत, इस प्रकार की दृष्टि रखने वाले श्रमण-ब्राह्मणों पर यह मेरा प्रथम उचित (तर्कसंगत) दोषारोपण है ।

"भिक्षुओ, जिन श्रमण-ब्राह्मणों का यह मत है, यह दृष्टि है कि जो कुछ भी कोई आदमी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है वह सब ईश्वर-निर्माण के कारण अनुभव करता है, उनके पास जाकर मैं उनसे प्रश्न करता हूं –'आयुष्मानो! क्या सचमुच तुम्हारा यह मत है कि जो कुछ भी कोई आदमी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है, वह सब ईश्वर-निर्माण के फलस्वरूपअनुभव करता है?'

"मेरे ऐसा पूछने पर वे 'हां' उत्तर देते हैं।

"तब उनसे मैं कहता हूं – 'तो आयुष्मानो! तुम्हारे मत के अनुसार ईश्वर-निर्माण के ही फलस्वरूप आदमी प्राणी-हिंसा करने वाले होते हैं... ईश्वर-निर्माण के ही फलस्वरूप आदमी मिथ्या-दृष्टि वाले होते हैं। भिक्षुओ,

इस प्रकार वह जो ईश्वर-निर्माण को ही सारभूत कारण मानने वाले हैं उनके मन में न तो इच्छा ही जगती है और न वे प्रयत्न ही करते हैं और न इस काम को करने की या उस काम को न करने की आवश्यकता ही समझते हैं तब क्रियावादिता या अक्रियावादिता की वास्तव में आवश्यकता ही नहीं दिखाई पड़ती। तो आपको "श्रमण" कैसे कहा जा सकता है क्योंकि आप अनारक्षित हैं और आपकी स्मृति नष्ट हो गयी है। अर्थात, आपकी इंद्रियां असंयत हैं और आप बिल्कुल स्मृतिमान नहीं हैं।'

"भिक्षुओ, इस प्रकार का मत, इस प्रकार की दृष्टि रखने वाले श्रमण-ब्राह्मणों पर यह मेरा दूसरा उचित (तर्कसंगत) दोषारोपण है।

"भिक्षुओ, जिन श्रमण-ब्राह्मणों का यह मत है, यह दृष्टि है कि जो कुछ भी कोई आदमी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है, वह सब बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के अनुभव करता है, उनके पास जाकर मैं उनसे प्रश्न करता हूं –'आयुष्मानो! क्या सचमुच तुम्हारा यह मत है कि जो कुछ भी कोई आदमी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है, वह सब बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के करता है?

"मेरे ऐसा पूछने पर वे 'हां' उत्तर देते हैं।

"तब मैं उनसे कहता हूं –'तो आयुष्मानो! तुम्हारे मत के अनुसार बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के आदमी प्राणी-हिंसा करने वाले होते हैं... बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के आदमी मिथ्या-दृष्टि वाले होते हैं। भिक्षुओ, जो इस अहेतुवाद, इस अकारणवाद को ही सारभूत कारण मानने वाले हैं उनके मन में न तो इच्छा ही जगती है और न वे प्रयत्न ही करते हैं और न इस काम को करने की या उस काम को न करने की आवश्यकता ही समझते हैं। तब क्रियावादिता या अक्रियावादिता की वास्तव में आवश्यकता ही नहीं दिखाई पड़ती। तो आपको "श्रमण" कैसे कहा जा सकता है क्योंकि आप अनारक्षित हैं और आपकी स्मृति नष्ट हो गयी है। अर्थात, आपकी इंद्रियां असंयत हैं और आप बिल्कुल स्मृतिमान नहीं हैं।'

"भिक्षुओ, इस प्रकार का मत, इस प्रकार की दृष्टि रखने वाले श्रमण-ब्राह्मणों पर यह मेरा तीसरा उचित (तर्कसंगत) दोषारोपण है।

"भिक्षुओ, ये तीन, तैर्थिकों के ऐसे मत हैं, जो पंडितों द्वारा कड़ाई से प्रश्न किये जाने पर, पूछताछ किये जाने पर, चर्चा किये जाने पर, परंपरा के अनुसार जहां कहीं भी जाकर रुकते हैं, वहां अकर्मण्यता पर ही जाकर रुकते हैं।

"भिक्षुओ, मैंने इस धर्म का उपदेश दिया है जो विज्ञ श्रमण-ब्राह्मणों द्वारा दोषारोपित नहीं है, जो संक्लिष्ट नहीं है, तथा जो परिशुद्ध है। भिक्षुओ, मैंने किस धर्म का उपदेश दिया है जो विज्ञ श्रमण-ब्राह्मणों द्वारा दोषारोपित नहीं है, जो संक्लिष्ट नहीं है तथा जो परिशुद्ध है?

"भिक्षुओ, मैंने जो यह उपदेश दिया कि छः धातु हैं और जो ... है, वह किन छः धातुओं के बारे में कहा? भिक्षुओ, ये छः धातु हैं – पृथ्वी-धातु, जल-धातु, अग्नि-धातु, वायु-धातु आकाश-धातु तथा विज्ञान-धातु। भिक्षुओ, ये छः धातु हैं – यह धर्म है जिसका मैंने उपदेश दिया है, जो विज्ञ श्रमण-ब्राह्मणों द्वारा दोषारोपित नहीं है, जो संक्लिष्ट नहीं है तथा, जो परिशुद्ध है। वह इन्हीं को लेकर दियागया है।

"भिक्षुओ, मैंने जो यह उपदेश दिया कि ये छः स्पर्शायतन हैं और जो ... है वह किन छः स्पर्शायतनों के बारे में कहा? भिक्षुओ, ये छः स्पर्शायतन हैं – चक्षु-स्पर्शायतन, श्रोत्र-स्पर्शायतन, घ्राण-स्पर्शायतन, जिह्वा-स्पर्शायतन, काय-स्पर्शायतन, मन-स्पर्शायतन। भिक्षुओ, मैंने जो यह उपदेश दिया कि ये छः स्पर्शायतन हैं और जो... है, वह इन्हीं छः स्पर्शायतनों को लेकर दिया गया है।

"भिक्षुओ, मैंने जो यह उपदेश दिया कि ये अठारह विहरण हैं और जो ... है, वह किन अठारह विहरणों के बारे में कहा? आंख से रूप देखकर प्रसन्न होने के विषय में विहरण करता है, दौर्मनस्य होने के विषय में विहरण करता है, उपेक्षा होने के विषय में विहरण करता है, श्रोत्र से शब्द सुनकर...घ्राण से गंध सूंघकर...जिह्वा से रस चखकर...कायसे स्पर्श करके ...मन से विषयों का अनुभव कर प्रसन्न होने के विषय में विहरण करता है, दौर्मनस्य होने के विषय में विहरण करता है, उपेक्षा होने के विषय में विहरण करता है। भिक्षुओ, मैंने जो यह उपदेश दिया कि ये अठारह विहरण हैं और जो... है, वह इन अठारह विहरणों के ही बारे में या इन अठारह विहरणों को लेकर ही कहा।

"भिक्षुओ, मैंने जो यह उपदेश दिया कि चार आर्य-सत्य हैं और जो ... है, वह किन आर्यसत्यों के बारे में कहा? भिक्षुओ, छः धातुओं के होने से गर्भाधान होता है, गर्भाधान होने से नाम-रूप, नाम-रूप होने से छः आयतन, छः आयतन होने से स्पर्श, तथा स्पर्श होने से वेदना की जिसे अनुभूति होती है उसी के संबंध में भिक्षुओ, मैं 'यह दुःख है' ऐसा प्रज्ञापन करता हूं, 'यह दुःख-समुदय है' ऐसा प्रज्ञापन करता हूं, 'यह दुःख-निरोध है' ऐसा प्रज्ञापन करता हूं, 'यह दुःख-निरोध की ओर ले जाने वाली प्रतिपदा (=मार्ग) है' ऐसा प्रज्ञापन करता हूं।

"भिक्षुओ, दु:ख आर्य-सत्य क्या है?

"जन्म दु:ख है, बुढ़ापा दु:ख है, व्याधि दु:ख है, मृत्यु दु:ख है, शोक दु:ख है, परिदेव दु:ख है, दु:ख-दौर्मनस्य दु:ख है, उपायास दु:ख है, अप्रिय से संयोग दु:ख है, प्रिय से वियोग दु:ख है, इच्छित की अप्राप्ति दु:ख है, संक्षेप में कहना हो तो पांच उपादान-स्कंध ही दु:ख हैं। भिक्षुओ, यह दु:ख आर्य-सत्य कहलाता है।

"भिक्षुओ, दु:ख-समुदय आर्य-सत्य क्या है?

"अविद्या के होने से संस्कार, संस्कार के होने से विज्ञान, विज्ञान के होने से नाम-रूप, नाम-रूप के होने से छः आयतन, छः आयतन के होने से स्पर्श, स्पर्श के होने से वेदना, वेदना के होने से तृष्णा, तृष्णा के होने से उपादान, उपादान के होने से भव, भव के होने से जन्म, जन्म के होने से बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, क्रंदन, दु:ख, दौर्मनस्य, अशांति होती है। इस प्रकार इस सारे दु:ख-स्कंध की उत्पत्ति होती है। भिक्षुओ, यह दु:ख-समुदय आर्य-सत्य कहलाता है।

"भिक्षुओ, दु:ख-निरोध आर्य-सत्य क्या है?

"अविद्या के ही संपूर्ण विराग (आसक्ति का अभाव) से, निरोध से, संस्कारों का निरोध होता है। संस्कारों के निरोध से विज्ञान-निरोध, विज्ञान के निरोध से नाम-रूप-निरोध, नाम-रूप के निरोध से छः आयतनों का निरोध, छः आयतनों के निरोध से स्पर्श का निरोध, स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध, वेदना के निरोध से तृष्णा का निरोध, तृष्णा के निरोध से उपादान का निरोध, उपादान के निरोध से भव-निरोध, भव के निरोध से जन्म का निरोध, जन्म के निरोध से बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, क्रंदन, दु:ख, दौर्मनस्य, अशांति का निरोध होता है। इस प्रकार इस सारे के सारे दु:ख-स्कंध का निरोध होता है। भिक्षुओ, यह दु:ख-निरोध आर्य-सत्य कहलाता है।

"भिक्षुओ, दु:ख-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग आर्य-सत्य कौन-सा है?

"यही आर्य अष्टांगिक मार्ग जो कि यों है – सम्यक-दृष्टि, सम्यक-संकल्प, सम्यक-वाणी, सम्यक-कर्मान्त, सम्यक-आजीविका, सम्यक-व्यायाम, सम्यक-स्मृति, सम्यक-समाधि। भिक्षुओ, यह दु:ख-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग आर्य-सत्य कहलाता है।

"भिक्षुओ, मैंने जो यह उपदेश दिया कि चार आर्य-सत्य हैं और जो ... है, वह इन आर्यसत्यों के ही बारे में (या इनको लेकर ही) कहा।"

२. भय सुत्त

६३. "भिक्षुओ, माता-पुत्र-वियोग के (माता से पुत्र को अलग करने वाले) ये तीन भय हैं, जिनकी अज्ञानी पृथग्जन चर्चा करता है। कौन-से तीन?

"भिक्षुओ, ऐसा समय आता है जब महान अग्निदाह होता है। भिक्षुओ, महान अग्निदाह के होने पर गांव भी जल जाते है, निगम भी जल जाते हैं और नगर भी जल जाते हैं। गांवों के जलने पर, निगमों के जलने पर तथा नगरों के जलने पर न माता की पुत्र से भेंट होती है और न पुत्र की माता से भेंट होती है। भिक्षुओ, यह पहला माता-पुत्र-वियोग भय है, जिसकी अज्ञानी पृथग्जन चर्चा करता है।

"भिक्षुओ, फिर ऐसा समय भी आता है जब भारी वर्षा होती है। भारी वर्षा के होने पर भयंकर बाढ़ आती है। भयंकर बाढ़ के आने पर गांव भी बह जाते हैं, निगम भी बह जाते हैं तथा नगर भी बह जाते हैं। गांवों के बह जाने पर, निगमों के बह जाने पर तथा नगरों के बह जाने पर न माता की पुत्र से भेंट होती है और न पुत्र की माता से भेंट होती है। भिक्षुओ, यह दूसरा माता-पुत्र-वियोग भय है जिसकी अज्ञानी पृथग्जन चर्चा करता है।

"भिक्षुओ, फिर ऐसा समय भी आता है जब जंगल (में रहने वाले चोर-डाकू) प्रकुपित हो जाते हैं। उस समय लोग रथों पर चढ़कर जनपद से भाग जाते हैं। भिक्षुओ, जब जंगल प्रकुपित हो जाते हैं और जब लोग रथों पर चढ़-चढ़कर जनपदों से भाग जाते हैं, उस समय न माता की पुत्र से भेंट होती है और न पुत्र की माता से भेंट होती है। भिक्षुओ, यह तीसरा माता-पुत्र-वियोग भय है, जिसकी अज्ञानी पृथग्जन चर्चा करता है।

"भिक्षुओ, माता को पुत्र से अलग करने वाले ये तीन भय हैं जिनकी अज्ञानी पृथग्जन चर्चा करता है।

"भिक्षुओ, तीन भय ऐसे हैं जिनमें कभी माता का पुत्र से संयोग होता है कभी वियोग। ये तीनों भय ही हैं जिनकी अज्ञानी पृथग्जन माता-पुत्र-वियोग भय कहकर चर्चा करता है। कौन-से तीन?

"भिक्षुओ, ऐसा समय आता है जब महान अग्निदाह होता है। भिक्षुओ, महान अग्निदाह के होने पर गांव भी जल जाते हैं, निगम भी जल जाते हैं और नगर भी जल जाते हैं। गांवों के जलने पर, निगमों के जलने पर तथा नगरों के जलने पर भी कभी-कभी ऐसा होता है कि माता की पुत्र से भेंट हो जाती है,

पुत्र की माता से भेंट हो जाती है। भिक्षुओ, यह पहला भय है जिसमें कभी माता का पुत्र से संयोग होता है कभी वियोग जिसकी अज्ञानी पृथग्जन चर्चा करता है।

“भिक्षुओ, फिर ऐसा समय भी आता है जब भारी वर्षा होती है। भारी वर्षा के होने पर... तथा नगरों के बह जाने पर भी कभी-कभी ऐसा होता है कि माता की पुत्र से भेंट हो जाती है, पुत्र की माता से भेंट हो जाती है। भिक्षुओ, यह दूसरा भय है जिसमें कभी माता का पुत्र से संयोग होता है कभी वियोग जिसकी अज्ञानी पृथग्जन चर्चा करता है।

“भिक्षुओ, फिर ऐसा समय भी आता है जब जंगल (में रहने वाले चोर-डाकू) प्रकुपित हो जाते हैं। उस समय लोग रथों पर चढ़-चढ़कर जनपद से भाग जाते हैं। भिक्षुओ, जब जंगल (में रहने वाले चोर-डाकू) प्रकुपित हो जाते हैं और जब लोग रथों पर चढ़-चढ़कर जनपद से भाग जाते हैं, तब भी कभी-कभी ऐसा होता है कि माता की पुत्र से भेंट हो जाती है, पुत्र की माता से भेंट हो जाती है। भिक्षुओ, यह तीसरा भय है जिसमें कभी माता का पुत्र से संयोग होता है कभी वियोग जिसकी अज्ञानी पृथग्जन चर्चा करता है।

“भिक्षुओ, उक्त तीन भय ऐसे हैं जिनमें कभी माता का पुत्र से संयोग होता है कभी वियोग जिनकी अज्ञानी पृथग्जन चर्चा करता है।

“भिक्षुओ, ये तीन माता-पुत्र-वियोग भय हैं। कौन-से तीन?

“बुढ़ापे का भय, रोग का भय तथा मृत्यु का भय।

“भिक्षुओ, पुत्र के बूढ़े होने पर माता यह नहीं कह सकती कि मैं बूढ़ी होती हूं, तुम बूढ़े मत होओ और माता के बूढ़ी होने पर पुत्र यह नहीं कह सकता कि मैं बूढ़ा होता हूं, तुम बूढ़ी मत होओ।

“भिक्षुओ, पुत्र के रोगी होने पर माता यह नहीं कह सकती कि मैं रोगी होती हूं, तुम रोगी मत होओ और माता के रोगी होने पर पुत्र भी यह नहीं कह सकता कि मैं रोगी होता हूं, तुम रोगिणी मत होओ।

“भिक्षुओ, मरते हुए पुत्र को माता यह नहीं कह सकती कि मैं मरती हूं, तुम मत मरो और मरती हुई माता को पुत्र भी यह नहीं कह सकता कि मैं मरता हूं, तुम मत मरो।

“भिक्षुओ, ये तीन माता-पुत्र-वियोग भय हैं।

“भिक्षुओ, इन तीनों माता-पुत्र-संयोग भयों का तथा इन तीनों माता-पुत्र-वियोग भयों का प्रहाण करने वाला, अतिक्रमण करने वाला मार्ग है,

पथ है। भिक्षुओ, इन तीनों माता-पुत्र-संयोग भयों का तथा इन तीनों माता-पुत्र-वियोग भयों का प्रहाण करने वाला, अतिक्रमण करने वाला मार्ग, पथ कौन-सा है?

"यही आर्य अष्टांगिक-मार्ग जो कि है सम्यक-दृष्टि, सम्यक-संकल्प, सम्यक-वाणी, सम्यक-कर्मान्त, सम्यक-आजीविका, सम्यक-व्यायाम, सम्यक-स्मृति तथा सम्यक-समाधि। भिक्षुओ, इन तीनों माता-पुत्र-संयोग भयों का तथा इन तीनों माता-पुत्र-वियोग भयों का प्रहाण करने वाला, समतिक्रमण करने वाला मार्ग, पथ यही है।"

३. वेनागपुर सुत्त

६४. एक समय महान भिक्षु-संघ के साथ भगवान कोशल (-जनपद) में चारिका करते हुए कोशलों के वेनागपुर नाम के ब्राह्मण-ग्राम में पहुँचे। वेनागपुर के ब्राह्मण गृहपतियों ने सुना कि शाक्य-कुल-प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम वेनागपुर आये हैं। उन भगवान गौतम का इस प्रकार का यश फैला है – 'यह भगवान अर्हत हैं, सम्यक संबुद्ध हैं, विद्या तथा आचरण से युक्त हैं, सुगत हैं, लोकों के ज्ञाता हैं, सर्वश्रेष्ठ हैं, (कुमार्ग-गामी) मनुष्यों का दमन करने वाले हैं और देवताओं तथा मनुष्यों के शास्ता हैं बुद्ध हैं, भगवान हैं। वे इस स-देव, स-मार, स-ब्रह्म लोक को तथा श्रमण-ब्राह्मण-युक्त सदेव-मनुष्य जनता को, स्वयं जानकर, साक्षात कर (धर्म को) प्रकाशित करते हैं। वे आदि में कल्याणकारक, मध्य में कल्याणकारक, अंत में कल्याणकारक, अर्थों तथा व्यंजनों से युक्त, संपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य को प्रकाशित करते हैं। ऐसे अरहंतों का दर्शन कल्याणकारी होता है'।

तब वेनागपुर के ब्राह्मण गृहस्थ भगवान के पास पहुँचे। पहुँचकर कुछ अभिवादन करके एक ओर बैठ गये, कुछ भगवान के साथ कुशलक्षेम की बातचीत करके एक ओर बैठ गये, कुछ भगवान को हाथ जोड़कर एक ओर बैठ गये, कुछ अपना नाम-गोत्र सुनाकर एक ओर बैठ गये, कुछ चुपचाप रहकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए वेनागपुरिक वच्छगोत्त ब्राह्मण ने भगवान से कहा –

"हे गौतम! आश्चर्य है। हे गौतम! अद्भुत है। आप गौतम की इंद्रियां प्रसन्न हैं। आपकी त्वचा शुद्ध तथा साफ है। हे गौतम! जैसे शरद ऋतु का बेर शुद्ध तथा साफ होता है, उसी प्रकार आप गौतम की इंद्रियां प्रसन्न हैं और त्वचा सुंदर है। हे गौतम! जैसे ताड़ का अभी-अभी शाखा से टूटा, पका फल सुंदर होता है, उसी प्रकार आप गौतम की इंद्रियां प्रसन्न हैं और त्वचा सुंदर है।

हे गौतम! जैसे चतुर सुनार द्वारा ठोक-पीटक र तैयार कि या हुआ जांबुनद-स्वर्ण पांडु-वर्ण कं बल पर रखा हुआ चमक ता है, उसी प्रक ार आप गौतम की इंद्रियां प्रसन्न हैं और त्वचा सुंदर है। हे गौतम! जितने भी उच्च-शयनासन, महा-शयनासन हैं – जैसे आराम-कु र्सी, पलंग, चित्रित ऊनी बिछौना, सफे द ऊनी बिछौना, मुलायम ऊनी बिछौना, रूईदार गद्दा, सिंह आदि के चित्र वाला ऊनी बिछौना, दोनों ओर डोरियेदार बिछौना, एक ओर डोरीदार ऊनी बिछौना, रत्न-जटित रेशमी बिछौना, रेशमी बिछौना, नर्तकि यों के नाचने योग्य ऊनी बिछौना, हाथी आदि के चित्रों से चित्रित बिछौना, मृगासन, ऊपर चन्दोवे और दोनों ओर लाल तकि यों वाला, क दलीमृग की छाल का बिछौना – आपको ये सहज ही प्राप्य हैं, आपको ये अनायास मिल जाते हैं।"

"ब्राह्मण! जो ये उच्च-शयनासन हैं, महा-शयनासन हैं – जैसे आराम-कु र्सी... क दलीमृग की छाल का बिछौना – ये प्रव्रजितों को दुर्लभ हैं, और मिलें तो इनको व्यवहार में लाना अनुचित है।

"हे ब्राह्मण! तीन उच्च-शयनासन हैं, महा-शयनासन हैं जो मुझे इस समय सहज ही प्राप्य हैं, अनायास सुलभ हैं। कौन-से तीन?

"दिव्य उच्च-शयनासन, महा-शयनासन; ब्रह्म उच्च-शयनासन, महा-शयनासन, आर्य उच्च-शयनासन, महा-शयनासन। हे ब्राह्मण! ये तीन उच्च-शयनासन, महा-शयनासन हैं जो मुझे इस समय सहज ही प्राप्य हैं, अनायास सुलभ हैं।"

"हे गौतम! कौन-सा वह दिव्य उच्च-शयनासन महा-शयनासन है जो आप गौतम को सहज ही प्राप्य है?

"हे ब्राह्मण! मैं जिस गांव या निगम के समीप रहता हूं, पूर्वाह्न होने पर चीवर पहन, पात्र-चीवर ले, उसी गांव या निगम में भिक्षार्थ जाता हूं। भिक्षाटन से लौटक र, भोजन क र चुक ने पर उसी गांव के पास के जंगल में प्रवेश क रता हूं। वहां जो घास या पत्ते होते हैं, उन्हें इक ट्ठा क र, उन पर पालथी मार क र, शरीर को सीधा क र तथा स्मृति को मुख के ऊपर स्थापित क र बैठता हूं। उस समय मैं कामभोगों से पृथक हो, अकु शल-विचारों से पृथक हो, वितर्क-युक्त, विचार-युक्त, विवेकजन्य प्रीति तथा सुख वाले प्रथम ध्यान को प्राप्तक र विहार क रता हूं। फि र वितर्क और विचारों के उपशमन से आंतरिक प्रसन्नता और एकाग्रता रूपी समाधिजन्य प्रीतिसुख-युक्त द्वितीय ध्यान को प्राप्तक र विहार क रता हूं। फि र प्रीति से भी विरक्त हो उपेक्षावान बन विहार क रता हूं। उस समय स्मृतिमान, संप्रज्ञानी होता हूं, और काया से सुखद संवेदनाओं का

अनुभव करता हूं, जिसे आर्यजन 'उपेक्षावान हो, स्मृतिमान हो, सुखपूर्वक रहना कहते हैं,' उस तृतीय ध्यान को प्राप्त कर विहार करता हूं। फिर सुख और दुःख दोनों के प्रहाण से, पूर्वस्थित सौमनस्य और दौर्मनस्य के पहले ही अस्त हुए रहने से उत्पन्न चतुर्थ ध्यान को प्राप्तकर विहार करता हूं, जिसमें न दुःख होता है और न सुख, (केवल) उपेक्षा तथा स्मृति की परिशुद्धि रहती है।

"हे ब्राह्मण! इस अवस्था में जब मैं चंक्रमण करता हूं तब वह मेरा दिव्य चंक्रमण होता है। हे ब्राह्मण! इस अवस्था में जब मैं खड़ा होता हूं तब वह मेरा दिव्य खड़ा होना होता है। हे ब्राह्मण! इस अवस्था में जब मैं बैठता हूं तब वह मेरा दिव्य बैठना होता है। हे ब्राह्मण! इस अवस्था में जब मैं लेटता हूं तब वह मेरा दिव्य लेटना होता है। हे ब्राह्मण! यह है मेरा वह दिव्य उच्च-शयनासन, महा-शयनासन जो मुझे इस समय सहज ही प्राप्य है, अनायास सुलभ है।"

"हे गौतम! आश्चर्य है। हे गौतम! अद्भुत है। आप गौतम के अतिरिक्त अन्य किसे इस प्रकार का दिव्य उच्च-शयनासन, महा-शयनासन सहज ही प्राप्य होगा, अनायास ही सुलभ होगा!

"हे गौतम! कौन-सा वह ब्रह्म उच्च-शयनासन महा-शयनासन है जो आप गौतम को सहज ही प्राप्य है?"

"हे ब्राह्मण! मैं जिस गांव या निगम के समीप रहता हूं, पूर्वाह्न होने पर (चीवर) पहन, पात्र-चीवर ले, उसी गांव या निगम में भिक्षार्थ जाता हूं। भिक्षाटन से लौटकर, भोजन कर चुकने पर उसी गांव के पास के जंगल में विहार करता हूं। वहां जो घास या पत्ते होते हैं, उन्हें इकट्ठा कर, उन पर पालथी मारकर, शरीर को सीधा कर तथा स्मृति को मुख के ऊपर स्थापित कर बैठता हूं। उस समय मैं एक दिशा, दूसरी दिशा, तीसरी दिशा तथा चौथी दिशा को मैत्री-चित्त से व्याप्त करके विहार करता हूं। ऊपर, नीचे, बीच में, सर्वत्र, सब तरह से, सब प्रकार से, सारे लोक को विपुल, विशाल, अप्रमाण, अवैरी, अक्रोधी, मैत्री-युक्त चित्त से व्याप्त करके विहार करता हूं। उस समय मैं एक दिशा... करुणा-युक्त चित्त से व्याप्त करके विहार करता हूं। उस समय मैं एक दिशा... मुदिता-युक्त चित्त से व्याप्त करके विहार करता हूं। उस समय मैं एक दिशा... उपेक्षा-युक्त चित्त से व्याप्त करके विहार करता हूं।

"हे ब्राह्मण! इस अवस्था में जब मैं चंक्रमण करता हूं तब वह मेरा ब्रह्म चंक्रमण होता है। हे ब्राह्मण! इस अवस्था में जब मैं खड़ा होता हूं... बैठता हूं... लेटता हूं तब वह मेरा ब्रह्म लेटना होता है। हे ब्राह्मण! यह है मेरा वह ब्रह्म

उच्च-शयनासन, महा-शयनासन जो मुझे इस समय सहज ही प्राप्य है, अनायास सुलभ है।"

"हे गौतम! आश्चर्य है। हे गौतम! अद्भुत है। आप गौतम के अतिरिक्त अन्य किसे इस प्रकार का ब्रह्म उच्च-शयनासन, महा-शयनासन सहज ही प्राप्य होगा, अनायास ही सुलभ होगा!

"हे गौतम! वह आर्य उच्च-शयनासन, महा-शयनासन कौन-सा है जो आप गौतम को इस समय सहज ही प्राप्य है, अनायास ही सुलभ है?"

"हे ब्राह्मण! मैं जिस गांव या निगम के समीप रहता हूं, पूर्वाह्न होने पर (चीवर) पहन, पात्र-चीवर ले, उसी गांव या निगम में भिक्षार्थ जाता हूं। भिक्षाटन से लौटकर, भोजन कर चुकने पर उसी गांव के पास के जंगल में विहार करता हूं। वहां जो घास या पत्ते होते हैं उन्हें इकट्ठा कर, उन पर पालथी मारकर, शरीर को सीधा कर तथा स्मृति को मुख के ऊपर स्थापित कर बैठता हूं। उस समय मैं यह जानता हूं कि मेरा राग प्रहीण हो गया है, जड़-मूल से चला गया है, कटे ताड़ वृक्ष की तरह हो गया है, अभाव को प्राप्त हो गया है, भविष्य में उत्पत्ति की संभावना नहीं रही है, मेरा द्वेष प्रहीण हो गया है... संभावना नहीं रही है, मेरा मोह प्रहीण हो गया है... संभावना नहीं रही है।

"हे ब्राह्मण! इस अवस्था में जब मैं चंक्रमण करता हूं तब वह मेरा आर्य चंक्रमण होता है। हे ब्राह्मण! इस अवस्था में जब मैं खड़ा होता हूं... बैठता हूं... लेटता हूं तब वह मेरा आर्य लेटना होता है। हे ब्राह्मण! यह है मेरा वह आर्य उच्च-शयनासन, महा-शयनासन जो मुझे इस समय सहज ही प्राप्य है, अनायास सुलभ है।"

"हे गौतम! आश्चर्य है। हे गौतम! अद्भुत है। आप गौतम के अतिरिक्त अन्य किसे इस प्रकार का आर्य उच्च-शयनासन, महा-शयनासन सहज ही प्राप्य होगा, अनायास ही सुलभ होगा!

"सुंदर गौतम! बहुत सुंदर गौतम! जैसे कोई उल्टे को सीधा कर दे, ढँके को उघाड़ दे, मार्ग-भूले को रास्ता बता दे अथवा अंधेरे में मशाल धारण करे, जिससे आंख वाले चीजों को देख सकें। इसी प्रकार आप गौतम ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया है। मैं आप गौतम, धर्म तथा संघ की शरण जाता हूं। गौतम! आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

४. सरभ सुत्त

६५. ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान (बुद्ध) राजगृह में गिज्झकूट पर्वत पर विहार करते थे।

उस समय सरभ नाम के परिव्राजक को इस धर्म-विनय को छोड़कर गये थोड़ा ही समय हुआ था। वह राजगृह की परिषद में ऐसी वाणी बोलता था – 'मैंने शाक्यपुत्रीय श्रमणों का धर्म जान लिया और शाक्यपुत्रीय श्रमणों के धर्म को जानकर ही मैं उस धर्म-विनयसे परे हट गया हूं।'

उस समय बहुत से भिक्षु पूर्वाह्न में (चीवर) पहन, पात्र-चीवर ले, राजगृह में भिक्षाटन के लिए प्रविष्ट हुए।

उन भिक्षुओं ने राजगृह की परिषद में सरभ परिव्राजक द्वारा बोली जाने वाली ऐसी वाणी सुनी –'मैंने शाक्यपुत्रीय श्रमणों का धर्म जान लिया और शाक्यपुत्रीय श्रमणों के धर्म को जानकर ही मैं उस धर्म-विनय से परे हट गया हूं।'

तब वे भिक्षु राजगृह में भिक्षाटन करके,लौट चुकने पर, भोजन के अनंतर भगवान के पास गये। पास जाकर भगवान को नमस्कार कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे हुए उन भिक्षुओं ने भगवान को यह कहा –

"भंते! सरभ नाम का परिव्राजक कुछ ही समय हुआ इस धर्म-विनय को छोड़ गया है। वह राजगृह की परिषद में ऐसी वाणी बोलता है – 'मैंने शाक्यपुत्रीय श्रमणों का धर्म जान लिया और शाक्यपुत्रीय श्रमणों के धर्म को जानकर ही मैं उस धर्म-विनय से परे हट गया हूं।' भंते भगवान! अच्छा हो यदि आप कृपा करके सिप्पिनिका (नदी) के तट पर परिव्राजकाराम में जहां सरभ है, वहां पधारें।" भगवान ने मौन रहकर स्वीकार कर लिया।

तब भगवान शाम के समय, ध्यान से उठकर, सिप्पिनिका (नदी) के किनारे परिव्राजकाराम में सरभ परिव्राजक के पास गये। जाकर बिछे आसन पर बैठे। बैठकर भगवान ने सरभ परिव्राजक को यह कहा –

"हे सरभ! क्या तू सचमुच ऐसा कहता है –'मैंने शाक्यपुत्रीय श्रमणों का धर्म जान लिया और शाक्यपुत्रीय श्रमणों के धर्म को जानकर ही उस धर्म-विनय से परे हट गया हूं।' ऐसा पूछने पर सरभ परिव्राजक चुप रहा।

दूसरी बार भी भगवान ने सरभ परिव्राजक को यह कहा –"सरभ! कह! क्या तूने शाक्यपुत्रीय श्रमणों के धर्म को जान लिया? यदि उसमें कुछ कमी होगी तो मैं कमी पूरी कर दूंगा। यदि तेरी जानकारी पूरी होगी तो मैं समर्थन कर दूंगा।" दूसरी बार भी सरभ परिव्राजक चुप रहा।

तीसरी बार भी भगवान ने सरभ परिव्राजक को यह कहा –"सरभ! तू बता, क्या तूने शाक्यपुत्रीय श्रमणों के धर्म को जान लिया? यदि उसमें कुछ

कमी होगी, तो मैं पूरी कर दूंगा। यदि तेरी जानकारी पूरी होगी तो मैं समर्थन कर दूंगा।" तीसरी बार भी सरभ परिव्राजक चुप रहा।

उस समय राजगृह के उन परिव्राजकोंने सरभ परिव्राजक को यह कहा – "आयुष्मान! जो कुछ तुम श्रमण गौतम से पूछना चाहते हो उसी विषय में श्रमण गौतम तुम्हें निमंत्रित करते हैं। आयुष्मान सरभ! कह, क्या तूने शाक्यपुत्रीय श्रमणों के धर्म को जान लिया? यदि उसमें कुछ कमी होगी तो श्रमण गौतम पूरी कर देंगे। यदि तेरी जानकारी पूरी होगी, तो उसका समर्थन कर देंगे।"

ऐसा कहे जाने पर सरभ परिव्राजक चुपचाप, गड़बड़ाया हुआ, गर्दन गिरा, मुँह नीचे कर, सोचता हुआ, निस्तेज होकर बैठ गया।

तब भगवान ने सरभ परिव्राजक को चुपचाप, गड़बड़ाया हुआ, गर्दन गिरा, मुँह नीचे कर, सोचता हुआ, निस्तेज बैठा देख, उन परिव्राजकों को कहा –"यदि कोई परिव्राजक मुझे यह कहे कि सम्यक संबुद्ध होने की घोषणा करने पर भी अमुक विषय का ज्ञान नहीं है, तो मैं उससे ठीक से प्रश्न करूं, पूछताछ करूं, चर्चा करूं। मेरे द्वारा ठीक से प्रश्न किये जाने पर, पूछताछ किये जाने पर, चर्चा किये जाने पर, इस बात की गुंजाइश नहीं है कि वह इन तीन अवस्थाओं में से किसी एक अवस्था को प्राप्त न हो; दूसरी-दूसरी बात करे, बाहर की बात लाये; क्रोध, द्वेष वा असंतोष प्रकट करे; अथवा सरभ परिव्राजक की तरह चुपचाप, गड़बड़ाया हुआ, गर्दन गिरा, मुँह नीचे कर, सोचता हुआ निस्तेज होकर बैठ जाय।

"यदि कोई परिव्राजक मुझे यह कहे कि क्षीणास्रव होने की घोषणा करने पर भी, अमुक-अमुक आस्रव क्षीण नहीं हुए हैं, तो मैं उससे ठीक से प्रश्न करूं, पूछताछ करूं, चर्चा करूं। मेरे द्वारा ठीक से प्रश्न किये जाने पर, पूछताछ किये जाने पर, चर्चा किये जाने पर, इस बात की गुंजाइश नहीं है कि वह इन तीन अवस्थाओं में से किसी एक अवस्था को प्राप्त न हो; दूसरी-दूसरी बात करे, बाहर की बात लाये; क्रोध, द्वेष वा असंतोष प्रकट करे; अथवा सरभ परिव्राजक की तरह चुपचाप, गड़बड़ाया हुआ, गर्दन गिरा, मुँह नीचे कर, सोचता हुआ, निस्तेज होकर बैठ जाय।

"यदि कोई परिव्राजक मुझे यह कहे कि जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए धर्मोपदेश किया गया है, तदनुसार आचरण करनेवाले को यह दुःख के सम्यक क्षय की ओर नहीं ले जाता – तो मैं उससे ठीक से प्रश्न करूं, पूछताछ करूं, चर्चा करूं। मेरे द्वारा ठीक से प्रश्न किये जाने पर, पूछताछ किये जाने पर,

चर्चा किये जाने पर, इस बात की गुंजाइश नहीं है कि वह इन तीन अवस्थाओं में से किसी एक अवस्था को प्राप्त न हो; दूसरी-दूसरी बात करे, बाहर की बात लाये; क्रोध, द्वेष वा असंतोष प्रकट करे; अथवा सरभ परिव्राजक की तरह चुपचाप, गड़बड़ाया हुआ, गर्दन गिरा, मुँह नीचे कर, सोचता हुआ, निस्तेज होकर बैठ जाय।

इस प्रकार सिप्पिनिका (नदी) के तट पर स्थित परिव्राजकाराम में भगवान तीन बार सिंहनाद करके आकाशमार्ग से चले गये।

भगवान के चले जाने के थोड़े ही समय बाद वे परिव्राजक सरभ परिव्राजक को वाणी के कोड़े मारने लगे। "आयुष्मान सरभ! जैसे कोई बूढ़ा गीदड़ बड़े जंगल में सिंहनाद करने की बात कहकर गीदड़ की बोली ही बोले, सियार की बोली ही बोले, इसी प्रकार हे आयुष्मान सरभ! तूने श्रमण गौतम की अनुपस्थिति में मैं सिंहनाद करूंगा कहकर, उपस्थिति में केवल गीदड़ की बोली, सियार की बोली ही बोली है। जैसे कोई मुर्गी का चूजा मुर्गे की तरह बांग दूंगा कहकर मुर्गी के चूजे की ही आवाज निकाले, उसी प्रकार हे आयुष्मान सरभ! तूने श्रमण गौतम की अनुपस्थिति में मैं सिंहनाद करूंगा कहकर उपस्थिति में केवल गीदड़ की बोली, सियार की बोली ही बोली है। आयुष्मान सरभ! जैसे वृषभ समझता है कि शून्य गोशाला में उसे जोर से रंभना चाहिए, इसी प्रकार आयुष्मान सरभ! तू भी यह समझता है कि श्रमण गौतम की अनुपस्थिति में ही जोर से बोलना चाहिए।"

ऐसे उन परिव्राजकों ने चारों ओर से सरभ परिव्राजक को वाणी के कोड़े लगाये।

५. केसमुत्ति सुत्त

६६. ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान कोशल जनपद में महान भिक्षु-संघ के साथ चारिका करते हुए केशमुत्त नामक कालामों के निगम में गये। केशमुत्त के कालामों ने सुना कि शाक्यकुल से प्रव्रजित शाक्यपुत्र श्रमण गौतम केशमुत्त पधारे हैं। उन भगवान गौतम का इस प्रकार से सु-यश फैला हुआ है –'वह भगवान पूज्य हैं, सम्यक संबुद्ध हैं, विद्या तथा आचरण से युक्त हैं... प्रकाशित करते हैं। ऐसे अरहंतों का दर्शन करना अच्छा होता है।'

तब केशमुत्तिय कालाम भगवान के पास गये। पास जाकर कुछ भगवान को नमस्कार कर एक ओर बैठ गये, कुछ भगवान के साथ कुशलक्षेम का वार्तालाप करके एक ओर बैठ गये, कुछ भगवान को हाथ जोड़कर नमस्कार करके एक ओर बैठ गये, कुछ (अपना) नाम-गोत्र सुनाकर एक ओर बैठ गये,

कुछ चुपचाप एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे केशमुत्तिय कालामों ने भगवान को यह कहा –

"भंते! कुछ श्रमण-ब्राह्मण केशमुत्त आते हैं। वे अपने ही मत को प्रकाशित करते हैं, उसी की बड़ाई करते हैं। दूसरे के मत की निंदा करते हैं, अनादर करते हैं, तिरस्कार करते हैं, उसे कुचल देते हैं। भंते! दूसरे भी कुछ श्रमण-ब्राह्मण केशमुत्त आते हैं। वे भी अपने ही मत को प्रकाशित करते हैं, उसी की बड़ाई करते हैं। दूसरे के मत की निंदा करते हैं, अनादर करते हैं, तिरस्कार करते हैं, उसे कुचल देते हैं। भंते! इससे हमारे मन में शक पैदा होता है, संदेह पैदा होता है कि इन श्रमणों में से किसने सत्य कहा, किसने असत्य?

"हे कालामो! शक करना ठीक है। संदेह करना ठीक है। शक करने ही की जगह पर संदेह उत्पन्न होता है।

"हे कालामो! आओ। तुम किसी बात को केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात अनुश्रुत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात परंपरागत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात इसी प्रकार कही गई है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह हमारे धर्म-ग्रंथ के अनुकूल है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह तर्कसम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह अनुमान-सम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इसके कारणों की सावधानीपूर्वक परीक्षा कर ली गयी है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इस पर हमने विचार कर इसका अनुमोदन किया है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहनेवाले का व्यक्तित्व भव्य (आकर्षक) है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है। हे कालामो! जब तुम स्वानुभव से अपने आप ही यह जानो कि ये बातें अकुशल हैं, ये बातें सदोष हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित हैं, इन बातों के अनुसार चलने से अहित होता है, दुःख होता है – तब हे कालामो! तुम उन बातों को छोड़ दो।

"तो हे कालामो! क्या मानते हो, पुरुष के अंदर जो लोभ उत्पन्न होता है, वह उसके हित के लिए होता है, या अहित के लिए?"

"भंते! अहित के लिए।"

"हे कालामो! जो लोभी है, जो लोभ से अभिभूत है, जो असंयत है, वह प्राणी-हत्या भी करता है, चोरी भी करता है, परस्त्रीगमन भी करता है, झूठ भी बोलता है, दूसरों को भी वैसी प्रेरणा देता है; यह दीर्घकाल तक उसके अहित तथा दुःख का कारण होता है।"

"भंते! ऐसा ही है।"

"तो हे कालामो! क्या मानते हो, पुरुष के अंदर जो द्वेष उत्पन्न होता है, वह उसके हित के लिए होता है, या अहितके लिए?"

"भंते! अहित के लिए।"

"हे कालामो! जो द्वेषी है, जो द्वेष से अभिभूत है, जो असंयत है, वह प्राणी-हत्या भी करता है, चोरी भी करता है, परस्त्रीगमन भी करता है, झूठ भी बोलता है, दूसरों को भी वैसी प्रेरणा देता है; यह दीर्घकाल तक उसके अहित तथा दुःख का कारण होता है।"

"भंते! ऐसा ही है।"

"तो हे कालामो! क्या मानते हो, पुरुष के अंदर जो मोह उत्पन्न होता है, वह उसके हित के लिए होता है या अहितके लिए?"

"भंते! अहित के लिए।"

"हे कालामो! जो मूढ़ है, जो मोह से अभिभूत है, जो असंयत है, वह प्राणी-हत्या भी करता है, चोरी भी करता है, परस्त्रीगमन भी करता है, झूठ भी बोलता है, दूसरों को भी वैसी प्रेरणा देता है; यह दीर्घकाल तक उसके अहित तथा दुःख का कारण होता है।

"भंते! ऐसा ही है।"

"तो कालामो! क्या मानते हो, ये धर्म कुशल हैं या अकुशल?"

"भंते! अकुशल हैं।"

"सदोष हैं या निर्दोष?"

"भंते! सदोष हैं।"

"विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित हैं या प्रशंसित हैं?"

"भंते! विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित हैं।"

"पूरी तरह से आचरण करने पर अहित के लिए, दुःख के लिए होते हैं, अथवा नहीं होते? इस विषय में तुम्हें कैसा लगता है?"

"भंते! पूरी तरह से आचरण करने पर, अहित के लिए, दुःख के लिए होते हैं। इस विषय में हमें ऐसा ही लगता है।"

"तो हे कालामो! यह जो कहा –'हे कालामो! आओ। तुम किसी बात को केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात अनुश्रुत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात परंपरागत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि

यह बात इसी प्रकार कही गई है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह हमारे धर्म-ग्रंथ के अनुकूल है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह तर्कसम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह अनुमान-सम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इसके कारणों की सावधानीपूर्वक परीक्षा कर ली गयी है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इस पर हमने विचार कर इसका अनुमोदन किया है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहनेवाले का व्यक्तित्व भव्य (आकर्षक) है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है। हे कालामो! जब तुम स्वानुभव से अपने आप ही यह जानो कि ये बातें अकुशल हैं, ये बातें सदोष हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित हैं, इन बातों के अनुसार चलने से अहित होता है, दुःख होता है – तब हे कालामो! तुम उन बातों को छोड़ दो' – यह जो कुछ कहा गया, यह इसी संबंध में कहा गया।

"हे कालामो! आओ। तुम किसी बात को... केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है। हे कालामो! जब तुम स्वानुभव से अपने आप ही यह जानो कि ये बातें कुशल हैं, ये बातें निर्दोष हैं, ये बातें विज्ञ-पुरुषों द्वारा प्रशंसित हैं, इन बातों के अनुसार चलने से हित होता है, सुख होता है – तब हे कालामो! तुम इन बातों के अनुसार आचरण करो।

"तो हे कालामो! क्या मानते हो, पुरुष के अंदर जो अलोभ उत्पन्न होता है, वह उसके हित के लिए होता है या अहित के लिए?"

"भंते! हित के लिए।"

"हे कालामो! जो अलोभी है, जो लोभ से अभिभूत नहीं है, जो असंयत नहीं है, वह प्राणी-हत्या भी नहीं करता, चोरी भी नहीं करता, परस्त्रीगमन भी नहीं करता, झूठ भी नहीं बोलता, दूसरों को भी वैसी प्रेरणा नहीं देता; यह दीर्घकाल तक उसके हित तथा सुख का कारण होता है।"

"भंते! ऐसा ही है।"

"तो हे कालामो! क्या मानते हो, पुरुष के अंदर जो अद्वेष उत्पन्न होता है, वह उसके हित के लिए होता है या अहित के लिए?"

"भंते! हित के लिए।"

"हे कालामो! जो अद्वेषी है, जो द्वेष से अभिभूत नहीं है, जो असंयत नहीं है, वह प्राणी-हत्या भी नहीं करता, चोरी भी नहीं करता, परस्त्रीगमन भी नहीं करता, झूठ भी नहीं बोलता, दूसरों को भी वैसी प्रेरणा नहीं देता; यह दीर्घकाल तक उसके हित तथा सुख का कारण होता है।"

“भंते! ऐसा ही है।”

“तो हे कालामो! क्या मानते हो, पुरुष के अंदर जो अमोह उत्पन्न होता है, वह उसके हित के लिए उत्पन्न होता है, या अहितके लिए?”

“भंते! हित के लिए।”

“हे कालामो! जो मूढ़ नहीं है, जो मूढ़ता से अभिभूत नहीं है, जो असंयत नहीं है, वह प्राणी-हत्या भी नहीं करता, चोरी भी नहीं करता, परस्त्रीगमन भी नहीं करता, झूठ भी नहीं बोलता, दूसरों को भी वैसी प्रेरणा नहीं देता; यह दीर्घकाल तक उसके हित तथा सुख का कारण होता है।”

“भंते! ऐसा ही है।”

“तो कालामो! क्या मानते हो, ये धर्म कुशल हैं या अकुशल?”

“भंते! कुशल हैं।”

“सदोष हैं या निर्दोष?”

“भंते! निर्दोष हैं।”

“विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित हैं, या प्रशंसित?”

“भंते! विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसित हैं।”

“पूरी तरह से आचरण करने पर सुख के लिए होते हैं, अथवा नहीं होते? इस विषय में तुम्हें कैसा लगता है?”

“भंते! पूरी तरह से आचरण करने पर, हित के लिए, सुख के लिए होते हैं। इस विषय में हमें ऐसा ही लगता है।”

“तो हे कालामो! यह जो कहा –‘हे कालामो! आओ। तुम किसी बात को केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात अनुश्रुत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात परंपरागत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात इसी प्रकार कही गई है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह हमारे धर्म-ग्रंथ के अनुकूल है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह तर्कसम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह अनुमान-सम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इसके कारणों की सावधानीपूर्वक परीक्षा कर ली गयी है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इस पर हमने विचार कर इसका अनुमोदन किया है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहनेवाले का व्यक्तित्व भव्य (आकर्षक) है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है। हे कालामो! जब तुम स्वानुभव से अपने आप ही

यह जान लो कि ये बातें कुशल हैं, ये बातें निर्दोष हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसित हैं, इन बातों के अनुसार चलने से हित होता है, सुख होता है – तब हे कालामो! तुम इन बातों के अनुसार चलो' – यह जो कुछ कहा गया, यह इसी संबंध में कहा गया।

"हे कालामो! जो आर्य-श्रावक ! इस प्रकार लोभरहित होता है, क्रोध-रहित होता है, मूढ़ता-रहित होता है, जानकार होता है, स्मृतिमान होता है, वह एक दिशा, दूसरी दिशा, तीसरी दिशा तथा चौथी दिशा को मैत्री-चित्त से व्याप्त करके विहार करता है। ऊपर, नीचे, बीच में, सर्वत्र, सब तरह से, सब प्रकार से, सारे लोक को विपुल, विस्तृत, अपरिमेय, अवैरी, अद्वेषी, मैत्री-युक्त चित्त से व्याप्त करके विहार करता है। ...करुणा-युक्त चित्त से... मुदिता-युक्त चित्त से... उपेक्षा-युक्त चित्त से व्याप्त करके विहारकरता है।

"हे कालामो! उस प्रकार के अवैरी-चित्त, अद्वेषी चित्त, असंक्लिष्ट-चित्त, शुद्ध-चित्त आर्य-श्रावक को इसी जीवन में चार प्रकार के आश्वासन प्राप्त हो जाते हैं –

"'यदि परलोक है, यदि सुकृत-दुष्कृत का फल मिलता है, तो यह होगा कि शरीर छूटने पर, मरने के बाद, मैं सुगति को प्राप्त होऊंगा, मैं स्वर्गलोक में पैदा होऊंगा – यह उसे पहला आश्वासन प्राप्त हो जाता है।

"'यदि परलोक नहीं है, यदि सुकृत-दुष्कृत का फल नहीं मिलता है, तो मैं यहां इस जीवन में अवैरी होकर, अद्वेषी होकर, दुःख-रहित होकर, सुखी होकर विचरण करता हूं – यह उसे दूसरा आश्वासनप्राप्त हो जाता है।

"'यदि करने से किसी का बुरा होता है, तो मैं किसी का बुरा नहीं सोचता हूं, जब मैं कोई पाप-कर्म नहीं करता हूं तो मुझे दुःख कैसे स्पर्श करेगा? –यह उसे तीसरा आश्वासन प्राप्त हो जाता है।

"'यदि करने से किसी का बुरा नहीं होता, तो मैं अपने आप को दोनों दृष्टियों से विशुद्ध पाता हूं – यह उसे चौथा आश्वासन प्राप्त हो जाता है।

"हे कालामो! उस प्रकार के अवैरी-चित्त, अद्वेषी-चित्त, असंक्लिष्ट-चित्त, शुद्ध-चित्त, आर्य-श्रावक को इसी जीवन में चार प्रकार के आश्वासन प्राप्त हो जाते हैं।"

"भगवान! ऐसा ही है। सुगत! ऐसा ही है। भंते! इस प्रकार के अवैरी-चित्त, अद्वेषी-चित्त, असंक्लिष्ट-चित्त, शुद्ध-चित्त आर्य-श्रावक को इसी जीवन में चार प्रकार के आश्वासन प्राप्त हो जाते हैं। 'यदि परलोक है, यदि

सुकृत-दुष्कृत का फल मिलता है तो यह होगा कि शरीर छूटने पर, मरने के बाद मैं सुगति को प्राप्त होकर स्वर्गलोक में पैदा होऊंगा –यह उसे पहला आश्वासन प्राप्त हो जाता है।

"'यदि परलोक नहीं है, यदि सुकृत-दुष्कृत का फल नहीं मिलता है, तो मैं यहां इस जीवन में अवैरी होकर, अद्वेषी होकर, दुःख-रहित होकर, सुखी होकर विचरण करता हूं – यह उसे दूसरा आश्वासन प्राप्त हो जाता है।

"'यदि करने से किसी का बुरा होता है, तो मैं किसी का बुरा नहीं सोचता हूं, जब मैं कोई पाप-कर्म नहीं करता हूं तो मुझे दुःख कैसे स्पर्श करेगा? –यह उसे तीसरा आश्वासन प्राप्त हो जाता है।

"'यदि करने से किसी का बुरा नहीं होता, तो मैं अपने आप को दोनों दृष्टियों से विशुद्ध पाता हूं –यह उसे चौथा आश्वासन प्राप्त हो जाता है। भंते! इस प्रकार के अवैरी-चित्त, अद्वेषी-चित्त, असंक्लिष्ट-चित्त, शुद्ध-चित्त आर्य-श्रावक को इसी जीवन में ये चार प्रकार के आश्वासन प्राप्त हो जाते हैं।

"भंते! सुंदर है... यह हम भगवान की, धर्म की तथा भिक्षु-संघ की शरण ग्रहण करते हैं। भंते भगवान! आज से जीवनपर्यंत आप हमें शरणागत उपासक जानें।"

६. साळ्ह सुत्त

६७. ऐसा मैंने सुना। एक समय आयुष्मान नन्दक श्रावस्ती में मिगार-माता के पूर्वाराम-प्रासाद में विहार कर रहे थे।

तब मिगार का पोता साळ्ह तथा सेखुनिय का पोता साण आयुष्मान नन्दक के पास गये। जाकर आयुष्मान नन्दक को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए मिगार के पोते साळ्ह को आयुष्मान नन्दक ने यह कहा –'हे साळ्ह! आओ। तुम किसी बात को केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात अनुश्रुत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात परंपरागत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात इसी प्रकार कही गई है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह हमारे धर्म-ग्रंथ के अनुकूल है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह तर्कसम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह अनुमान-सम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इसके कारणों की सावधानीपूर्वक परीक्षा कर ली गयी है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इस पर हमने विचार कर इसका अनुमोदन किया है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहनेवाले का व्यक्तित्व भव्य (आकर्षक) है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है। हे साळ्ह! जब तुम

स्वानुभव से अपने आप यह जान लो कि ये बातें अकुशलहैं, ये बातें सदोष हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित हैं, इन बातों के अनुसार चलने से अहित होता है, दुःख होता है –तब हे साळ्ह! तुम इन बातों को छोड़ दो।

"तो साळ्ह! क्या मानते हो, लोभ है?"

"भंते! है।"

"साळ्ह! मैं लोभ को ही अभिध्या कहता हूं। हे साळ्ह! जो लोभी है, जो लोभग्रस्त है, वह प्राणी-हत्या भी करता है, चोरी भी करता है, परस्त्रीगमन भी करता है, झूठ भी बोलता है, दूसरे को भी वैसी प्रेरणा देता है; यह दीर्घकाल तक उसके अहिततथा दुःख का कारण होता है।"

"भंते! हां।"

"तो साळ्ह! क्या मानते हो, द्वेष है?"

"भंते! है।"

"साळ्ह! मैं द्वेष को ही व्यापाद कहता हूं। हे साळ्ह! जो द्वेष-युक्त है, जो विद्वेषी (दुर्भावनापूर्ण) है वह प्राणी-हत्या भी करता है, चोरी भी करता है, परस्त्रीगमन भी करता है, झूठ भी बोलता है, दूसरे को भी वैसी प्रेरणा देता है; यह दीर्घकालतक उसके अहिततथा दुःख का कारण होता है।"

"भंते! हां।"

"तो साळ्ह! क्या मानते हो, मोह है?"

"भंते! है।"

"साळ्ह! मैं मोह को ही अविद्या कहता हूं। हे साळ्ह! जो मूढ़ है, जो अविद्याग्रस्त है, वह प्राणी-हत्या भी करता है, चोरी भी करता है, परस्त्रीगमन भी करता है, झूठ भी बोलता है, दूसरे को भी वैसी प्रेरणा देता है; यह दीर्घकाल तक उसके अहिततथा दुःख का कारण होता है।"

"भंते! हां।"

"तो साळ्ह! क्या मानते हो, ये धर्म कुशल हैं या अकुशल?"

"भंते! अकुशल।"

"सदोष या निर्दोष?"

"भंते! सदोष।"

"विज्ञों द्वारा निंदित या विज्ञों द्वारा प्रशंसित?"

"भंते! विज्ञों द्वारा निंदित।"

"पूरी तरह से आचरण करने पर, अहित के लिए, दुःख के लिए होते हैं अथवा नहीं होते? इस विषय में तुम क्या सोचते हो?"

"भंते! पूरी तरह से आचरण करने पर, अहित के लिए, दुःख के लिए होते हैं। इस विषय में हम यही सोचते हैं।"

"तो हे साळ्ह! यह जो कहा –'हे साळ्ह! आओ। तुम किसी बात को केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात अनुश्रुत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात परंपरागत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात इसी प्रकार कही गई है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह हमारे धर्म-ग्रंथ के अनुकूल है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह तर्कसम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह अनुमान-सम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इसके कारणों की सावधानीपूर्वक परीक्षा कर ली गयी है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इस पर हमने विचार कर इसका अनुमोदन किया है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहनेवाले का व्यक्तित्व भव्य (आकर्षक) है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है। हे साळ्ह! जब तुम स्वानुभव से अपने आप ही यह जान लो कि ये बातें अकुशल हैं, ये बातें सदोष हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित हैं, इन बातों के अनुसार चलने से अहित होता है, दुःख होता है – तो हे साळ्ह! तुम इन बातों को छोड़ दो।' –यह जो कुछ कहा गया, यह इसी संबंध में कहा गया।

"इस प्रकार साळ्ह! तुम किसी बात को... केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है। हे साळ्ह! जब तुम स्वानुभव से अपने आप ही यह जान लो कि ये बातें कुशल हैं, ये बातें निर्दोष हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसित हैं, इन बातों के अनुसार चलने से हित होता है, सुख होता है – तो हे साळ्ह! तुम इन बातों के अनुसार आचरण करो।

"तो साळ्ह! क्या मानते हो, अलोभ है?"

"भंते! है।"

"साळ्ह! मैं अलोभ को ही अनभिध्या कहता हूं। हे साळ्ह! जो निर्लोभी है, जो लोभरहित है, वह न प्राणी-हत्या करता है, न चोरी करता है, न परस्त्रीगमन करता है, न झूठ बोलता है, न दूसरे को वैसी प्रेरणा देता है; यह दीर्घकाल तक उसके हित तथा सुख का कारण होता है।"

"भंते! ऐसा ही है।"

"तो साळ्ह! क्या मानते हो, अद्वेष है?"

"भंते! है।"

"साळ्ह! मैं अद्वेष को ही अब्यापाद कहता हूं। साळ्ह! जो द्वेष-रहित है, जो अविद्वेषी है, वह न प्राणी-हत्या करता है... न झूठ बोलता है, न दूसरे को वैसी प्रेरणा देता है; यह दीर्घकालतक उसके हित तथा सुख का कारण होता है।"

"भंते! ऐसा ही है।"

"तो साळ्ह! क्या मानते हो, अमोह है?"

"भंते! है।"

"साळ्ह! मैं अमोह को ही विद्या कहता हूं। साळ्ह! जो मूढ़ता-रहित है, जो विद्या-प्राप्त है, वह न प्राणी-हत्या करता है... न झूठ बोलता है, न दूसरे को वैसी प्रेरणा देता है; यह दीर्घकालतक उसके हित तथा सुख का कारण होता है।"

"भंते! ऐसा ही है।"

"तो साळ्ह! क्या मानते हो, ये धर्म कुशल हैं या अकुशल?"

"भंते! कुशल।"

"सदोष या निर्दोष?"

"भंते! निर्दोष।"

"विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित या विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसित?"

"भंते! विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसित।"

"पूरी तरह से आचरण करने पर, हित के लिए, सुख के लिए होते हैं अथवा नहीं होते? इस विषय में तुम क्या सोचते हो?"

"भंते! पूरी तरह से आचरण करने पर, हित के लिए, सुख के लिए होते हैं। इस विषय में हम यही सोचते हैं।"

"तो हे साळ्ह! यह जो कहा –'हे साळ्ह! आओ। तुम किसी बात को केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात अनुश्रुत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात परंपरागत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात इसी प्रकार कही गई है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह हमारे धर्म-ग्रंथ के अनुकूल है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह तर्कसम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह अनुमान-सम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इसके कारणों की सावधानीपूर्वक परीक्षा कर ली गयी है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इस पर हमने विचार कर इसका अनुमोदन किया है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहनेवाले का

व्यक्तित्व भव्य (आकर्षक) है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है। हे साळ्ह! जब तुम स्वानुभव से अपने आप ही यह जान लो कि ये बातें कुशल हैं, ये बातें निर्दोष हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसित हैं, इन बातों के अनुसार चलने से हित होता है, सुख होता है – तब हे साळ्ह! तुम इन बातों के अनुसार आचरण करो' – यह जो कुछ कहा गया, वह इसी संबंध में कहा गया।

"हे साळ्ह! जो आर्य-श्रावक इस प्रकार लोभरहित होता है, द्वेष-रहित होता है, मूढ़ता-रहित होता है, संप्रज्ञानी होता है, स्मृतिमान होता है, वह एक दिशा, दूसरी दिशा, तीसरी दिशा तथा चौथी दिशा को मैत्री-युक्त चित्त से व्याप्त करके विहार करता है,... करुणा-युक्त चित्त से... मुदिता-युक्त चित्त से... उपेक्षा-युक्त चित्त से व्याप्त करके विहार करता है। ऊपर, नीचे, बीच में सर्वत्र, सब तरह से, सब प्रकार से, सारे लोक को, विपुल, उदार, अपरिमेय, अवैरी, अद्वेषी, उपेक्षा-युक्त चित्त से व्याप्त करके विहार करता है। वह यथाभूत जानता है – 'यह है, यह हीन है, यह प्रणीत (=श्रेष्ठ) अवस्था है, इस संज्ञा से श्रेष्ठतर अवस्था में जाया जा सकता है।' तब उस इस तरह जानने वाले और देखने वाले का चित्त कामास्रवों से भी विमुक्त हो जाता है, भवास्रवों से भी विमुक्त हो जाता है, अविद्यास्रवों से भी विमुक्त हो जाता है, विमुक्त होने पर, 'विमुक्त हूं' यह ज्ञान हो जाता है। वह यथाभूत जान जाता है – 'जन्म (का कारण) क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्यवास (का उद्देश्य) पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया। अब यहां जन्म के लिए और कुछ कारण नहीं रह गया।'

"वह यह यथाभूत जान जाता है – 'पहले लोभ था, वह अकुशल था। अब वह नहीं रहा है, यह कुशल है। पहले द्वेष था, वह अकुशल था। अब वह नहीं रहा है, यह कुशल है। पहले मोह था, वह अकुशल था। अब वह नहीं रहा है, यह कुशल है।' इस प्रकार वह इसी जीवन में तृष्णा-विहीन, निर्वाणप्राप्त, शांत, सुखी, अपने से ब्रह्मभूत होकर विहार करता है।"

७. कथावत्थु सुत्त

६८. "भिक्षुओ, तीन कथा-वस्तुएं हैं। कौन-सी तीन?

"भिक्षुओ, या तो भूतकाल संबंधी बातचीत हो – 'भूतकाल में ऐसा हुआ' – या भविष्यकाल संबंधी बातचीत हो – 'भविष्य में ऐसा होगा' – या वर्तमान काल संबंधी बातचीत हो – 'इस समय वर्तमान में ऐसा है।'

"भिक्षुओ, बातचीत से पता लग जाता है कि यह आदमी वार्तालाप करने योग्य है या नहीं?

"भिक्षुओ, यदि कोई आदमी 'हां या नहीं' में उत्तर दिये जाने वाले प्रश्न का 'हां या नहीं' में उत्तर नहीं देता, विभक्त करके उत्तर देने योग्य प्रश्न का विभक्त करके उत्तर नहीं देता, प्रतिप्रश्न पूछकर उत्तर देने योग्य प्रश्न का प्रतिप्रश्न पूछकर उत्तर नहीं देता, उत्तर न देने योग्य प्रश्न को बिना उत्तर दिये टाल नहीं देता, तो भिक्षुओ, ऐसा आदमी वार्तालाप करने योग्य नहीं होता।

"भिक्षुओ, यदि कोई आदमी 'हां या नहीं' में उत्तर दिये जाने वाले प्रश्न का 'हां या नहीं' में उत्तर देता है, विभक्त करके उत्तर देने योग्य प्रश्न का विभक्त करके उत्तर देता है, प्रतिप्रश्न पूछ कर उत्तर देने योग्य प्रश्न का प्रतिप्रश्न पूछकर उत्तर देता है, उत्तर न देने योग्य प्रश्न को बिना उत्तर दिये ही टाल देता है, तो भिक्षुओ, ऐसा आदमी वार्तालाप करने योग्य होता है।

"भिक्षुओ, बातचीत से पता लग जाता है कि यह आदमी वार्तालाप करने योग्य है या नहीं है?

"भिक्षुओ, यदि कोई आदमी प्रश्न पूछने पर किसी एक निष्कर्ष पर स्थिर नहीं रहता, किसी एक मान्यता पर स्थिर नहीं रहता, किसी एक सर्वमान्य तर्क पर स्थिर नहीं रहता, प्रश्नोत्तर की सामान्य प्रक्रिया को नहीं जानता, तो भिक्षुओ, ऐसा आदमी वार्तालाप करने योग्य नहीं होता।

"भिक्षुओ, यदि कोई आदमी प्रश्न पूछने पर किसी एक निष्कर्ष पर स्थिर रहता है, किसी एक मान्यता पर स्थिर रहता है, किसी एक सर्वमान्य तर्क पर स्थिर रहता है, प्रश्नोत्तर की सामान्य प्रक्रिया को जानता है, तो भिक्षुओ, ऐसा आदमी वार्तालाप करने योग्य होता है।

"भिक्षुओ, बातचीत से पता लग जाता है कि यह आदमी वार्तालाप करने योग्य है या नहीं?

"भिक्षुओ, यदि कोई आदमी प्रश्न पूछने पर दूसरी-दूसरी बात करता है, बाहरी बात लाता है, कोप, द्वेष वा असंतोष प्रकट करता है, तो भिक्षुओ, ऐसा आदमी वार्तालाप करने योग्य नहीं होता।

"भिक्षुओ, यदि कोई आदमी प्रश्न पूछने पर दूसरी-दूसरी बात नहीं करता, बाहरी बात नहीं लाता, कोप, द्वेष वा असंतोष प्रकट नहीं करता, तो भिक्षुओ, ऐसा आदमी वार्तालाप करने योग्य होता है।

"भिक्षुओ, बातचीत से पता लग जाता है कि यह आदमी वार्तालाप करने योग्य है या नहीं?

"भिक्षुओ, यदि कोई आदमी प्रश्न पूछने पर, जहां-तहां से सूत्र उद्धृत करता है, जहां-तहां से सूत्र उद्धृत करके तर्क को काट देता है, हँसकर उपहास

करता है और जब तर्क देने में कोई लड़खड़ाता है तब उसे धर दबाता है, तो भिक्षुओ, ऐसा आदमी वार्तालाप करने योग्य नहीं होता।

“भिक्षुओ, यदि कोई आदमी प्रश्न पूछने पर न जहां-तहां से सूत्र उद्धृत करता है, न जहां-तहां से सूत्र उद्धृत करके तर्क को काट देता है, न हँसकर उपहास करता है, न तो तर्क देने में किसी के लड़खड़ाने पर उसे धर दबाता है, तो भिक्षुओ, ऐसा आदमी वार्तालाप करने योग्य होता है।

“भिक्षुओ, बातचीत से पता लग जाता है कि इस आदमी में वार्तालाप करने के आवश्यक आधार (प्रत्यय) हैं या नहीं?

“भिक्षुओ, जो ध्यान देकर नहीं सुनता वह वार्तालाप करने के आवश्यक आधार से युक्त नहीं होता, जो ध्यान देकर सुनता है वह वैसा होता है। जो वैसा होता है वह एक धर्म (आर्य-धर्म) को जानता है, एक धर्म (दुःखसत्यधर्म) को अच्छी तरह जानता है, एक धर्म (अकुशल) का त्याग करता है, एक धर्म (अर्हत्व) का साक्षात करता है। वह एक धर्म को जानकर, एक धर्म को अच्छी तरह जानकर, एक धर्म का त्याग कर, एक धर्म का साक्षात करता है, इस प्रकार वह एक धर्म अर्थात सम्यक-विमुक्ति को पा लेता है। भिक्षुओ, यही कथा का लाभ है, यही मंत्रणा का लाभ है, यही वार्तालाप करने के आवश्यक आधार (प्रत्यय) से युक्त होने का लाभ है और यही ध्यान देने का लाभ है जो कि यह उपादान-रहित चित्त की विमुक्ति है।”

“ये विरुद्धा सल्लपन्ति, विनिविट्ठा समुस्सिता।
अनरियगुणमासज्ज, अञ्ञोञ्ञविवरेसिनो॥

“दुब्भासितं विक्खलितं, सम्पमोहं पराजयं।
अञ्ञोञ्ञस्साभिनन्दन्ति, तदरियो कथनाचरे॥

“सचे चस्स कथाकामो, कालमञ्ञाय पण्डितो।
धम्मट्ठपटिसंयुत्ता, या अरियचरिता कथा॥

“तं कथं कथये धीरो, अविरुद्धो अनुस्सितो।
अनुन्नतेन मनसा, अपळासो असाहसो॥

“अनुसूयायमानो सो, सम्मदञ्ञाय भासति।
सुभासितं अनुमोदेय्य, दुब्भट्ठे नापसादये॥

“उपारम्भं न सिक्खेय्य, खलितञ्च न गाहये।
नाभिहरे नाभिमद्दे, न वाचं पयुतं भणे॥

“अञ्ञातत्थं पसादत्थं, सतं वे होति मन्तना।
एवं खो अरिया मन्तेन्ति, एसा अरियान मन्तना।
एतदञ्ञाय मेधावी, न समुस्सेय्य मन्तये”ति॥

[“जो कथन अभिनिवेश के वशीभूत होकर, अभिमान के कारण विरोधी होता है, जो अनार्य-गुण को प्राप्त कर परस्पर छिद्रान्वेषण युक्त होता है, जो परस्पर एक दूसरे के अयथार्थ-भाषण, स्खलन, प्रमादवश बोले गये शब्दों तथा एक दूसरे की पराजय को लेकर प्रसन्नता से किया गया होता है, आर्य लोग वैसा कथन नहीं करते।

यदि कोई पंडित बात करने का उचित समय जानकर धर्म तथा अर्थ से युक्त, आर्य-चरित-युक्त बातचीत करना चाहे तो धैर्यवान, अविरोधी तथा अभिमानशून्य आदमी को चाहिए कि वह दुराग्रह-रहित हो, दुस्साहस-रहित हो, ईर्ष्या-रहित हो, शांतचित्त से अच्छी तरह सोच-समझकर बातचीत करे। उसे चाहिए कि वह दूसरों के शुभकथन का अनुमोदन करे और अनुचित बोलने का बुरा न माने। उलाहना देना न सीखे, स्खलन को लेकर न बैठे, यूं ही सूत्रादि को उद्धृत न करे, न वैसा करके प्रश्न को दबावे, न झूठी बात बोले। सत्पुरुषों की बातचीत ज्ञान के लिए होती है तथा मन में प्रसन्नता पैदा करने के लिए होती है। आर्य-जन इसी प्रकार वार्तालाप करते हैं, यही आर्य-जनों की मंत्रणा है। इस बात को जानकर मेधावी पुरुष को चाहिए कि अभिमानयुक्त होकर बातचीत न करे।”]

८. अन्यतैर्थिक सुत्त

६९. “भिक्षुओ, यदि अन्यतैर्थिक (दूसरे मतों के) परिव्राजक ऐसा पूछें कि आयुष्मानो, ये तीन धर्म हैं। कौन-से तीन? राग, द्वेष और मोह। आयुष्मानो! ये तीन धर्म हैं। आयुष्मानो! इन तीनों धर्मों में किसकी क्या विशेषता है? किसमें क्या खास बात है? किसका क्या विभेद है? भिक्षुओ, दूसरे परिव्राजकों द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर, तुम इसका क्या निराकरण करोगे?”

“भंते! भगवान ही धर्म के मूल हैं, भगवान ही धर्म के नेता हैं, भगवान ही धर्म के शरण-स्थान हैं। भंते! अच्छा हो यदि इस कथन के अर्थ को भगवान ही प्रकाशित करें। भगवान से सुनकर भिक्षु धारण करेंगे।”

“तो भिक्षुओ, सुनो। अच्छी तरह मन में धारण करो। कहता हूं।” ‘भंते, अच्छा!’ कहकर उन भिक्षुओं ने भगवान को प्रतिवचन दिया। भगवान ने यह कहा –

"भिक्षुओ, यदि अन्यतैर्थिक (दूसरे मतों के) परिव्राजक ऐसा पूछें कि आयुष्मानो, ये तीन धर्म हैं। कौन-से तीन? राग, द्वेष और मोह। आयुष्मानो, ये तीन धर्म हैं। आयुष्मानो! इन तीनों धर्मों में किसकी क्या विशेषता है? किसमें क्या खास बात है? किसका क्या विभेद है? भिक्षुओ, दूसरे परिव्राजकों द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर तुम इसका इस प्रकार निराकरण करना – 'आयुष्मानो! राग में अल्पदोष है किंतु उससे मुक्ति सहज नहीं, द्वेष में महान दोष है किंतु उससे मुक्ति सहज है; मोह में महान दोष है और उससे भी मुक्ति सहज नहीं।'

"'आयुष्मानो! इसका क्या हेतु है, क्या कारण है जिससे अनुत्पन्न राग उत्पन्न होता है, उत्पन्न अत्यधिक विपुल होता है?

"'कहना चाहिए कि शुभ-निमित्त इसका हेतु है, कारण है। शुभ-निमित्त का अयथार्थ चिंतन करने से अनुत्पन्न राग उत्पन्न होता है, उत्पन्न राग अत्यधिक विपुल होता है। आयुष्मानो! यह हेतु है, यह कारण है, जिससे अनुत्पन्न राग उत्पन्न होता है, उत्पन्न राग अत्यधिक विपुल होता है।

"'आयुष्मानो! इसका क्या हेतु है, क्या कारण है जिससे अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न होता है, तथा उत्पन्न द्वेष अत्यधिक विपुल होता है।

"'कहना चाहिए कि प्रतिकूल भाव इसका हेतु है, कारण है। प्रतिकूल भाव का अयथार्थ चिंतन करने से अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न होता है तथा उत्पन्न द्वेष अत्यधिक विपुल होता है। आयुष्मानो! यह हेतु है, यह कारण है, जिससे अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न होता है तथा उत्पन्न द्वेष अत्यधिक विपुल होता है।

"'आयुष्मानो! इसका क्या हेतु है, क्या कारण है, जिससे अनुत्पन्न मोह उत्पन्न होता है, तथा उत्पन्न मोह अत्यधिक विपुल होता है?

"'कहना चाहिए कि अयथार्थ चिंतन इसका हेतु है, कारण है। अयथार्थ चिंतन करने से अनुत्पन्न मोह उत्पन्न होता है, उत्पन्न मोह अत्यधिक विपुल होता है। आयुष्मानो! यह हेतु है, यह कारण है, जिससे अनुत्पन्न मोह उत्पन्न होता है तथा उत्पन्न मोह अत्यधिक विपुल होता है।

"'आयुष्मानो! इसका क्या हेतु है, क्या कारण है जिससे अनुत्पन्न राग उत्पन्न नहीं होता, तथा उत्पन्न राग का प्रहाण होता है?

"'कहना चाहिए कि अशुभ-निमित्त ही इसका हेतु है, कारण है। अशुभ-निमित्त का यथार्थ चिंतन करने से अनुत्पन्न राग उत्पन्न नहीं होता, तथा उत्पन्न राग का प्रहाण होता है। आयुष्मानो! यह हेतु है, यह कारण है जिससे अनुत्पन्न राग उत्पन्न नहीं होता तथा उत्पन्न राग का प्रहाण होता है।

"'आयुष्मानो! इसका क्या हेतु है, क्या कारण है जिससे अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न नहीं होता तथा उत्पन्न द्वेष का प्रहाण होता है?

"'कहना चाहिए कि चित्त को विमुक्त करने वाली मैत्री-भावना ही इसका हेतु है, कारण है। चित्त को विमुक्त करने वाली मैत्री-भावना का यथार्थ चिंतन करने से अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न नहीं होता, उत्पन्न द्वेष का प्रहाण होता है। आयुष्मानो! यह हेतु है, यह कारण है जिससे अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न नहीं होता, उत्पन्न द्वेष का प्रहाण होता है।

"'आयुष्मानो! इसका क्या हेतु है, क्या कारण है, जिससे अनुत्पन्न मोह उत्पन्न नहीं होता, उत्पन्न मोह का प्रहाण होता है?

"'कहना चाहिए कि यथार्थ चिंतन करना ही इसका हेतु है, कारण है। यथार्थ चिंतन करने से अनुत्पन्न मोह उत्पन्न नहीं होता, उत्पन्न मोह का प्रहाण होता है। आयुष्मानो! यह हेतु है, यह कारण है, जिससे अनुत्पन्न मोह उत्पन्न नहीं होता, उत्पन्न मोह का प्रहाण होता है।"

९. अकुसल-मूल सुत्त

७०. "भिक्षुओ, ये तीन अकुशल-मूल हैं? कौन-से तीन? लोभ अकुशल-मूल है, द्वेष अकुशल-मूल है, मोह अकुशल-मूल है।

"भिक्षुओ, जो लोभ है, अकुशल-मूल ही है और लोभी आदमी शरीर से, वाणी से, मन से जो कुछ भी करता है वह भी अकुशल है। लोभी आदमी लोभ के कारण, लोभ से अभिभूत होकर, दूसरे को अन्यायपूर्ण ढंग से मारकर या बांधकर या उनकी धनहानि कर या उनकी निंदा कर या मैं बलवान हूं, मुझे बल (का प्रयोग) करना चाहिए (जिसकी लाठी उसकी भैंस) के तर्ज पर उन्हें देश से निकालकर दु:ख देता है, वह अकुशल है। इसलिए लोभ से, लोभ के कारण से, लोभ से उत्पन्न होकर, लोभ के प्रत्यय से अनेक पाप, अकुशल-धर्म पैदा हो जाते हैं।

"भिक्षुओ, जो द्वेष है, अकुशल-मूल ही है और द्वेषी आदमी शरीर से, वाणी से, मन से जो कुछ भी करता है वह भी अकुशल है। द्वेषी आदमी द्वेष के कारण, द्वेष से अभिभूत होकर, दूसरे को अन्यायपूर्ण ढंग से मारकर या बांधकर या उनकी धनहानि कर या उनकी निंदा कर या मैं बलवान हूं, मुझे बल (का प्रयोग) करना चाहिए... के तर्ज पर उन्हें देश से निकालकर दु:ख देता है, वह अकुशल है। इसलिए द्वेष से, द्वेष के कारण से, द्वेष से उत्पन्न होकर, द्वेष के प्रत्यय से अनेक पाप, अकुशल-धर्म पैदा हो जाते हैं।

"भिक्षुओ, जो मोह है, अकुशल-मूल ही है और मूढ़ आदमी शरीर से, वाणी से, मन से जो कुछ भी करता है वह भी अकुशल है। मूढ़ आदमी मूढ़ता के कारण, मूढ़ता से अभिभूत होकर, दूसरे को अन्यायपूर्ण ढंग से मारकर या बांधकर या उनकी धनहानि कर या उनकी निंदा कर या मैं बलवान हूं, मुझे बल (का प्रयोग) करना चाहिए... के तर्ज पर उन्हें देश से निकालकर दुःख देता है, वह अकुशल है। इसलिए मूढ़ता से, मूढ़ता के कारण से, मूढ़ता से उत्पन्न होकर, मूढ़ता के प्रत्यय से अनेक पाप, अकुशल-धर्म पैदा हो जाते हैं। भिक्षुओ, इस प्रकार व्यक्ति 'अकाल-वादी', 'असत्य-वादी', 'अनर्थ-वादी', 'अधर्म-वादी', 'अविनय-वादी' कहा जाता है।

"भिक्षुओ, इस प्रकार का व्यक्ति 'अकाल-वादी' भी, 'असत्य-वादी' भी, 'अनर्थ-वादी' भी, 'अधर्म-वादी' भी, 'अविनय-वादी' भी क्यों कहा जाता है? –क्योंकि यह व्यक्ति दूसरे को अन्यायपूर्ण ढंग से मारकर या बांधकर या उनकी धनहानि कर या उनकी निंदा कर या मैं बलवान हूं, मुझे बल (का प्रयोग) करना चाहिए... के तर्ज पर उन्हें देश से निकालकर दुःख देता है। सच्ची बात कही जाने पर उसे अस्वीकार करता है, स्वीकार नहीं करता; झूठी बात कही जाने पर उसके आरोप से मुक्त होने का प्रयास नहीं करता कि यह असत्य है, यह अभूत है। इसलिए इस प्रकार का व्यक्ति 'अकाल-वादी' भी, 'असत्य-वादी' भी, 'अनर्थ-वादी' भी, 'अधर्म-वादी' भी, 'अविनय-वादी' भी कहा जाता है।

"भिक्षुओ, इस प्रकार का व्यक्ति लोभ से उत्पन्न, पापी अकुशल-धर्मों से अभिभूत होने के कारण इसी जीवन में चिंता-युक्त, अशांति-युक्त, जलन-युक्त दुःख अनुभव करता है। ऐसे व्यक्ति के लिए शरीर छूटने पर, मरने के बाद दुर्गति की ही आशा करनी चाहिए। इसी प्रकार द्वेष से उत्पन्न... मोह से उत्पन्न, पापी अकुशल-धर्मों के अभिभूत होने के कारण इसी जीवन में चिंता-युक्त, अशांति-युक्त, जलन-युक्त दु;ख अनुभव करता है। ऐसे व्यक्ति के लिए शरीर छूटने पर, मरने के बाद दुर्गति की ही आशा करनी चाहिए।

"भिक्षुओ, जैसे चाहे शाल-वृक्ष हो, चाहे धव-वृक्ष हो, चाहे स्पंदन-वृक्ष हो, यदि वह मालुवा-लता (=अमर-बेल) से लदा हो, घिरा हो तो उसकी हानि ही होती है, उसका विनाश ही होता है, हानि-विनाश ही होता है। भिक्षुओ, इसी प्रकार, ऐसा व्यक्ति लोभ से उत्पन्न, पापी अकुशल धर्मों से अभिभूत होने के कारण इसी जीवन में चिंता-युक्त, अशांति-युक्त, जलन-युक्त दुःख अनुभव करता है। ऐसे व्यक्ति के लिए शरीर छूटने पर, मरने के बाद, दुर्गति की ही

आशा करनी चाहिए। इसी प्रकार द्वेष से उत्पन्न... मोह से उत्पन्न, पापी अकुशल धर्मों के अभिभूत होने के कारण इसी जीवन में चिंता-युक्त, अशांति-युक्त, जलन-युक्त दुःख अनुभव करता है। ऐसे व्यक्ति के लिए शरीर छूटने पर, मरने के बाद दुर्गति की ही आशा करनी चाहिए।

"भिक्षुओ, ये तीन कुशल-मूल हैं। कौन-से तीन? अलोभ कुशल-मूल है, अद्वेष कुशल-मूल है, अमोह कुशल-मूल है।

"भिक्षुओ, जो अलोभ है, कुशलमूल ही है और अलोभी व्यक्ति शरीर से, वाणी से, मन से जो कुछ भी करता है वह भी कुशल है। अलोभी व्यक्ति, अलोभ के कारण लोभ से अभिभूत न होने के कारण, दूसरे को अन्यायपूर्ण ढंग से मारकर या बांधकर या उनकी धनहानि कर या उनकी निंदा कर या मैं बलवान हूं, मुझे बल (का प्रयोग) करना चाहिए... के तर्ज पर उन्हें देश से निकालकर दुःख नहीं देता है, वही कुशल है। इसलिए अलोभ से, अलोभ के कारण, अलोभ से उत्पन्न होकर, अलोभ के प्रत्यय से अनेक कुशल-धर्म पैदा हो जाते हैं।

"भिक्षुओ, जो अद्वेष है, कुशलमूल ही है और अद्वेषी व्यक्ति शरीर से, वाणी से, मन से जो कुछ भी करता है, वह भी कुशल है। अद्वेषी व्यक्ति, अद्वेष के कारण, द्वेष से अभिभूत न होने के कारण, दूसरे को जो अन्यायपूर्ण ढंग से मारकर या बांधकर या उनकी धनहानि कर या उनकी निंदा कर या मैं बलवान हूं, मुझे बल का प्रयोग करना चाहिए... के तर्ज पर उन्हें देश से निकालकर दुःख नहीं देता है, वही कुशल है। इसलिए अद्वेष से, अद्वेष के कारण, अद्वेष से उत्पन्न होकर, अद्वेष के प्रत्यय से अनेक कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं।

"भिक्षुओ, जो अमोह है, कुशलमूल ही है और मोह-रहित व्यक्ति शरीर से, वाणी से, मन से जो कुछ भी करता है, वह भी कुशल है। मोह-रहित व्यक्ति अमोह के कारण, मोह से अभिभूत न होने के कारण, दूसरे को अन्यायपूर्ण ढंग से मारकर या बांधकर या उनकी धनहानि कर या उनकी निंदा कर या मैं बलवान हूं, मुझे बल (का प्रयोग) करना चाहिए... के तर्ज पर उन्हें देश से निकालकर दुःख नहीं देता है, वही कुशल है। इसलिए अमोह से, अमोह के कारण, अमोह से उत्पन्न होकर, अमोह के प्रत्यय से अनेक कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं।

"भिक्षुओ, इस प्रकार का व्यक्ति 'काल-वादी' कहलाता है, 'सत्य-वादी' कहलाता है, 'अर्थ-वादी' कहलाता है, 'धर्म-वादी' कहलाता है, 'विनय-वादी'

कहलाता है। भिक्षुओ, इस प्रकार का व्यक्ति 'काल-वादी' भी, 'सत्य-वादी' भी, 'अर्थ-वादी' भी, 'धर्म-वादी' भी 'विनय-वादी' भी क्यों कहलाता है? क्योंकि यह व्यक्ति दूसरे को अन्यायपूर्ण ढंग से मारकर या बांधकर या उनकी धनहानि कर या उनकी निंदा कर या मैं बलवान हूं, मुझे बल (का प्रयोग) करना चाहिए... के तर्ज पर उन्हें देश से निकालकर दुःख नहीं देता है, सच्ची बात कही जाने पर उसे स्वीकार करता है, अस्वीकार नहीं करता, झूठी बात कही जाने पर उस आरोप से मुक्त होने का प्रयास करता है कि यह असत्य है, यह अभूत है। इसलिए इस प्रकार का व्यक्ति 'काल-वादी' भी, 'सत्य-वादी' भी, 'अर्थ-वादी' भी, 'धर्म-वादी' भी, 'विनय-वादी' भी कहलाता है।

"भिक्षुओ, इस प्रकार के व्यक्ति के लोभज पापी अकुशल धर्म प्रहीण हो गये रहते हैं, उनकी जड़ें उच्छिन्न हो गयी रहती हैं, वे कटे ताड़-वृक्ष के समान हो गये रहते हैं, अभाव को प्राप्त हो गये रहते हैं, भविष्य में पुनः न उत्पन्न होने वाले। ऐसा व्यक्ति इसी जीवन में चिंता-मुक्त, अशांति-मुक्त, जलन-मुक्त सुख अनुभव करता है। वह इसी जीवन में निर्वाण को प्राप्त होता है। इस प्रकार के व्यक्ति के द्वेषज... मोहज पापी अकुशल-धर्म प्रहीण हो गये रहते हैं... भविष्य में पुनः न उत्पन्न होने वाले। ऐसा व्यक्ति इसी जीवन में चिंता-मुक्त, अशांति-मुक्त, जलन-मुक्त सुख अनुभव करता है। वह इसी जीवन में निर्वाण को प्राप्त होता है।

"भिक्षुओ, जैसे चाहे शाल-वृक्ष हो, चाहे धव-वृक्ष हो और चाहे स्पंदन-वृक्ष हो और उस पर तीन मालुवा लतायें चढ़ी हों, वह मालुवा-लता से घिरा हो। तब एक व्यक्ति कुदाल और टोकरी लिए आये। वह उस मालुवा-लता की जड़ काट दे, जड़ काटकर खने, खनकर जड़ों को निकाल डाले, यहां तक कि वीरण-घास भी। वह उस मालुवा लता के टुकड़े-टुकड़े करे, टुकड़े-टुकड़े करके उसे चीर डाले, चीरकर खपचियां-खपचियां कर दे, खपचियां-खपचियां करके हवा-धूप में सुखाये, हवा-धूप में सुखाकर आग से जलाये, आग से जलाकर राख कर दे, राख करके या तो तेज हवा में उड़ा दे या शीघ्रगामी नदी में बहा दे। ऐसा होने पर भिक्षुओ, वह मालुवा-लता जड़-मूल से नहीं रहेगी, कटे ताड़-वृक्ष की तरह हो जायगी, अभावप्राप्त हो जायगी, उसकी भावी उत्पत्ति की संभावना नहीं रहेगी। इस तरह भिक्षुओ, इस प्रकार के व्यक्ति के लोभज पापी अकुशल-धर्म प्रहीण हो गये रहते हैं, उनकी जड़ें उच्छिन्न हो गयी रहती हैं, वे कटे ताड़-वृक्ष के समान हो गये रहते हैं, अभाव को प्राप्त हो गये रहते हैं, भविष्य में पुनः न उत्पन्न होने वाले। ऐसा व्यक्ति इसी जीवन में चिंता-मुक्त, अशांति-मुक्त, जलन-मुक्त सुख अनुभव करता है। वह इसी

जीवन में निर्वाण को प्राप्त होता है। इस प्रकार के व्यक्ति के द्वेषज... मोहज पापी अकुशल-धर्म प्रहीण हो गये रहते हैं... भविष्य में पुनः न उत्पन्न होने वाले। ऐसा व्यक्ति इसी जीवन में चिंता-मुक्त, अशांति-मुक्त, जलन-मुक्त सुख अनुभव करता है। वह इसी जीवन में निर्वाण को प्राप्त होता है।

“भिक्षुओ, ये तीन कुशल-मूल हैं।”

१०. उपोसथ सुत्त

७१. ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान श्रावस्ती में मिगार-माता के पूर्वाराम प्रासाद में विहार कर रहे थे। उस समय विसाखा मिगार-माता उपोसथ के दिन भगवान के पास गयी। जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गयी। एक ओर बैठी मिगार-माता विसाखा को भगवान ने यह कहा – विसाखे! आज तू दिन चढ़ते (दोपहर) कैसे आयी?”

“भंते! आज मैंने उपोसथ रखा है।”

“विसाखे! उपोसथ तीन प्रकार का होता है। कौन-से तीन प्रकार का? गोपाल-उपोसथ, निर्ग्रंथ-उपोसथ तथा आर्य-उपोसथ।

“विसाखे! गोपाल-उपोसथ कैसे होता है? विसाखे! जैसे कोई ग्वाला शाम को मालिकों को उनकी गौवें सौंप कर यह सोचे कि आज इन गौवों ने अमुक-अमुक जगह चराई की, आज इन गौवों ने अमुक-अमुक जगह पानी पिया। कल ये गौवें अमुक-अमुक जगह चरेंगी तथा अमुक-अमुक जगह पानी पियेंगी। इसी प्रकार विसाखे! यहां कोई-कोई उपोसथ करने वाला ऐसा सोचता है – आज मैंने यह-यह खाया तथा यह-यह भोजन किया। कल मैं यह-यह खाऊंगा तथा यह-यह भोजन करूंगा। वह उस लोभयुक्त चित्त से दिन गुजार देता है। विसाखे! इस प्रकार गोपाल-उपोसथ होता है। विसाखे! इस प्रकार के गोपाल-उपोसथ का न महान फल होता है, न महान लाभ होता है, न तो यह महान प्रकाशवाला होता है और न बहुत दूर तक व्याप्त होने वाला होता है।

“हे विसाखे! निर्ग्रंथ-उपोसथ कैसे होता है?

“हे विसाखे! निर्ग्रंथ नामक श्रमणों की एक जाति है, वे अपने मतानुयायिओं को इस प्रकार उपदेश देते हैं – ‘हे पुरुष! तू आ। पूर्व दिशा में सौ योजन से अधिक योजन तक (सौ योजन से परे) जितने प्राणी हैं तू उन्हें दंड से मुक्त कर, पश्चिम दिशा में सौ योजन से अधिक योजन तक जितने प्राणी हैं, तू उन्हें दंड से मुक्त कर, उत्तर दिशा में सौ योजन से अधिक योजन तक जितने प्राणी हैं तू उन्हें दंड से मुक्त कर तथा दक्षिण दिशा में सौ योजन से

अधिक योजन तक जितने प्राणी हैं तू उन्हें दंड से मुक्त कर।' इस प्रकार कुछ प्राणियों के प्रति दया उपदेशित करते हैं, कुछ के प्रति दया उपदेशित नहीं करते। वे उपोसथ-दिन पर श्रावक को इस प्रकार उपदेश देते हैं –'हे पुरुष! तू आ। सभी वस्त्रों को त्याग कर इस प्रकार कह –"न मैं कहीं, किसी का कुछ हूं, और न मेरा कहीं, कोई कुछ है।" किंतु उसके माता-पिता जानते हैं कि यह मेरा पुत्र है और पुत्र भी जानता है कि ये मेरे माता-पिता हैं। उसके पुत्र और स्त्री उसे पिता और पति के रूप में जानते हैं और वह भी जानता है कि ये मेरे पुत्र और स्त्री हैं। उसके दास-नौकर-चाकर भी जानते हैं कि यह हमारा मालिक है और वह भी जानता है कि ये मेरे दास-नौकर-चाकर हैं। इस प्रकार जिस समय सत्य उपदेश देना चाहिए उस समय झूठा उपदेश देते हैं, इसको मैं उसका झूठ बोलना कहता हूं। उस रात्रि के बीतने पर वह उन (त्यक्त) वस्तुओं को बिना किसी के दिये ही उपयोग में लाते हैं। इसको मैं उसका चोरी करना कहता हूं। इस प्रकार हे विसाखे! यह निर्ग्रंथ-उपोसथ होता है। विसाखे! इस प्रकार के उपोसथ का न महान फल होता है, न महान लाभ होता है, न तो यह महान प्रकाश वाला होता है तथा न बहुत दूर तक व्याप्त होने वाला होता है।

"हे विसाखे! आर्य-उपोसथ कैसे होता है?

"विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है। कैसे विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है?

"यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक तथागत का अनुस्मरण करता है –'ऐसे ही तो हैं वे भगवान! अरहंत, सम्यक-संबुद्ध, विद्या तथा सदाचरण से संपन्न, उत्तम गति प्राप्त, समस्त लोकों के ज्ञाता, सर्व-श्रेष्ठ, (पथ-भ्रष्ट घोड़ों की तरह) भटके लोगों को सही मार्ग पर ले आने वाले सारथी, देवताओं और मनुष्यों के शास्ता (आचार्य), बुद्ध, भगवान।' इस प्रकार तथागत का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद (प्रमोद) उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है जैसे विसाखे! मैला सिर उपाय से निर्मल होता है।

"विसाखे! मैले सिर को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है? खल्ली होने से, मिट्टी होने से, पानी होने से तथा व्यक्ति के प्रयत्न से। हे विसाखे! इस प्रकार मैले सिर को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है?

"यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक तथागत का अनुस्मरण करता है –'ऐसे ही तो हैं वे भगवान! अरहंत, 'सम्यक-संबुद्ध', विद्या तथा सदाचरण से संपन्न, उत्तम गति प्राप्त, समस्त लोकों के ज्ञाता, सर्व-श्रेष्ठ, (पथ-भ्रष्ट घोड़ों की तरह)

भटके लोगों को सही मार्ग पर ले आने वाले सारथी, देवताओं और मनुष्यों के शास्ता (आचार्य), 'बुद्ध', भगवान।' इस प्रकार तथागत का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है, जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है। विसाखे! इसे कहते हैं कि आर्य-श्रावक ब्रह्म-उपोसथ रखता है, ब्रह्मा के साथ रहता है, 'ब्रह्मा' के बारे में सोचकर उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है। इस प्रकार विसाखे! मैले-चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है। विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है?

"यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक धर्म का अनुस्मरण करता है – 'भगवान द्वारा भली प्रकार आख्यात किया गया यह धर्म सांदृष्टिक है, काल्पनिक नहीं, प्रत्यक्ष है, तत्काल फलदायक है, आओ और देखो (कहलाने योग्य है) निर्वाण तक ले जाने योग्य है, प्रत्येक समझदार व्यक्ति के साक्षात करने योग्य है।' इस प्रकार धर्म का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है, जैसे विसाखे! मैले बदन को उपाय से साफ किया जाता है।

"विसाखे! मैले बदन को उपाय से साफ कैसे किया जाता है? शंख से, चूने से, पानी से तथा व्यक्ति के प्रयत्न से। विसाखे! इस प्रकार मैला बदन क्रमशः निर्मल होता है। इसी प्रकार विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है?

"यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक धर्म का अनुस्मरण करता है – 'भगवान द्वारा भली प्रकार आख्यात किया गया यह धर्म सांदृष्टिक है, काल्पनिक नहीं, प्रत्यक्ष है, तत्काल फलदायक है, आओ और देखो (कहलाने योग्य है), निर्वाण तक ले जाने योग्य है, प्रत्येक समझदार व्यक्ति के साक्षात करने योग्य है।' इस प्रकार धर्म का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है। विसाखे! इसे कहते हैं कि आर्य-श्रावक धर्म-उपोसथ रखता है, धर्म के साथ रहता है, धर्म को लेकर उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है। इस प्रकार विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है।

“विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है। विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है?

“यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक संघ का अनुस्मरण करता है – सुमार्ग पर चलने वाला भगवान का श्रावक-संघ, ऋजु मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, न्याय (सत्य) मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, यह जो (मार्ग-फल प्राप्त) आर्य-व्यक्तियों के चार जोड़े हैं, यानी आठ पुरुष पुद्गल हैं – यही भगवान का श्रावक-संघ है, (यही) आवाहन करने योग्य है, पाहुना (अतिथि) बनाने योग्य है, दक्षिणा देने योग्य है, अंजलिबद्ध (प्रणाम) किये जाने योग्य है। लोगों का यही श्रेष्ठतम पुण्य-क्षेत्र है। इस प्रकार संघ का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है जैसे विसाखे! मैले वस्त्र को उपाय से निर्मल किया जाता है।

“विसाखे! मैले वस्त्र को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है? गर्म पानी होने से, खारी मिट्टी तथा गोबर होने से, पानी (साधारण) होने से तथा व्यक्ति के प्रयत्न से। विसाखे! इस प्रकार मैला वस्त्र उपाय से निर्मल होता है। विसाखे! इसी प्रकार मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है।

“विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है?

“यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक संघ का अनुस्मरण करता है – सुमार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, ऋजु मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, न्याय (सत्य) मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, यह जो (मार्ग-फल प्राप्त) आर्य-व्यक्तियों के चार जोड़े हैं, यानी आठ पुरुष-पुद्गल हैं – यही भगवान का श्रावक-संघ है, (यही) आवाहन करने योग्य है, पाहुना (अतिथि) बनाने योग्य है, दक्षिणा देने योग्य है, अंजलिबद्ध (प्रणाम) किये जाने योग्य है। लोगों का यही श्रेष्ठतम पुण्य-क्षेत्र है। इस प्रकार संघ का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है। विसाखे इसे कहा जाता है -- आर्य-श्रावक संघ-उपोसथ करता है, संघ के साथ रहता है, संघ के बारे में सोच कर चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है। इसी प्रकार विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है।

“विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है। यहां, विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है? यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक अपने शीलों का अनुस्मरण करता है – ‘अखंडित, छिद्र-रहित,

बिना धब्बे के, पवित्र, शुद्ध, विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसित, अकलंकित तथा समाधि की ओर ले जाने वाले!' शील का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है। जैसे विसाखे! मैले शीशे को उपाय से साफ किया जाता है।

"विसाखे! मैले शीशे को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है? तेल से, राख से, बालों के गुच्छे से और व्यक्ति के प्रयत्न से। विसाखे! इस प्रकार मैले शीशे को उपाय से साफ किया जाता है। इसी प्रकार विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है? यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक अपने शीलों का अनुस्मरण करता है – 'अखंडित,... समाधि की ओर ले जाने वाले।' इस प्रकार शील का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रसन्न होता है... प्रहाण होता है। विसाखे! इसे कहा जाता है -- आर्य श्रावक शील-उपोसथ करता है, शील के साथ रहता है, शील में श्रद्धा उत्पन्न करता है, आनंद उत्पन्न करता है, जो चित्त के क्लेशों का प्रहाण करते हैं। विसाखे! इस प्रकार मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है। विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है? यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक देवताओं का अनुस्मरण करता है –'चातुम्महाराजिक देवता हैं, तावतिंस देवता हैं, याम देवता हैं, तुषित देवता हैं, निम्मान-रति देवता हैं, परनिम्मितवसवत्ती देवता हैं, ब्रह्मकायिकदेवता हैं, और इससे आगे भी देवता हैं। जिस प्रकार की श्रद्धा से समन्वागत (युक्त) वे देवता इस लोक से मरकर वहां उत्पन्न हुए हैं, मुझमें भी उसी प्रकार की श्रद्धा है; जिस प्रकार के शील से समन्वागत वे देवता इस लोक से मरकर वहां उत्पन्न हुए हैं, मुझमें भी उसी प्रकार का शील है; जिस प्रकार के श्रुत (=ज्ञान) से समन्वागत वे देवता इस लोक से मरकर वहां उत्पन्न हुए हैं, मुझमें भी उसी प्रकार का ज्ञान है, जिस प्रकार के त्याग से समन्वागत वे देवता इस लोक से मरकर वहां उत्पन्न हुए हैं; मुझमें भी उसी प्रकार का त्याग है; जिस प्रकार की प्रज्ञा से समन्वागत वे देवता इस लोक से मरकर वहां उत्पन्न हुए हैं, मुझमें भी उसी प्रकार की प्रज्ञा है।' अपनी और उन देवताओं की श्रद्धा, शील, श्रुत, त्याग तथा प्रज्ञा का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है, जैसे विसाखे! मलिन सोने को उपाय से साफ किया जाता है।

"विसाखे! मलिन सोने को उपाय से साफ कैसे किया जाता है? अंगीठी होने से, नमक होने से, गेरू होने से, धौंकनी होने से, संडासी होने से तथा उसके लिए व्यक्ति का प्रयास होने से। विसाखे! इस प्रकार मलिन सोने को उपाय से साफ किया जाता है। इसी प्रकार विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है? यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक देवताओं का अनुस्मरण करता है – 'चातुम्महाराजिक देवता हैं, तावतिंस देवता हैं... इससे आगे भी देवता हैं। जिस प्रकार की श्रद्धा से समन्वागत वे देवता इस लोक से मरकर वहां उत्पन्न हुए हैं, मुझमें भी उसी प्रकार की श्रद्धा है; जिस प्रकार के शील... श्रुत... त्याग... प्रज्ञा से समन्वागत वे देवता इस लोक से मरकर वहां उत्पन्न हुए हैं, मुझमें भी उसी प्रकार की प्रज्ञा है।' इस प्रकार अपनी और उन देवताओं की श्रद्धा, शील, श्रुत, त्याग तथा प्रज्ञा का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है। विसाखे इसे कहा जाता है -- आर्य-श्रावक देवता-उपोसथ करता है, देवता के साथ रहता है, देवता में श्रद्धा उत्पन्न करता है। देवता के बारे में सोच कर चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है। इसी प्रकार विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! वह आर्य-श्रावक यह विचार करता है – 'अर्हत जीवनभर प्राणी-हिंसा छोड़, प्राणी-हिंसा से विरत होकर, दंड-त्यागी, शस्त्र-त्यागी, पाप-भीरु, दयावान, सभी प्राणियों का हित और उन पर अनुकंपा करते विचरते हैं। मैं भी आज की रात और यह दिन प्राणी-हिंसा छोड़, प्राणी-हिंसा से विरत होकर, दंड-त्यागी, शस्त्र-त्यागी, पाप-भीरु, दयावान होकर सभी प्राणियों का हित और उन पर अनुकंपा करते हुए विहार करूं। इस अंश में भी मैं अर्हतों का अनुकरण करने वाला होऊंगा तथा मेरा उपोसथ पूरा होगा।

"'अर्हत जीवनभर चोरी करना छोड़, चोरी करने से विरत रह, केवल दिया ही लेने वाले, दिये की ही आकांक्षा करने वाले, चोरी न कर, पवित्र जीवन बिताते हैं। मैं भी आज की रात और यह दिन चोरी करना छोड़, चोरी करने से विरत रह, केवल दिया ही लेने वाला, दिये की ही आकांक्षा करने वाला, चोरी न कर, पवित्र जीवन बिताऊं। इस अंश में भी मैं अर्हतों का अनुकरण करने वाला होऊंगा तथा मेरा उपोसथ पूरा होगा।

"'अर्हत जीवनभर अब्रह्मचर्य छोड़, ब्रह्मचारी, अनाचार-रहित, मैथुन ग्राम्य-धर्म से विरत रहते हैं। मैं भी आज की रात और यह दिन अब्रह्मचर्य छोड़, ब्रह्मचारी, अनाचार-रहित, मैथुन ग्राम्य-धर्म से विरत रहकर बिताऊं। इस अंश में भी मैं अर्हतों का अनुकरण करने वाला होऊंगा तथा मेरा उपोसथ पूरा होगा।

"'अर्हत जीवनभर मृषावाद छोड़, मृषावाद से विरत होकर, कभी झूठ न बोलने वाला दृढ़ (अटल), विश्वसनीय, तथा लोक को धोखा न देने वाला होकर रहते हैं। मैं भी आज की रात और यह दिन मृषावाद छोड़, मृषावाद से विरत होकर, सत्य-वादी, झूठ न बोलने वाला, स्थिर, दृढ़ (अटल) विश्वसनीय, तथा लोक को धोखा न देने वाला होकर रहूं। इस अंश में भी मैं अर्हतों का अनुकरण करने वाला होऊंगा तथा मेरा उपोसथ पूरा होगा।

"'अर्हत जीवनभर सुरा-मेरय-मद्य आदि प्रमादकारक वस्तुओं को छोड़, सुरा-मेरय-मद्य आदि प्रमादकारक वस्तुओं से विरत होकर रहते हैं। मैं भी आज की रात और यह दिन सुरा-मेरय-मद्य आदि प्रमादकारक वस्तुओं से विरत होकर रहूं। इस अंश में मैं भी अर्हतों का अनुकरण करने वाला होऊंगा तथा मेरा उपोसथ पूरा होगा।

"'अर्हत जीवनभर एकाहारी, रात्रि-भोजन-त्यक्त, विकाल-भोजन से विरत होकर रहते हैं। मैं भी आज की रात और यह दिन एकाहारी, रात्रि-भोजन-त्यक्त, विकाल-भोजन से विरत होकर बिताऊं। इस अंश में भी मैं अर्हतों का अनुकरण करने वाला होऊंगा तथा मेरा उपोसथ पूरा होगा।

"'अर्हत जीवनभर नाचने, गाने, बजाने, तमाशे देखने, माला-गंध-विलेपन धारण-मंडन आदि जो विभूषित करने के सामान हैं उनसे विरत रहते हैं। मैं भी आज की रात और यह दिन नाचने, गाने, बजाने, तमाशा देखने, माला-गंध-विलेपन धारण-मंडन आदि जो विभूषित करने के सामान हैं उनसे विरत रहकर बिताऊं। इस अंश में भी मैं अर्हतों का अनुकरण करने वाला होऊंगा तथा मेरा उपोसथ पूरा होगा।

"'अर्हत जीवनभर उच्च शय्या, महा शय्या को छोड़, उच्च शय्या, महा शय्या से विरत होकर, नीचा शयनासन – चारपाई या चटाई को ही काम में लाते हैं। मैं भी आज की रात और यह दिन उच्च शय्या, महा शय्या को छोड़, उच्च शय्या, महा शय्या से विरत होकर, नीचा शयनासन – चारपाई या चटाई को ही काम में लाऊं। इस अंश में भी मैं अर्हतों का अनुकरण करने वाला होऊंगा तथा मेरा उपोसथ पूरा होगा।'

"विसाखे! इस प्रकार आर्य-उपोसथ होता है। विसाखे! इस प्रकार रखा गया आर्य-उपोसथ महान फलवाला होता है, महान लाभ वाला होता है, यह महान प्रकाश वाला होता है तथा बहुत दूर तक व्याप्तहोने वाला होता है।"

"कितनेमहान फलवाला होता है, कितनेमहान लाभ वाला होता है, कितने महान प्रकाशवाला होता है तथा कितनीदूर तक व्याप्त होने वाला होता है?"

"विसाखे! जैसे कोई इन सोलह महान सप्त-रत्न-बहुल महाजनपदों का ऐश्वर्याधिपत्य राज्य करे–जैसे अंगों का, मगधों का, काशियोंका, कोशलोंका, वज्जियों का, मल्लों का, चेदियों का, वंगों का, कुरुओंका, पंचालों का, मत्स्यों का, शौरसेनों का, अश्मकोंका, अवंतियों का, गंधारों का तथा कंबोजोंका – वह अष्टांग उपोसथ के सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं होता। यह किसलिए विसाखे! दिव्य-सुख कीतुलना में मानुषी-राज्य बिचारे काकुछमूल्य नहीं।

"विसाखे! जितना समय मनुष्यों का पचास वर्ष होता है, वह चातुम्महाराजिक देवताओं काएक रात-दिन होता है। उस रात से तीस रातों का महीना। उस महीने से बारह महीनों का वर्ष। उस वर्ष से पांच सौ वर्ष चातुम्महाराजिक देवताओं की आयु की सीमा। विसाखे! संभव है कि अष्टांगिक उपोसथ करनेवाली स्त्री या पुरुष शरीर छूटने पर, मरने के बाद चातुम्महाराजिक देवताओं कासहवासी हो जाय। विसाखे! इसीलिए यह कहा गया कि दिव्य-सुख की तुलना में मानुषी-राज्य बिचारे का कुछ मूल्य नहीं।

"विसाखे! जितना समय मनुष्यों का सौ वर्ष होता है, वह तावतिंस देवताओं का एक रात-दिन होता है। उस रात से तीस रातों का महीना। उस महीने से बारह महीनों का वर्ष! उस वर्ष से हजार दिव्य वर्ष, तावतिंस देवताओं कीआयु कीसीमा। विसाखे! संभव है कि अष्टांगिक उपोसथ करने वाली स्त्री या पुरुष शरीर छूटने पर, मरने के बाद तावतिंस देवताओं का सहवासी हो जाय। विसाखे! इसीलिए यह कहा गया कि दिव्य-सुख की तुलना में मानुषी-राज्य बिचारे का कुछ मूल्य नहीं।

"विसाखे! जितना समय मनुष्यों का दो सौ वर्ष होता है, वह याम-देवताओं का एक रात-दिन होता है। उस रात से तीस रातों का महीना। उस महीने से बारह महीनों का वर्ष। उस वर्ष से दो हजार दिव्य-वर्ष, याम देवताओं कीआयु कीसीमा। विसाखे! संभव है कि अष्टांगिक उपोसथ करने वाली स्त्री या पुरुष शरीर छूटने पर, मरने के बाद याम-देवताओं कासहवासी हो जाय। विसाखे! इसीलिए यह कहा गया है कि दिव्य-सुख की तुलना में मानुषी-राज्य बिचारे का कुछ मूल्य नहीं।

"विसाखे! जितना समय मनुष्यों का चार सौ वर्ष होता है, वह तुषित देवताओं का एक रात-दिन होता है। उस रात से तीस रातों का महीना। उस महीने से बारह महीनों का वर्ष। उस वर्ष से चार हजार दिव्य-वर्ष, तुषित-देवताओं की आयु की सीमा। विसाखे! संभव है कि अष्टांगिक उपोसथ करने वाली स्त्री या पुरुष शरीर छूटने पर, मरने के बाद तुषित-देवताओं का सहवासी हो जाय। विसाखे! इसीलिए यह कहा गया कि दिव्य-सुख की तुलना में मानुषी-राज्य बिचारे का कुछ मूल्य नहीं।

"विसाखे! जितना समय मनुष्यों का आठ सौ वर्ष होता है, वह निम्मान-रति देवताओं का एक रात-दिन होता है। उस रात से तीस रातों का महीना। उस महीने से बारह महीनों का वर्ष। उस वर्ष से आठ हजार दिव्य-वर्ष, निम्मान-रति देवताओं की आयु की सीमा। विसाखे! संभव है कि अष्टांगिक उपोसथ करने वाली स्त्री या पुरुष शरीर छूटने पर, मरने के बाद निम्मान-रति देवताओं का सहवासी हो जाय। विसाखे! इसीलिए यह कहा गया कि दिव्य-सुख की तुलना में मानुषी-राज्य बिचारे का कुछ मूल्य नहीं।

"विसाखे! जितना समय मनुष्यों का सोलह सौ वर्ष होता है, वह परनिम्मितवसवत्ती देवताओं का एक रात-दिन होता है। उस रात से तीस रातों का महीना। उस महीने से बारह महीनों का वर्ष। उस वर्ष से सोलह हजार वर्ष परनिम्मितवसवत्ती देवताओं की आयु की सीमा। विसाखे! संभव है कि अष्टांगिक उपोसथ करने वाली स्त्री या पुरुष शरीर छूटने पर, मरने के बाद, परनिम्मितवसवत्ती देवताओं का सहवासी हो जाय। विसाखे! इसीलिए यह कहा गया कि दिव्य-सुख की तुलना में मानुषी-राज्य बिचारे का कुछ मूल्य नहीं।"

"पाणं न हञ्ञे न चादिन्नमादिये, मुसा न भासे न च मज्जपो सिया।
अब्रह्मचरिया विरमेय्य मेथुना, रत्तिं न भुञ्जेय्य विकालभोजनं॥

"मालं न धारे न च गन्धमाचरे, मञ्चे छमायं व सयेथ सन्थते।
एतञ्हि अट्ठङ्गिकमाहुपोसथं, बुद्धेन दुक्खन्तगुना पकासितं॥

"चन्दो च सुरियो च उभो सुदस्सना, ओभासयं अनुपरियन्ति यावता।
तमोनुदा ते पन अन्तलिक्खगा, नभे पभासन्ति दिसाविरोचना॥

"एतस्मिं यं विज्जति अन्तरे धनं, मुत्ता मणि वेळुरियञ्च भद्दकं।
सिङ्गी सुवण्णं अथ वापि कञ्चनं, यं जातरूपं हटकन्ति वुच्चति॥

"अट्ठङ्गुपेतस्स उपोसथस्स, कलम्पि ते नानुभवन्ति सोळसिं।
चन्दप्पभा तारगणा च सब्बे॥

"तस्मा हि नारी च नरो च सीलवा, अट्ठङ्गुपेतं उपवस्सुपोसथं।
पुञ्ञानि कत्वान सुखुद्रयानि, अनिन्दिता सग्गमुपेन्ति ठान"न्ति॥

["प्राणी-हिंसा न करे, चोरी न करे, झूठ न बोले, मद्यप न होवे। अब्रह्मचर्य, मैथुन से विरत रहे। रात्रि को विकाल-भोजन न करे। माला न पहने। सुगंधि न धारण करे।मंच पर या बिछी-भूमि पर सोये। बुद्ध ने दुःख का अंत करने वाले इस अष्टांग-उपोसथ को प्रकाशित किया है। चंद्रमा तथा सूर्य दोनों सुदर्शन हैं। वे जहां तक (संभव है, वहां तक) प्रकाश फैलाते हैं। वे अंतरिक्षगामी हैं। अंधकार के विध्वंसक हैं। वे आकाश की सभी दिशाओं को आलोकित करते हैं। और यहां इस बीच में जो कुछ भी मुक्ता, मणि तथा बिल्लौर धन, स्फटिक है, शुद्ध कंचन, स्वर्ण, जो जातरूप वा हाटक भी कहलाता है, वह तथा चंद्रमा का प्रकाश और सभी तारागण अष्टांग-उपोसथ पालन करने वाले के सोलहवें हिस्से के भी बराबर नहीं होते। इसलिए जो सदाचारी नारी और नर हैं वे अष्टांग उपोसथ का पालन कर,तथा सुख-दायक पुण्य-कर्म कर, अनिंदित रह, स्वर्ग-स्थान को प्राप्त होते हैं।"]

* * * * *

(८) ३. आनन्द वर्ग

१. छन्न सुत्त

७२. एक समय भगवान श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। तब छन्न परिव्राजक आयुष्मान आनन्द के पास पहुँचा। पहुँच कर,आयुष्मान आनन्द के साथ कुशलक्षेम की बातचीत करके एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए छन्न परिव्राजक ने आयुष्मान आनन्द को यह कहा –

"आयुष्मान आनन्द! आप भी राग के प्रहाण की बात करते हैं, द्वेष... मोह के प्रहाण की बात करते हैं। आयुष्मान! हम भी राग के प्रहाण की बात करते हैं, द्वेष... मोह के प्रहाण की बात करते हैं।

"आयुष्मान! आप राग में क्या दोष देखकर राग के प्रहाण की बात करते हैं, द्वेष में क्या दोष... मोह में क्या दोष देखकर मोह के प्रहाण की बात करते हैं?"

"आयुष्मान! जो राग से अनुरक्त है, जो राग से अभिभूत है वह अपने दुःख की भी बात सोचता है, पराये दुःख की भी बात सोचता है, दोनों के दुःख की भी बात सोचता है, वह चैतसिक दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव करता है। राग

का प्रहाण होने पर न वह अपने दुःख की बात सोचता है, न पराये दुःख की बात सोचता है, न दोनों के दुःख की बात सोचता है; वह चैतसिक दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव नहीं करता है।

"आयुष्मान! जो राग से अनुरक्त है, जो राग से अभिभूत है वह कायिक दुष्कर्म करता है, वाचिक दुष्कर्म करता है, मानसिक दुष्कर्म करता है। राग का प्रहाण होने पर न वह कायिक दुष्कर्म करता है, न वाचिक दुष्कर्म करता है और न मानसिक दुष्कर्म करता है।

"आयुष्मान! जो राग से अनुरक्त है, जो राग से अभिभूत है वह अपना हित भी यथार्थ रूप से नहीं पहचानता है, यथार्थ रूप से परार्थ भी नहीं पहचानता है, यथार्थ रूप से उभयार्थ भी नहीं पहचानता है। राग का प्रहाण होने पर वह यथार्थ रूप से अपना हित भी पहचानता है, यथार्थ रूप से परार्थ भी पहचानता है, यथार्थ रूप से उभयार्थ भी पहचानता है।

"आयुष्मान! जो राग है वह अंधा बना देने वाला है, चक्षु-रहित कर देने वाला है, अज्ञानी बना देने वाला है, प्रज्ञा का नाश कर देने वाला है, हानि पहुँचाने वाला है, निर्वाण-मार्ग की ओर ले जाने वाला नहीं है।

"आयुष्मान! जो द्वेष से दुष्ट है जो द्वेष से अभिभूत है वह... निर्वाण-मार्ग की ओर ले जाने वाला नहीं है।

"आयुष्मान! जो मोह से मूढ़ है, मोह से अभिभूत है वह अपने दुःख की भी बात... पराये दुःख... दोनों के दुःख की भी बात सोचता है, वह चैतसिक दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव करता है। मोह का प्रहाण हो जाने पर न वह अपने दुःख की बात सोचता है... न पराये दुःख... न दोनों के दुःख की बात सोचता है, वह चैतसिक दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव नहीं करता।

"आयुष्मान! जो मोह से मूढ़ है, मोह से अभिभूत है वह कायिक दुष्कर्म करता है, वाचिक दुष्कर्म करता है, मानसिक दुष्कर्म करता है। मोह का प्रहाण होने पर, न वह कायिक दुष्कर्म करता है, न वाचिक दुष्कर्म करता है और न मानसिक दुष्कर्म करता है।

"आयुष्मान। जो मोह से मूढ़ है, जो मोह से अभिभूत है वह यथार्थ रूप से अपना हित भी नहीं पहचानता है, यथार्थ रूप से परार्थ भी नहीं पहचानता है, यथार्थ रूप से उभयार्थ भी नहीं पहचानता है। मोह का प्रहाण होने पर वह यथार्थ रूप से अपना हित भी पहचानता है, यथार्थ रूप से परार्थ भी पहचानता है, यथार्थ रूप से उभयार्थ भी पहचानता है।

“आयुष्मान! जो मोह है वह अंधा बना देने वाला है, चक्षु-रहित कर देने वाला है, अज्ञानी बना देने वाला है, प्रज्ञा का नाश कर देने वाला है, हानि पहुँचाने वाला है, निर्वाण-मार्ग की ओर ले जाने वाला नहीं है।

“आयुष्मान! हम राग का यह खतरा (पालि ‘आदीनव’ का अर्थ है संकट, भय, बुरा परिणाम) देखकर राग के प्रहाण की बात करते हैं, द्वेष का यह खतरा देखकर द्वेष के प्रहाण की बात करते हैं, तथा मोह का यह खतरा देखकर मोह के प्रहाणकी बात करते हैं।”

“आयुष्मान! क्या इस राग, द्वेष तथा मोह के प्रहाण का पथ है, मार्ग है?”

“आयुष्मान! इस राग, द्वेष तथा मोह के प्रहाण का पथ है, मार्ग है।”

“आयुष्मान! इस राग, द्वेष तथा मोह के प्रहाण के लिए कौन-सा पथ है, कौन-सा मार्ग है?”

“यही आर्य-अष्टांगिक मार्ग जो कि है –सम्यक दृष्टि... सम्यक समाधि। आयुष्मान! इस राग, द्वेष तथा मोह के प्रहाण के लिए यह पथ है, यह मार्ग है।”

“आयुष्मान! इस राग, द्वेष तथा मोह के प्रहाण का यह श्रेष्ठ-पथ है, श्रेष्ठ-मार्ग है। आनन्द! यह अप्रमादी बने रहने के लिए पर्याप्त है।”

२. आजीवक सुत्त

७३. एक समय आयुष्मान आनन्द कोशाम्बी के घोषिताराम में विहार कर रहे थे।

उस समय आजीवक संप्रदाय का एक गृहस्थ शिष्य आयुष्मान आनन्द के पास आया। पास जाकर आयुष्मान आनन्द को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए उस आजीवक गृहस्थ शिष्य ने आयुष्मान आनन्द को यह कहा –

“भंते आनन्द! वास्तव में किसका धर्म सु-आख्यात (भली प्रकार कहा गया) है? संसार में कौन ठीक मार्ग पर चलते हैं? संसार में कौन सुकर्मी हैं?”

“तो गृहपति! मैं तुझसे ही पूछता हूं, जैसा तुझे लगे वैसा कहना। तो हे गृहपति! तू क्या मानता है कि जो राग के प्रहाण का उपदेश देते हैं, द्वेष के प्रहाण का उपदेश देते हैं तथा मोह के प्रहाण का उपदेश देते हैं उनका धर्म भली प्रकार कहा गया है या नहीं? तुम्हारी क्या राय है?”

“भंते! जो राग के प्रहाण के लिए धर्मोपदेश देते हैं, द्वेष के प्रहाण के लिए धर्मोपदेश देते हैं, मोह के प्रहाण के लिए धर्मोपदेश देते हैं, उनका धर्म भली प्रकार कहा गया है ऐसी मेरी राय है।”

"हे गृहपति! क्या मानते हो जो राग के प्रहाण में लगे हैं, जो द्वेष के प्रहाण में लगे हैं, जो मोह के प्रहाण में लगे हैं, संसार में वे ठीक मार्ग पर चल रहे हैं या नहीं? तुम्हारी क्या राय है?"

"भंते! जो राग के प्रहाण में लगे हैं, जो द्वेष के प्रहाण में लगे हैं, जो मोह के प्रहाण में लगे हैं, संसार में वे ठीक मार्ग पर चल रहे हैं ऐसी मेरी राय है।"

"हे गृहपति! क्या मानते हो जिनका राग प्रहीण हो गया है, जड़ से जाता रहा है, कटे ताड़ के समान हो गया है, अभावप्राप्त हो गया है, भविष्य में पुनरुत्पत्ति की कोई संभावना नहीं रही है; जिनका द्वेष प्रहीण हो गया है... संभावना नहीं रही है; जिनका मोह प्रहीण हो गया है, जड़ से जाता रहा है, कटे ताड़ के समान हो गया है, अभावप्राप्त हो गया है, भविष्य में पुनरुत्पत्ति की कोई संभावना नहीं रही है, वे संसार में सुकर्मी हैं या नहीं? तुम्हारी क्या राय है?"

"भंते! जिनका राग प्रहीण हो गया है, जड़ से जाता रहा है, कटे ताड़ के समान हो गया है, अभावप्राप्त हो गया है, भविष्य में पुनरुत्पत्ति की कोई संभावना नहीं रही है; जिनका द्वेष प्रहीण हो गया है... संभावना नहीं रही है; जिनका मोह प्रहीण हो गया है, जड़ से जाता रहा है, कटे ताड़ के समान हो गया है, अभावप्राप्त हो गया है, भविष्य में पुनरुत्पत्ति की कोई संभावना नहीं रही है, वे संसार में सुकर्मी हैं, ऐसी मेरी राय है।"

"अब तू ही यह कह रहा है –'भंते! जो राग के प्रहाण के लिए धर्मोपदेश देते हैं, द्वेष के ... मोह के प्रहाण के लिए धर्मोपदेश देते हैं, उनका धर्म भली प्रकार कहा गया है।' तू ही यह कह रहा है –'भंते! जो राग के प्रहाण में लगे हैं, जो द्वेष के ...जो मोह के प्रहाण में लगे हैं, संसार में वे ठीक मार्ग पर चल रहे हैं।' तू ही यह कह रहा है, 'भंते! जिनका राग प्रहीण हो गया है, जड़ से जाता रहा है, कटे ताड़ के समान हो गया है, अभावप्राप्त हो गया है, भविष्य में पुनरुत्पत्ति की कोई संभावना नहीं रही है; जिनका द्वेष प्रहीण... जिनका मोह प्रहीण हो गया है, जड़ से जाता रहा है, कटे ताड़ के समान हो गया है, अभावप्राप्त हो गया है, भविष्य में पुनरुत्पत्ति की कोई संभावना नहीं रही है, वे लोक में सुकर्मी हैं।"

"भंते! आश्चर्य है। भंते! अद्भुत है। अपने मत को ऊपर भी नहीं उठाया है और दूसरे के मत को नीचे भी नहीं गिराया है। उचित क्षेत्र में धर्म-देशना मात्र हुई है। (कल्याण की) बात कह दी गयी। अपने-आप को बीच में नहीं लाया गया।

“भंते आनन्द! आप लोग राग के प्रहाण के लिए धर्मोपदेश देते हैं, द्वेष के ...मोह के प्रहाण के लिए धर्मोपदेश देते हैं, (इसलिए) भंते! आप लोगों का धर्म ‘भली प्रकार कहा गया’ (सु-आख्यात) है। भंते! आनन्द! आप लोग राग के प्रहाण में प्रतिपन्न हैं, द्वेष के ... मोह के प्रहाण में प्रतिपन्न हैं, आप लोग संसार में ठीक मार्ग पर चल रहे हैं। भंते! आनन्द! आप लोगों का राग प्रहीण है, जड़ से जाता रहा है, कटे ताड़ के समान हो गया है, अभावप्राप्त हो गया है, भविष्य में पुनरुत्पत्ति की कोई संभावना नहीं रही है; आप लोगों का द्वेष... आप लोगों का मोह प्रहीण है, जड़ से जाता रहा है, कटे ताड़ के समान हो गया है, अभावप्राप्त हो गया है, भविष्य में पुनरुत्पत्ति की कोई संभावना नहीं रही है, (इसलिए) आप लोग सुकर्मी हैं।

“सुंदर, भंते! बहुत सुंदर, भंते! जैसे कोई उल्टे को सीधा कर दे, ढँके को उघाड़ दे, मार्ग-भूले को रास्ता बता दे अथवा अंधेरे में मशाल धारण करे, जिससे आंख वाले चीजों को देख सकें। इसी प्रकार आर्य आनन्द ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया है। भंते आनन्द! मैं उन भगवान, धर्म तथा भिक्षु-संघ की शरण जाता हूं। आर्य आनन्द! आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।”

३. महानाम शाक्य सुत्त

७४. ऐसा मैंने सुना – एक समय भगवान शाक्य जनपद में, कपिलवस्तु के निग्रोधाराम में विहार करते थे। उस समय भगवान रोग से मुक्त हुए थे, रोग से मुक्त हुए थोड़ा ही समय हुआ था। तब महानाम शाक्य भगवान के पास पहुँचा। पास जाकर भगवान को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए महानाम शाक्य ने भगवान को यह कहा –

“भंते! मैं जानता हूं कि भगवान ने दीर्घकाल से यह उपदेश दिया है कि समाहित-चित्त (वाले) को ही ज्ञान होता है, असमाहित-चित्त (वाले) को नहीं। भंते, क्या समाधि पहले होती है और तब ज्ञान होता है, अथवा ज्ञान पहले होता है और तब समाधि होती है?”

उस समय आयुष्मान आनन्द के मन में यह हुआ – भगवान रोग से मुक्त हुए हैं, भगवान को रोग से मुक्त हुए थोड़ा ही समय हुआ है। यह महानाम शाक्य भगवान से अति गंभीर प्रश्न पूछ रहा है। क्यों न मैं महानाम शाक्य को एक ओर ले जाकर धर्मोपदेश दूं? तब आयुष्मान आनन्द महानाम शाक्य को बांह से पकड़कर एक ओर ले गये और महानाम शाक्य से यह बोले –

"महानाम! भगवान ने शैक्ष-शील का भी उपदेश किया है, अशैक्ष-शील का भी उपदेश किया है, शैक्ष-समाधि का भी उपदेश किया है, अशैक्ष-समाधि का भी उपदेश किया है, शैक्ष-प्रज्ञा का भी उपदेश किया है, अशैक्ष-प्रज्ञा का भी उपदेश किया है।

"महानाम! शैक्ष-शील क्या है?

"यहां, हे महानाम! भिक्षु शीलवान होता है, प्रातिमोक्ष... शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करने वाला... महानाम! यह शैक्ष-शीलकहलाता है।

"और, महानाम! शैक्ष-समाधि क्या है?

"यहां, महानाम! भिक्षु कामभोगोंसे पृथक हो... चतुर्थ ध्यान प्राप्त करता है। महानाम! यह शैक्ष-समाधि कहलाती है।

"महानाम! शैक्ष-प्रज्ञा क्या है?

"यहां, महानाम! भिक्षु 'यह दुःख है', इसे यथाभूत जानता है, 'यह दुःख-समुदय है', इसे यथाभूत जानता है, 'यह दुःख-निरोध है', इसे यथाभूत जानता है, 'यह दुःख निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है', इसे यथाभूत जानता है। महानाम! यह शैक्ष-प्रज्ञा है।

"अब महानाम! वह आर्य-श्रावक शील-संपन्न, समाधि-संपन्न तथा प्रज्ञा-संपन्न होकर आस्रवों का क्षय कर चुकने के अनंतर अनास्रव चित्त-विमुक्ति को, प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में, स्वयं जानकर, साक्षात कर, सम्यक रूप से प्राप्त कर विहार करता है। इस प्रकार महानाम! भगवान ने शैक्ष-शील का भी उपदेश दिया है, अशैक्ष-शील का भी उपदेश दिया है; शैक्ष-समाधि का भी उपदेश दिया है, अशैक्ष-समाधि का भी उपदेश दिया है, शैक्ष-प्रज्ञा का भी उपदेश दिया है, अशैक्ष-प्रज्ञा का भी उपदेश दिया है।"

४. निर्ग्रंथ सुत्त

७५. एक समय आयुष्मान आनन्द वैशाली के महावन में, कूटागारशाला में विहार करते थे। उस समय अभय लिच्छवी तथा पंडितकुमारक लिच्छवी आयुष्मान आनन्द के पास पहुँचे। पहुँच कर आयुष्मान आनन्द को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे लिच्छवी अभय ने आयुष्मान आनन्द को यह कहा –

"भंते! नाटपुत्र निर्ग्रंथ का कहना है कि वे सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं, उन्हें असीम ज्ञान-दर्शन प्राप्त है। उनका कहना है – मुझे चलते समय, खड़े रहते, सोते, जागते, सतत, लगातार ज्ञान-दर्शन उपस्थित रहता है। वे प्रज्ञापन करते

हैं कि तपस्या से पुराने कर्मों का नाश हो जाता है और नये कर्मों के न करने के कारण दूसरे भव को जोड़ने वाला सेतु टूट जाता है। इस प्रकार कर्म के क्षय होने से दुःख का क्षय, दुःख के क्षय होने से वेदना का क्षय, वेदना के क्षय होने से सारे दुःख की निर्जरा होती है। इस प्रकार इस सांदृष्टिक निर्जरा-विशुद्धि से (दुःख का) समतिक्रमण होता है। भंते! भगवान इस विषय में क्या कहते हैं?"

"अभय! उन भगवान, ज्ञानी, दर्शी, अर्हत, सम्यक-संबुद्ध द्वारा ये तीन निर्जरा-विशुद्धियां सम्यक प्रकार कही गयी हैं, प्राणियों की विशुद्धि के लिए, शोक तथा क्रंदन के समतिक्रमण के लिए, दुःख-दौर्मनस्य के नाश के लिए, ज्ञान की प्राप्ति के लिए और निर्वाण को साक्षात करने के लिए। कौन-सी तीन?

"यहां, हे अभय! भिक्षु शीलवान होता है, प्रातिमोक्ष... शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करने वाला। वह नया कर्म नहीं करता है और पुराने कर्मों को छू-छू कर समाप्त कर देता है।[1] (उदीर्ण कर्मसंस्कारों को संवेदनाओं के स्तर पर तटस्थभाव से देख-देखकर निर्जरा कर देता है।) यह सांदृष्टिक निर्जरा है, अकालिक (देश और काल की सीमाओं से परे) है, इसके बारे में कह सकते हैं कि 'आओ और स्वयं परीक्षा कर लो, यह निर्वाण की ओर ले जाने वाली है, इसे प्रत्येक विज्ञ व्यक्ति साक्षात कर सकता है'।

"हे अभय! अब वह शील-संपन्न भिक्षु कामभोगों से दूर हो... चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है! वह नया कर्म नहीं करता है और पुराने कर्मों को छू-छू कर समाप्त कर देता है। यह सांदृष्टिक निर्जरा है, तत्काल फलदायक है। 'आओ और देखो (कहलाने योग्य है), निर्वाण तक ले जाने योग्य है, प्रत्येक समझदार व्यक्ति के साक्षात करने योग्य है'।

"हे अभय! अब वह समाधिसंपन्न भिक्षु आस्रवों का क्षय कर अनास्रव चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं सम्यक रूप से जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करता है। वह नया कर्म नहीं करता है और पुराने कर्मों को छू-छू कर समाप्त कर देता है। यह सांदृष्टिक निर्जरा है, अकालिक

---

१ पालि में **पुराणञ्च कम्मं फुस्स फुस्स ब्यन्तीकरोति** है। इसका अर्थ तब तक ठीक से नहीं समझा जा सकता जब तक विपश्यना का अनुभव न हो। पुराने कर्मों के फल को साधक साधारणतया संवेदनाओं को तटस्थभाव से देखकर समाप्त करते हैं। राग और द्वेष के संस्कार जो भीतर चट्टान की परतों की तरह हैं वे विपश्यना साधना द्वारा ऊपर आते हैं। यदि उन्हें तटस्थ भाव से देखें तो वे तो समाप्त होते ही हैं और नये संस्कार इसलिए नहीं बन पाते क्योंकि उनकी कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। राग और द्वेष की वृद्धि प्रतिक्रिया से होती है। यदि और जलावन डालेंगे तो आग बढ़ेगी ही, पर यदि जलावन डालना छोड़ दें तो आग जल कर बुझ जायगी।

(देश और कालकी सीमाओं से परे) है, इसके बारे में कह सकते हैं कि 'आओ और स्वयं परीक्षा कर लो, यह निर्वाण की ओर ले जाने वाली है, इसे प्रत्येक विज्ञ व्यक्ति साक्षात कर सकता है'।

"अभय! उन भगवान, ज्ञानी, दर्शी, अर्हत, सम्यक-संबुद्ध द्वारा ये तीन निर्जरा-विशुद्धियां सम्यक प्रकार कही गई हैं, प्राणियों की विशुद्धि के लिए, शोक तथा क्रंदन के समतिक्रमण के लिए, दुःख-दौर्मनस्य के नाश के लिए, ज्ञान की प्राप्ति के लिए और निर्वाण को साक्षात करने के लिए।"

ऐसे कहे जाने पर पंडितकुमारक लिच्छवी ने अभय लिच्छवी को यह कहा –

"सौम्य अभय! क्या तू आयुष्मान आनन्द के सुभाषित को सुभाषित कह कर अनुमोदन नहीं करता?"

"सौम्य! मैं आयुष्मान आनन्द के सुभाषित को सुभाषित की तरह अनुमोदन कैसे नहीं करूंगा? जो आयुष्मान आनन्द के सुभाषित को सुभाषित की तरह अनुमोदन न करे, उसका सिर टुकड़े-टुकड़े हो सकता है।"

५. परामर्श सुत्त

७६. एक समय आयुष्मान आनन्द भगवान के पास गये। पास जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द को भगवान ने यह कहा –

"आनन्द! जिसे अनुकंप करने योग्य समझो और जो तुम्हें सुनने योग्य मानें – चाहे वे मित्र हों, चाहे सुहृद हों, चाहे रिश्तेदार हों, चाहे रक्त-संबंधी (परिवार) हों, उन्हें आनन्द! तीन बातों की सलाह देनी चाहिए, तीन बातों में स्थापित करना चाहिए, प्रतिष्ठित करना चाहिए। किन तीन बातों में?

"बुद्ध के प्रति अचल श्रद्धा की सलाह देनी चाहिए… प्रतिष्ठित करना चाहिए – 'ऐसे ही तो हैं वे भगवान! अरहंत, सम्यक-संबुद्ध, विद्या तथा सदाचरण से संपन्न, उत्तम गति प्राप्त, समस्त लोकों के ज्ञाता, सर्व-श्रेष्ठ, (पथ-भ्रष्ट घोड़ों की तरह) भटके लोगों को सही मार्ग पर ले आने वाले सारथी, देवताओं और मनुष्यों के शास्ता (आचार्य), बुद्ध, भगवान।' धर्म के प्रति अचल श्रद्धा की सलाह देनी चाहिए… प्रतिष्ठित करना चाहिए – 'भगवान द्वारा भली प्रकार आख्यात किया गया यह धर्म सांदृष्टिक है, काल्पनिक नहीं, प्रत्यक्ष है, तत्काल फलदायक है, आओ और देखो (कहलाने योग्य है), निर्वाण तक ले जाने योग्य है, प्रत्येक समझदार व्यक्ति के साक्षात करने योग्य है।' संघ

के प्रति अचल श्रद्धा की सलाह देनी चाहिए – 'सुमार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, ऋजुमार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, न्याय (सत्य) मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, यह जो (मार्ग-फलप्राप्त) आर्य-व्यक्तियों के चार जोड़े हैं, यानी आठ पुरुष पुद्गल हैं – यही भगवान का श्रावक-संघ है, (यही) आवाहन करने योग्य है, पाहुना (अतिथि) बनाने योग्य है, दक्षिणा देने योग्य है, अंजलिबद्ध (प्रणाम) किये जाने योग्य है। लोगों का यही श्रेष्ठतम पुण्य-क्षेत्र है।'

"आनन्द! पृथ्वी-धातु, जल-धातु, अग्नि-धातु तथा वायु-धातु का 'अन्यथात्व' (परिवत्तितिरूप) हो सकता है, किंतु बुद्ध में अचल श्रद्धा रखने वाले आर्य-श्रावक का नहीं। इस विषय में 'अन्यथात्व' का अभिप्राय यह है, आनन्द! बुद्ध में अचल श्रद्धा रखने वाला आर्य-श्रावक नरक में पैदा होगा, पशु-योनि में पैदा होगा या प्रेत-योनि में पैदा होगा –इसकी संभावना नहीं है।

"आनन्द! पृथ्वी-धातु, जल-धातु, अग्नि-धातु तथा वायु-धातु का 'अन्यथात्व' हो सकता है, किंतु धर्म में... संघ में अचल श्रद्धा रखने वाले आर्य-श्रावक का नहीं। इस विषय में 'अन्यथात्व' का अभिप्राय यह है, आनन्द! संघ में अचल श्रद्धा रखने वाला आर्य-श्रावक नरक में पैदा होगा, पशु-योनि में पैदा होगा या प्रेत-योनि में पैदा होगा –इसकी संभावना नहीं है।

"आनन्द! जिसे अनुकंप करने योग्य समझो और जो तुम्हें सुनने योग्य मानें –चाहे वे मित्र हों, चाहे सुहृद हों, चाहे रिश्तेदार हों, चाहे रक्त-संबंधी हों –उन्हें आनन्द! इन तीन बातों की सलाह देनी चाहिए, उनमें स्थापित करना चाहिए, प्रतिष्ठित करना चाहिए।"

६. भव सुत्त (प्रथम)

७७. एक समय आयुष्मान आनन्द भगवान के पास पहुँचे। पास जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द ने भगवान को यह कहा –

"भंते! 'भव', 'भव' कहा जाता है। क्या होने से भव होता है?"

"आनन्द! यदि काम-धातु (के कर्म का) विपाक न हो तो क्या काम-भव दिखाई देगा?"

"भंते! नहीं।"

"इसलिए आनन्द! कर्म क्षेत्र (खेत) है, विज्ञान बीज है, तृष्णा जल है, अविद्या-नीवरण वाले तथा तृष्णा-संयोजन वाले प्राणियों का हीन (काम) धातु

में विज्ञान स्थापित होता है। इस प्रकार भविष्य में पुनर्जन्म होता है। इस प्रकार आनन्द! भव होता है।

"आनन्द! यदि रूप-धातु (के कर्म का) विपाक न हो तो क्या रूप-भव दिखाई देगा?"

"भंते! नहीं।"

"इसलिए आनन्द! कर्म क्षेत्र है, विज्ञान बीज है, तृष्णा जल है, अविद्या-नीवरण वाले तथा तृष्णा-संयोजन वाले प्राणियों का मध्यम (रूप) धातु में विज्ञान स्थापित होता है। इस प्रकार भविष्य में पुनर्जन्म होता है। इस प्रकार आनन्द! भव होता है।

"आनन्द! यदि अरूप-धातु (के कर्म का) विपाक न हो तो क्या अरूप-भव दिखाई देगा?"

"भंते। नहीं।"

"इसलिए आनन्द! कर्म क्षेत्र है, विज्ञान बीज है, तृष्णा जल है, अविद्या-नीवरण वाले तथा तृष्णा-संयोजन वाले प्राणियों का श्रेष्ठ (अरूप) धातु में विज्ञान स्थापित होता है। इस प्रकार भविष्य में पुनर्जन्म होता है। इस प्रकार आनन्द! भव होता है।"

७. भव सुत्त (द्वितीय)

७८. एक समय आयुष्मान आनन्द भगवान के पास पहुँचे। पास जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द ने भगवान को यह कहा –

"भंते! 'भव', 'भव' कहा जाता है। क्या होने से भव होता है?"

"आनन्द! यदि काम-धातु (के कर्म का) विपाक न हो तो क्या काम-भव दिखाई देगा?"

"भंते! नहीं।"

"इसलिए आनन्द! कर्म क्षेत्र है, विज्ञान बीज है, तृष्णा जल है, अविद्या-नीवरण वाले तथा तृष्णा-संयोजन वाले प्राणियों की हीन (काम) धातु में चेतना स्थापित होती है, कामना (तृष्णा) स्थापित होती है। इस प्रकार भविष्य में पुनर्जन्म होता है। इस प्रकार आनन्द! भव होता है।

"आनन्द! यदि रूप-धातु (के कर्म का) विपाक न हो तो क्या रूप-भव दिखाई देगा?"

"भंते! नहीं।"

"इसलिए आनन्द! कर्म क्षेत्र है, विज्ञान बीज है, तृष्णा जल है, अविद्या-नीवरण वाले तथा तृष्णा-संयोजन वाले प्राणियों की मध्यम (रूप) धातु में चेतना स्थापित होती है, कामना तृष्णा स्थापित होती है। इस प्रकार भविष्य में पुनर्जन्म होता है। इस प्रकार आनन्द! भव होता है।

"आनन्द! यदि अरूप-धातु (के कर्म का) विपाक न हो तो क्या अरूप-धातु दिखाई देगा?"

"भंते। नहीं।"

"इसलिए आनन्द! कर्म क्षेत्र है, विज्ञान बीज है, तृष्णा जल है, अविद्या-नीवरण वाले तथा तृष्णा-संयोजन वाले प्राणियों की श्रेष्ठ (अरूप) धातु में चेतना स्थापित होती है, कामना (तृष्णा) स्थापित होती है। इस प्रकार भविष्य में पुनर्जन्म होता है। इस प्रकार आनन्द! भव होता है।"

८. शीलव्रत सुत्त

७९. एक समय आयुष्मान आनन्द भगवान के पास पहुँचे। पास जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द को भगवान ने इस प्रकार कहा –

"आनन्द! क्या सभी प्रकार के शील-व्रत, सभी प्रकार की जीवन शैली, सभी प्रकार के ब्रह्मचर्य, सभी प्रकार के उपस्थान-सार (सेवा) सफल होते हैं?"

"भंते! सर्वांश में यह ऐसा नहीं है।"

"तो आनन्द! विभक्त करके कहो।"

"भंते! जिस शील-व्रत से, जिस जीवन शैली से, जिस ब्रह्मचर्य के पालन करने से, जिस उपस्थान-सार (सेवा) से अकुशल-धर्म बढ़ते हैं तथा कुशल-धर्म प्रहीण होते हैं, वह शील-व्रत, वह जीवन शैली, वह ब्रह्मचर्य, वह उपस्थान-सार निष्फल हैं। जिस शील-व्रत से, जिस जीवन शैली से जिस ब्रह्मचर्य से, जिस उपस्थान-सार से अकुशल-धर्म प्रहीण होते हैं तथा कुशल-धर्म बढ़ते हैं, वह शील-व्रत, वह जीवन शैली, वह ब्रह्मचर्य, वह उपस्थान-सार सफल होते हैं।

आयुष्मान आनन्द ने यह कहा। शास्ता संतुष्ट हुए।

अब आयुष्मान आनन्द ने यह जान कर कि शास्ता मेरे उत्तर से संतुष्ट हैं, भगवान को अभिवादन किया और प्रदक्षिणा कर चले गये।

तब भगवान ने आयुष्मान आनन्द के चले जाने के थोड़ी देर बाद भिक्षुओं को बुलाया –"भिक्षुओ! आनन्द शैक्ष है, तो भी प्रज्ञा में इसकी बराबरी करने वाला सुलभ नहीं है।"

९. सुगंधि सुत्त

८०. एक समय आयुष्मान आनन्द भगवान के पास गये। पास जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द ने भगवान को यह कहा –

"भंते! ये तीन प्रकार की सुगंधियां हैं जिनकी सुगंध वायु के अनुकूल ही जाती है, वायु के प्रतिकूल नहीं। कौन-से तीन प्रकार की? मूल-सुगंध, सार-सुगंध तथा पुष्प-सुगंध। भंते! ये तीन प्रकार की सुगंधियां हैं जिनकी सुगंध वायु के अनुकूल ही जाती है, वायु के प्रतिकूल नहीं। भंते! क्या कोई ऐसी सुगंधि है जिसकी सुगंध वायु के अनुकूल भी जाती हो, प्रतिकूल भी जाती हो, अनुकूल-प्रतिकूल भी जाती हो?"

"आनन्द! ऐसी सुगंधि है, जिसकी सुगंध वायु के अनुकूल भी जाती है, प्रतिकूल भी जाती है, अनुकूल-प्रतिकूल भी जाती है।"

"भंते! वह कौन-सी सुगंधि है जिसकी सुगंध वायु के अनुकूल भी जाती है, प्रतिकूल भी जाती है, अनुकूल-प्रतिकूल भी जाती है?"

"यहां, आनन्द! जिस गांव या निगम में स्त्री या पुरुष बुद्ध की शरण गये होते हैं, धर्म की शरण गये होते हैं, संघ की शरण गये होते हैं, प्राणी-हिंसा से विरत होते हैं, चोरी से विरत होते हैं, कामभोगसंबंधी मिथ्याचार से विरत होते हैं, झूठ बोलने से विरत होते हैं, सुरा-मेरय-मद्य आदि प्रमाद के कारणों से विरत होते हैं, कल्याणधर्मी शीलवान होते हैं, मात्सर्य रूपी मल से रहित चित्त से घर में रहते हैं – उदारता से दान देने वाला, शुद्ध मन से, उत्सर्गरत (त्यागकर प्रसन्न होने वाला) होकर, दान देने वाला, जिसके पास याचना की जा सकती है तथा जो धन का उदारता पूर्वक संविभाग करने वाला है।

"उस गांव के श्रमण-ब्राह्मण चारों दिशाओं में गुणानुवाद करते हैं – अमुक गांव में या अमुक निगम में स्त्री या पुरुष बुद्ध की शरण गये होते हैं, धर्म की शरण गये होते हैं, संघ की शरण गये होते हैं, प्राणी-हिंसा से विरत होते हैं, चोरी से विरत होते हैं, कामभोग संबंधी मिथ्याचार से विरत होते हैं, झूठ बोलने से विरत होते हैं, सुरा-मेरय-मद्य आदि प्रमाद के कारणों से विरत होते हैं, कल्याणधर्मी, शीलवान होते हैं, मात्सर्य रूपी मल से रहित चित्त से घर में रहते हैं –उदारता से दान देने वाले, शुद्ध मन से, उत्सर्गरत (त्यागकर प्रसन्न होने वाले), जिसके पास याचना की जा सकती है तथा जो दान का संविभाग करने वाले हैं; देवता भी उस गांव या निगम का गुणानुवाद करते हैं –अमुक

गांव या निगम में स्त्री या पुरुष बुद्ध की शरण गये होते हैं... संविभाग करने वाले हैं। आनन्द! यह ऐसी सुगंधि है, जिसकी सुगंध वायु के अनुकूल भी जाती है, प्रतिकूल भी जाती है, अनुकूल-प्रतिकूल भी जाती है।"

"न पुप्फगन्धो पटिवातमेति, न चन्दनं तगरमल्लिका वा।
सतञ्च गन्धो पटिवातमेति, सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवायती"ति॥

["फूल की सुगंध वायु के विरुद्ध नहीं जाती, न चंदन की, न तगर की और न मल्लिका की। सत्पुरुषों की सुगंध वायु के विरुद्ध भी जाती है। सत्पुरुष की सुगंध सभी दिशाओं में जाती है।"]

१०. सहस्सचूळ लोक धातु सुत्त

८१. एक समय आयुष्मान आनन्द भगवान के पास गये। पहुँचकर भगवान को अभिवादन कर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द ने भगवान को यह कहा –

"भंते! भगवान के मुँह से सुना है, भगवान के मुँह से ग्रहण किया है कि 'हे आनन्द! सिखी (बुद्ध) का अभिभू नाम का श्रावक ब्रह्मलोक में स्थित होकर सहस्री-लोक धातु में अपनी आवाज पहुँचा सकता है (अर्थात, वहां स्थित हो वह जो बोलता है वह सहस्र-लोक धातु में सुनाई देता है।) भंते! भगवान अर्हत हैं, सम्यक संबुद्ध हैं। भगवान की आवाज कहां तक जा सकती है?"

"आनन्द! वह श्रावक है, और तथागतों का बल तो अपरिमेय है।"

दूसरी बार भी आयुष्मान आनन्द ने भगवान को यह कहा –

"भंते! भगवान के मुँह से सुना है, भगवान के मुँह से ग्रहण किया है कि 'हे आनन्द! सिखी (बुद्ध) का अभिभू नाम का श्रावक ब्रह्मलोक में स्थित होकर सहस्री-लोक धातु में अपनी आवाज पहुँचा सकता है। भंते! भगवान अर्हत हैं, सम्यक संबुद्ध हैं। भगवान की आवाज कहां तक जा सकती है?

"आनन्द! वह श्रावक है और तथागतों का बल तो अपरिमेय है।"

तीसरी बार भी आयुष्मान आनन्द ने भगवान को यह कहा –

"भंते! भगवान के मुँह से सुना है, भगवान के मुँह से ग्रहण किया है कि 'हे आनन्द! सिखी (बुद्ध) का अभिभू नाम का श्रावक ब्रह्मलोक में स्थित होकर सहस्री-लोक धातु में अपनी आवाज पहुँचा सकता है। भंते! भगवान अर्हत हैं, सम्यक संबुद्ध हैं। भगवान की आवाज कहां तक जा सकती है?"

"आनन्द! सुना है तूने कि एक सहस्रीचूल लोक धातु है?"

"भगवान! इसी का समय है, सुगत! इसी का समय है। आप कहें। आप से सुनकर भिक्षु ग्रहण करेंगे।"

"तो आनन्द! सुन। अच्छी तरह से मन में धारण कर। कहता हूं।"

"भंते! अच्छा" कह आयुष्मान आनन्द ने भगवान को प्रत्युत्तर दिया। भगवान ने यह कहा –

"आनन्द! जहां तक चंद्रमा और सूर्य का प्रकाश फैला है, वहां तक सहस्रधा लोक हैं। उस प्रकार के सहस्र चंद्रमा होने से, सहस्र सूर्य होने से, सहस्र सुमेरु पर्वतराज होने से, सहस्र जंबुद्वीप होने से, सहस्र अपरगोयान होने से, सहस्र उत्तरकुरु होने से, सहस्र पूर्व-विदेह होने से, चार हजार महासमुद्र होने से, चार हजार महाराजागण होने से, सहस्र चातुम्महाराजिक होने से, सहस्र तावतिंस होने से, सहस्र याम होने से, सहस्र तुसित होने से, सहस्र निम्मान-रति होने से, सहस्र परनिम्मितवसवत्ती होने से, सहस्र ब्रह्मलोक होने से, आनन्द! यह लोक 'सहस्री चूल लोकधातु' कहलाता है। आनन्द! जितना बड़ा क्षेत्र सहस्री चूल लोकधातु का है, वैसे हजार लोकों का एक लोक 'द्विसहस्री मध्यम लोकधातु' कहलाता है। आनन्द! जितना बड़ा क्षेत्र द्विसहस्री मध्यम लोकधातु का है, वैसे हजार लोकों का एक लोक 'त्रिसहस्री-महासहस्री लोकधातु' कहलाता है। आनन्द! यदि तथागत चाहें तो त्रिसहस्री-महासहस्री लोकधातु में अपनी आवाज सुना सकते हैं अथवा और भी जहां तक चाहें।"

"भंते! भगवान त्रिसहस्री-महासहस्री लोकधातु को अथवा जहां तक आकांक्षा करें – उस सारे प्रदेशतक अपनी आवाज कैसे सुनायेंगे?

"यहां, आनन्द! तथागत त्रिसहस्री-महासहस्री लोकधातु को अपने प्रकाश से व्याप्त करते हैं और जब वे प्राणी उस आलोक को पहचान लें तब तथागत घोषणा कर सकते हैं, आवाज सुना सकते हैं। इस प्रकार आनन्द! तथागत आकांक्षा करें तो त्रिसहस्री-महासहस्री लोकधातु तक अपनी आवाज सुना सकते हैं अथवा और भी जहां तक आकांक्षा करें।"

ऐसे कहे जाने पर आयुष्मान आनंद ने आयुष्मान उदायी को कहा – "वास्तव में हम लोगों के लिए यह लाभ है, सुलाभ है यह कि हमारे शास्ता इस प्रकार ऋद्धिमान एवं महानुभाव हैं!" ऐसे कहे जाने पर आयुष्मान उदायी ने आयुष्मान आनन्द को यह कहा –"आनन्द! तुझे इससे क्या लाभ यदि शास्ता इस प्रकार ऋद्धिमानहों अथवा ऐसे महानुभावी हों?"

ऐसा कहने पर भगवान ने आयुष्मान उदायी को यह कहा –"उदायि! ऐसा मत कहो। उदायि! ऐसा मत कहो। उदायि! यदि आनन्द बिना वीतराग हुए शरीर छोड़े तो वह इसी चित्त की प्रसन्नता के कारण देव-लोक में सात बार

देव-राज्य करे अथवा इसी जंबुद्वीप में सात बार महाराजा बने। लेकिन उदायि! आनन्द इसी जीवन में परिनिर्वाण को प्राप्त होगा।"

* * * * *

(९) ४. श्रमण वर्ग

१. श्रमण सुत्त

८२. "भिक्षुओ, ये तीन श्रमण के श्रमण-कर्तव्य हैं। कौन-से तीन? अधि (श्रेष्ठतर)-शील का पालन करना, अधि (श्रेष्ठतर)-चित्त की शिक्षा ग्रहण करना तथा अधि (श्रेष्ठतर)-प्रज्ञा की शिक्षा ग्रहण करना। भिक्षुओ, ये तीन श्रमण के श्रमण-कर्तव्य हैं। इसलिए भिक्षुओ, ठीक ऐसा ही सीखना चाहिए – श्रेष्ठतर-शील पालन के लिए हमारा तीव्र प्रयास होगा, श्रेष्ठतर-चित्त-शिक्षा के लिए हमारा तीव्र प्रयास होगा, श्रेष्ठतर-प्रज्ञा-शिक्षा के लिए हमारा तीव्र प्रयास होगा। भिक्षुओ, ठीक इसी प्रकार तुम्हें सीखना चाहिए।

२. गर्दभ सुत्त

८३. "जैसे भिक्षुओ, कोई गधा बैलों के समूह के पीछे-पीछे हो ले –'मैं भी दान्त बैल ही हूं। मैं भी दान्त बैल ही हूं।' उसका न वैसा रंग होता है जैसा बैलों का, न वैसी आवाज़ होती है जैसी बैलों की, न वैसे पांव होते हैं जैसे बैलों के। वह बैलों के पीछे-पीछे लगा रहता है –'मैं भी दान्त बैल ही हूं, मैं भी दान्त बैल ही हूं।'

"इसी प्रकार भिक्षुओ, यहां कोई-कोई भिक्षु भिक्षु-संघ के पीछे-पीछे चलता रहता है –'मैं भी भिक्षु हूं, मैं भी भिक्षु हूं।' उसका न श्रेष्ठतर-शील पालन के लिए वैसा प्रयास होता है जैसा अन्य भिक्षुओं का, न श्रेष्ठतर-चित्त-शिक्षा के लिए वैसा प्रयास होता है जैसा अन्य भिक्षुओं का, न श्रेष्ठतर-प्रज्ञा-शिक्षा के लिए वैसा प्रयास होता है जैसा अन्य भिक्षुओं का। वह केवल भिक्षु-संघ के पीछे-पीछे चलता रहता है –'मैं भी भिक्षु हूं, मैं भी भिक्षु हूं।'

"इसलिए भिक्षुओ, ठीक ऐसा ही सीखना चाहिए –'श्रेष्ठतर-शील पालन के लिए हमारा तीव्र प्रयास होगा, श्रेष्ठतर-चित्त-शिक्षा के लिए हमारा तीव्र प्रयास होगा, श्रेष्ठतर-प्रज्ञा-शिक्षा के लिए हमारा तीव्र प्रयास होगा।' भिक्षुओ, ठीक इसी प्रकार तुम्हें सीखना चाहिए।"

३. क्षेत्र सुत्त

८४. “भिक्षुओ, कृषक-गृहस्थ के लिए ये तीन पूर्व-कृत्य हैं। कौन-से तीन?

“यहां, भिक्षुओ, कृषक-गृहपति सावधानी से खेत को अच्छी तरह जोतकर मिट्टी ठीक करता है, सावधानी से खेत को अच्छी तरह जोतकर मिट्टी ठीक करके समय पर बीज बोता है, समय पर बीज बोकर पानी देता भी है, बंद भी करता है। भिक्षुओ, कृषक-गृहस्थ के लिए ये तीन पूर्व-कृत्य हैं।

“इसी प्रकार भिक्षुओं के ये तीन भिक्षु-पूर्व-कृत्य हैं। कौन-से तीन?

“श्रेष्ठतर-शील का पालन करना चाहिए, श्रेष्ठतर-चित्त-शिक्षा का अभ्यास करना चाहिए, श्रेष्ठतर-प्रज्ञा-शिक्षा की भावना करनी चाहिए। भिक्षुओ, ये तीन भिक्षु के पूर्व-कृत्य हैं। इसलिए भिक्षुओ, ठीक ऐसा ही सीखना चाहिए – श्रेष्ठतर-शील पालन के लिए हमारा तीव्र प्रयास होगा, श्रेष्ठतर-चित्त-शिक्षा के लिए हमारा तीव्र प्रयास होगा, श्रेष्ठतर-प्रज्ञा-शिक्षा के लिए हमारा तीव्र प्रयास होगा। भिक्षुओ, ठीक इसी प्रकार तुम्हें सीखना चाहिए।”

४. वज्जिपुत्र सुत्त

८५. एक समय भगवान वैशाली के महावन में, कूटागारशाला में विहार करते थे। उस समय एक वज्जिपुत्र भिक्षु भगवान के पास पहुँचा... एक ओर बैठे उस वज्जिपुत्र भिक्षु ने भगवान को यह कहा –

“भंते! यह डेढ़ सौ से अधिक शिक्षा-पद प्रत्येक आधे-महीने पर पाठ किये जाते हैं। ये अधिक हैं। भंते! मैं इतने शिक्षा-पद नहीं सीख सकता।”

“भिक्षु! क्या तू तीन शिक्षा-पदों का पालन कर सकेगा – अधिशील संबंधी शिक्षा-पद, अधिचित्त संबंधी शिक्षा-पद, अधिप्रज्ञा संबंधी शिक्षा-पद?”

“भंते! मैं इन तीन शिक्षा-पदों को –अधिशील संबंधी शिक्षा-पद को, अधिचित्त संबंधी शिक्षा-पद को और अधिप्रज्ञा संबंधी शिक्षा-पद को सीख सकूंगा।”

“इसलिए भिक्षु तू ठीक ऐसे ही तीन शिक्षा-पदों को सीख – अधिशील संबंधी शिक्षा-पद को, अधिचित्त संबंधी शिक्षा-पद को तथा अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा पद को। हे भिक्षु! क्योंकि तू अधिशील संबंधी शिक्षा-पद का भी पालन करेगा, अधिचित्त संबंधी शिक्षा-पद का भी पालन करेगा, तथा अधिप्रज्ञा संबंधी शिक्षा-पद का भी पालन करेगा, इसलिए तेरे राग का भी प्रहाण हो

जायगा, द्वेष का भी प्रहाण हो जायगा, मोह का भी प्रहाण हो जायगा। इस प्रकार राग, द्वेष तथा मोह का प्रहाण हो जाने के कारण जो अकुशल-धर्म हैं उसे नहीं करोगे, पाप का सेवन नहीं करोगे।"

तब उस भिक्षु ने आगे चलकर अधिशील संबंधी शिक्षा का भी अभ्यास किया, अधिचित्त संबंधी शिक्षा का भी अभ्यास किया, अधिप्रज्ञा संबंधी शिक्षा का भी अभ्यास किया। उसके अधिशील, अधिचित्त तथा अधिप्रज्ञा संबंधी शिक्षाओं के अभ्यास करने से उसके राग, द्वेष तथा मोह का प्रहाण हो गया। राग, द्वेष तथा मोह का प्रहाण हो जाने के कारण वह अकुशल-धर्म से बचा रहा तथा उसने पाप-कर्म नहीं किया।

५. शैक्ष सुत्त

८६. एक समय एक भिक्षु भगवान के पास गया। ...एक ओर बैठा हुआ वह भिक्षु भगवान से यह बोला –

"भंते! 'शैक्ष' 'शैक्ष' कहा जाता है। क्या होने से 'शैक्ष' होता है?

"भिक्षु, सीखता (ग्रहण करता) है, इसलिए 'शैक्ष' कहलाता है।

"क्या सीखता है?

"अधिशील संबंधी शिक्षा ग्रहण करता है, अधिचित्त संबंधी शिक्षा ग्रहण करता है तथा अधिप्रज्ञा संबंधी शिक्षा ग्रहण करता है। इसीलिए वह भिक्षु 'शैक्ष' कहलाता है।"

"सेखस्स सिक्खमानस्स, उजुमग्गानुसारिनो।
खयस्मिं पठमं ञाणं, ततो अञ्ञा अनन्तरा॥

"ततो अञ्ञाविमुत्तस्स, ञाणं वे होति तादिनो।
अकुप्पा मे विमुत्तीति, भवसंयोजनक्खये"ति॥

["जो शिक्षार्थी है, जो शैक्ष है, जो ऋजु मार्ग पर चलने वाला है, उसे पहले क्षय के विषय में ज्ञान होता है, उसके बाद प्रज्ञा की प्राप्ति होती है, तब उस प्रज्ञाविमुक्त को निश्चित रूप से यह ज्ञान होता है कि मेरे भव-संयोजनों का क्षय हो गया और अब मुझे अचल-विमुक्ति प्राप्त हो गयी है।"]

६. शिक्षा सुत्त (प्रथम)

८७. "भिक्षुओ, यह जो डेढ़ सौ 'अधिक' शिक्षा-पद हैं, यह हर पखवारे पाठ किये जाते हैं, जिन्हें स्व-हित चाहने वाले कुलपुत्र सीखते हैं। भिक्षुओ, ये सभी तीन शिक्षाओं के अंतर्गत आ जाते हैं। कौन-सी तीन?

"अधिशील-संबंधी शिक्षा, अधिचित्त-संबंधी शिक्षा, अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा। भिक्षुओ, ये तीन शिक्षाएं हैं जिनके अंतर्गत ये सभी आ जाते हैं।

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलों को परिपूर्ण रूप से पालन करने वाला होता है, समाधि तथा प्रज्ञा का भी यथाबल पालन करने वाला होता है। वह जो छोटे-बड़े दोष हैं उन्हें करता भी है, उनसे मुक्त होता भी है। यह किसलिए? मैंने ऐसा हो सकना असंभव नहीं कहा है। जो आदि-ब्रह्मचर्यक शिक्षा-पद हैं, जो श्रेष्ठ जीवन के अनुकूल शिक्षा-पद हैं, उनके विषय में वह स्थिर-शील होता है, स्थित-शील; वह शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। तीन संयोजनों के परिक्षय हो जाने पर स्रोतापन्न होता है, चारों अपाय योनियों में जाने से मुक्त, निश्चित संबोधि-परायण।

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलों को परिपूर्ण रूप से पालन करने वाला होता है, समाधि तथा प्रज्ञा का भी यथाबल पालन करने वाला होता है। वह जो छोटे-बड़े दोष हैं उन्हें करता भी है, उनसे मुक्त होता भी है। यह किसलिए? मैंने ऐसा हो सकना असंभव नहीं कहा है। जो आदि-ब्रह्मचर्यक शिक्षा-पद हैं, जो श्रेष्ठ जीवन के अनुकूल शिक्षा-पद हैं, उनके विषय में वह स्थिर-शील होता है, स्थित-शील; वह शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। तीन संयोजनों के परिक्षय हो जाने पर राग, द्वेष तथा मोह के क्षीण (कम) हो जाने पर वह सकृदागामी होता है, एक ही बार और इस लोक में आकर दुःख का अंत करता है।

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलों को परिपूर्ण रूप से पालन करने वाला होता है, समाधि को परिपूर्ण रूप से पालन करने वाला तथा प्रज्ञा का भी यथाबल पालन करने वाला होता है। वह जो छोटे-बड़े दोष हैं उन्हें करता भी है, उनसे मुक्त होता भी है। यह किसलिए? मैंने ऐसा हो सकना असंभव नहीं कहा है। जो आदि-ब्रह्मचर्यक शिक्षा-पद हैं, जो श्रेष्ठ जीवन के अनुकूल शिक्षा-पद हैं, उनके विषय में वह स्थिर-शील होता है, स्थित-शील; वह शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। वह पांच ओरंभागिय संयोजनों का परिक्षय कर सहज रूप से उत्पन्न होने वाला होता है, वहीं से परिनिर्वाण को प्राप्त होने वाला, वह उस लोक से लौटने वाला नहीं होता।

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलों को परिपूर्ण करने वाला होता है, समाधि तथा प्रज्ञा का भी यथासंभव पालन करने वाला होता है। वह जो छोटे-बड़े दोष हैं उन्हें करता भी है, उनसे मुक्त भी होता है। यह किसलिए? मैंने ऐसा हो सकना असंभव नहीं कहा है। जो आदि-ब्रह्मचर्यक शिक्षा-पद हैं, जो श्रेष्ठ

जीवन के अनुकूल शिक्षा-पद हैं, उनके विषय में वह स्थिर-शील होता है, स्थित-शील; वह शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। वह आस्रवों का क्षय करके, अनास्रव-चित्त की विमुक्ति को, प्रज्ञा की विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करता है।

"भिक्षुओ, अपूर्ण रूप से पालन करनेवाला (सीमित क्षेत्र में काम करनेवाले – स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी) अपूर्ण रूप से प्राप्त करता है, संपूर्ण रूप से पालन करनेवाला (परिपूर्ण रूप से पालन करनेवाला अर्हत) संपूर्ण रूप से प्राप्त करता है, लेकिन किसी भी रूप में शिक्षा-पदों का पालन वंध्य (निष्फल) नहीं ही होता, यह मैं कहता हूं।"

७. शिक्षा सुत्त (द्वितीय)

८८. "यह जो डेढ़ सौ 'अधिक' शिक्षा-पद हैं, यह हर पखवारे पाठ किये जाते हैं, जिन्हें स्व-हित चाहने वाले कुलपुत्र सीखते हैं। भिक्षुओ, ये सभी तीन शिक्षाओं के अंतर्गत आ जाते हैं। कौन-सी तीन?

"अधिशील-संबंधी शिक्षा, अधिचित्त-संबंधी शिक्षा, अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा। भिक्षुओ, ये तीन शिक्षाएं हैं जिनके अंतर्गत ये सभी आ जाते हैं।

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलों का परिपूर्ण रूप से पालन करनेवाला होता है, समाधि तथा प्रज्ञा का भी यथाबल पालन करनेवाला होता है। वह जो छोटे-बड़े दोष हैं, उन्हें करता भी है, उनसे मुक्त होता भी है। यह किसलिए? मैंने ऐसा हो सकना असंभव नहीं कहा है। जो आदि-ब्रह्मचर्यक शिक्षा-पद हैं, जो श्रेष्ठ जीवन के अनुकूल शिक्षा-पद हैं, उनके विषय में वह स्थिर-शील होता है, स्थित-शील; वह शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। वह तीन संयोजनों का क्षय करके, अधिक-से-अधिक सात बार जन्म ग्रहण करनेवाला होता है, सात जन्म तक देव-योनि वा मनुष्य-योनि में जन्म ग्रहण करके दुःख का नाश करता है। वह तीन संयोजनों का क्षय करके 'कोलंकोल' होता है, अर्थात दो या तीन जन्म ग्रहण करके दुःख का नाश करता है। वह तीन संयोजनों का क्षय करके 'एकबीजी' होता है, अर्थात एक ही बार मनुष्य-देह धारण कर दुःख का नाश करता है। तीन संयोजनों के क्षय हो जाने पर, राग, द्वेष तथा मोह के क्षीण हो जाने पर वह सकृदागामी होता है, एक ही बार और इस लोक में आकर दुःख का क्षय करता है।

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलों का परिपूर्ण रूप से पालन करनेवाला होता है, समाधि को भी परिपूर्ण करनेवाला तथा प्रज्ञा का भी यथाबल...। वह जो

छोटे-बड़े दोष हैं उन्हें करता भी है, उनसे मुक्त होता भी है। यह किसलिए? मैंने ऐसा हो सकना असंभव नहीं कहा है। जो आदि-ब्रह्मचर्यक शिक्षा-पद हैं, जो श्रेष्ठ जीवन के अनुकूल शिक्षा-पद हैं, उनके विषय में वह स्थिर-शील होता है, स्थित-शील; वह शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। वह पांच ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके ऊर्ध्वगामी होता है, उच्च लोकों में जाने वाला, अकनिष्ठगामी। वह पांच ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके ससंस्कार-परिनिर्वाण-प्राप्त होता है। वह पांच ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके असंस्कार-परिनिर्वाण-प्राप्त होता है, वह पांच ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके उपहत्य-परिनिर्वाण-प्राप्त होता है, वह पांच ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके अन्तरा-परिनिर्वाण-प्राप्त होता है।

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलों का परिपूर्ण रूप से पालन करने वाला होता है, समाधि तथा प्रज्ञा का भी परिपूर्णता से...। वह जो छोटे-मोटे दोष हैं उन्हें करता भी है, उनसे मुक्त होता भी है। यह किसलिए? मैंने ऐसा हो सकना असंभव नहीं कहा है। जो आदि-ब्रह्मचर्यक शिक्षा-पद हैं, जो श्रेष्ठ-जीवन के अनुकूल शिक्षा-पद हैं, उनके विषय में वह स्थिर-शील होता है, स्थित-शील; वह शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। वह आस्रवों का क्षय करके, अनास्रव चित्त-विमुक्ति को, प्रज्ञा की विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करता है।

"भिक्षुओ, अपूर्ण रूप से पालन करने वाला अपूर्ण रूप से प्राप्त करता है, संपूर्ण रूप से पालन करने वाला संपूर्ण रूप से प्राप्त करता है, लेकिन किसी भी रूप में शिक्षा-पदों का पालन वंध्य नहीं ही होता, यह मैं कहता हूं।"

८. शिक्षा सुत्त (तृतीय)

८९. "यह जो डेढ़ सौ 'अधिक' शिक्षा-पद हैं, यह हर पखवारे पाठ किये जाते हैं, जिन्हें स्व-हित चाहने वाले कुलपुत्र सीखते हैं। भिक्षुओ, ये सभी तीन शिक्षाओं के अंतर्गत आ जाते हैं। कौन-सी तीन?

"अधिशील-संबंधी शिक्षा, अधिचित्त-संबंधी शिक्षा, अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा। भिक्षुओ, ये तीन शिक्षाएं हैं जिनके अंतर्गत ये सभी आ जाते हैं।

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलों का परिपूर्ण पालन करने वाला होता है, समाधि तथा प्रज्ञा का भी परिपूर्णता से...। वह जो छोटे-बड़े दोष हैं उन्हें करता भी है, उनसे मुक्त होता भी है। यह किसलिए? मैंने ऐसा हो सकना असंभव नहीं कहा है। जो आदि-ब्रह्मचर्यक शिक्षा-पद हैं, जो श्रेष्ठ जीवन के अनुकूल शिक्षा-पद हैं उनके विषय में वह स्थिर-शील होता है, स्थित-शील; वह

शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। वह आस्रवों का क्षय करके अनास्रव चित्त-विमुक्ति को, प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्तकर विहारकरता है।

"अथवा यदि अर्हत्व प्राप्त न हो तो वह अनागामी पांच ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके अन्तरा-परिनिर्वाण को प्राप्त करता है। यदि वैसा भी न हो, तो वह पांच ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके उपहत्य-परिनिर्वाण प्राप्त करता है... असंस्कार-परिनिर्वाण-प्राप्त होता है... संस्कार-परिनिर्वाण-प्राप्त होता है। वह पांच ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके ऊर्ध्वगामी होता है, उच्च लोकोंमें जाने वाला, अकनिष्ठगामी।यदि वैसा भी न हो, तो तीन संयोजनों के क्षय हो जाने पर, राग, द्वेष तथा मोह के क्षीण हो जाने पर वह सकृदागामी होता है, एक ही बार और इस लोक में आकर दुःख का क्षय करता है। यदि वैसा भी न हो, तो तीन संयोजनों के क्षय हो जाने पर वह 'एकबीजी' होता है, अर्थात एक ही बार मनुष्य-देह धारण कर दुःख का नाश करता है। यदि वैसा भी न हो, तो तीनों संयोजनों के क्षय हो जाने पर वह 'कोलंकोलं' होता है, अर्थात दो या तीन जन्म ग्रहण करके दुःख का नाश करता है। यदि वैसा भी न हो, तो तीनों संयोजनों के क्षय हो जाने पर वह अधिक-से-अधिक सात बार जन्म ग्रहण करने वाला होता है, सात जन्म तक देव-योनि वा मनुष्य-योनि में जन्म ग्रहण करके दुःख का क्षय करता है।

"भिक्षुओ, अपूर्ण रूप से पालन करने वाला अपूर्ण रूप से प्राप्त करता है, संपूर्ण रूप से पालन करने वाला संपूर्ण रूप से प्राप्त करता है, लेकिन किसी भी रूप में शिक्षा-पदों का पालन वंध्य नहीं ही होता, यह मैं कहता हूं।"

९. शिक्षात्रय सुत्त (प्रथम)

९०. "भिक्षुओ, ये तीन शिक्षाएं हैं। कौन-सी तीन?

"अधिशील-संबंधी शिक्षा, अधिचित्त-संबंधी शिक्षा, तथा अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा।

"भिक्षुओ, अधिशील-संबंधी शिक्षा क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलवान होता है... सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। भिक्षुओ, यह है अधिशील-संबंधी शिक्षा।

"और भिक्षुओ, अधिचित्त-संबंधी शिक्षा क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु कामभोगों से पृथक हो... चतुर्थ ध्यान प्राप्त कर विहार करता है। भिक्षुओ, यह कहलाती है अधिचित्त-संबंधीशिक्षा।

"और भिक्षुओ, अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, 'भिक्षु यह दु:ख है', इसे यथार्थ रूप से जानता है,... 'यह दु:खनिरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है', इसे यथार्थ रूप से जानता है। भिक्षुओ, यह कहलाती है अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा।

"भिक्षुओ, ये तीनों शिक्षाएं हैं।"

१०. शिक्षात्रय सुत्त (द्वितीय)

९१. "भिक्षुओ, ये तीन शिक्षाएं हैं। कौन-सी तीन?

"अधिशील-संबंधी शिक्षा, अधिचित्त-संबंधी शिक्षा तथा अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा।

"भिक्षुओ, अधिशील-संबंधी शिक्षा क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलवान होता है... सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। भिक्षुओ, यह कहलाती है अधिशील-संबंधी शिक्षा।

"और, भिक्षुओ, अधिचित्त-संबंधी शिक्षा क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु कामभोगों से पृथक हो... चतुर्थ ध्यान प्राप्त कर विहार करता है। भिक्षुओ, यह कहलाती है अधिचित्त-संबंधीशिक्षा।

"और, भिक्षुओ, अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु आस्रवों का क्षय करके अनास्रव चित्त-विमुक्ति को, प्रज्ञा-विमुक्ति को, इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करता है। भिक्षुओ, यह कहलाती है अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा। भिक्षुओ, ये तीन शिक्षाएं हैं।"

"अधिसीलं अधिचित्तं, अधिपञ्ञञ्च वीरियवा।
थामवा धितिमा झायी, सतो गुत्तिन्द्रियो चरे॥

"यथा पुरे तथा पच्छा, यथा पच्छा तथा पुरे।
यथा अधो तथा उद्धं, यथा उद्धं तथा अधो॥

"यथा दिवा तथा रत्तिं, यथा रत्तिं तथा दिवा।
अभिभुय्य दिसा सब्बा, अप्पमाणसमाधिना॥

"तमाहु सेखं पटिपदं, अथो संसुद्धचारियं।
तमाहु लोके सम्बुद्धं, धीरं पटिपदन्तगुं॥

"विञ्ञाणस्स निरोधेन, तण्हाक्खयविमुत्तिनो।
पज्जोतस्सेव निब्बानं, विमोक्खो होति चेतसो"ति॥

["जो प्रयत्न-शील है, जो सामर्थ्यवान है, जो धृतिमान है, जो ध्यानी है, जो स्मृतिमान है, जो संयमी है, उसे चाहिए कि वह अधिशील-संबंधी, अधिचित्त-संबंधी तथा अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षाओं के अनुसार आचरण करे। जैसे पहले (तीनों शिक्षाओं का पालन करता है) वैसे ही बाद (में करे), जैसे बाद में वैसे ही पहले; उसी प्रकार जैसे (शरीर के) निचले हिस्से के प्रति (प्रतिकूल भावना रखता है) वैसे ही ऊपर के हिस्से के प्रति रखे; जैसे ऊपर के हिस्से के प्रति (प्रतिकूल भावना रखता है), वैसे ही निचले हिस्से के प्रति रखे। जैसे दिन में तीनों प्रकार की शिक्षाओं के अनुसार चलता है, वैसे ही रात में, जैसे रात में वैसे ही दिन में चले। इस प्रकार असीम समाधि द्वारा जो सभी दिशाओं को जीत लेता है वही शैक्ष-मार्गी है। जो लोक में सम्यक प्रकार शुद्धाचारी है, उसी को संबुद्ध कहते हैं, उसी को वीर कहते हैं, उसी को मार्ग के अंत तक जाने वाला कहते हैं। विज्ञान का निरोध होने पर, तृष्णा के क्षय-स्वरूप प्राप्त मुक्ति वाले को, प्रदीप के निर्वाण की तरह चित्त का मोक्ष प्राप्त होता है।"]

११. सङ्कवा सुत्त

९२. एक समय महान भिक्षु-संघ के साथ भगवान कोशल में चारिका करते-करते कोशलों के सङ्कवा नामक निगम में पहुँचे। वहां भगवान सङ्कवा में विहार करते थे, सङ्कवा नाम के कोशलों के निगम में।

उस समय काश्यपगोत्र नामक भिक्षु सङ्कवा में रहता था। वहां भगवान शिक्षा-पद-युक्त धार्मिक कथा से भिक्षुओं का शिक्षण करते थे, उन्हें प्रेरित करते थे, उन्हें उत्साहित करते थे, उन्हें संप्रहर्षित करते थे। उस समय जब भगवान शिक्षा-पद-युक्त धार्मिक कथा से भिक्षुओं का शिक्षण कर रहे थे, उन्हें प्रेरित कर रहे थे, उन्हें उत्साहित कर रहे थे, उन्हें संप्रहर्षित कर रहे थे, तब काश्यपगोत्र भिक्षु अधीर हुआ, उसके मन में असंतोष जागा –'यह श्रमण बना-बनाकर मीठी-मीठी बातें कर रहा है'।

तब भगवान सङ्कवा में यथारुचि विहार कर राजगृह की ओर चारिका के लिए निकल पड़े। क्रमशः चारिका करते हुये राजगृह जा पहुँचे। तब भगवान राजगृह में विहार करते थे।

तब भगवान के चले जाने के थोड़ी देर बाद काश्यपगोत्र भिक्षु के मन में कौकृत्य हुआ, पश्चात्ताप हुआ –"यह मेरे अलाभ की ही बात है, लाभ की नहीं है, यह मेरा दुर्लभ ही है, सुलभ नहीं है जो भगवान के शिक्षा-पद-युक्त धार्मिक-कथा से भिक्षुओं का शिक्षण करते समय, उन्हें प्रेरित करते समय, उन्हें

उत्साहित करते समय, उन्हें संप्रहर्षित करते समय मेरे मन में अशांति हुई, असंतोष हुआ –'यह श्रमण बना-बनाकर मीठी-मीठी बातें कर रहा है।' क्यों न मैं भगवान ही के पास जाऊं, और जाकर भगवान के सामने अपना अपराध अपराध के रूप में स्वीकार करूं?"

तब काश्यपगोत्र भिक्षु शयनासन को लपेट, पात्र-चीवर ले, राजगृह पहुँचा। क्रमशः गृध्रकूट पर्वत पर, भगवान के पास पहुँचा। पहुँच कर, अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे काश्यपगोत्र भिक्षु ने भगवान से यह कहा –

"भंते! भगवान एक समय सङ्कवा में विहार कर रहे थे, सङ्कवा नाम के कोशलों के निगम में। वहां भगवान ने शिक्षा-पद-युक्त धार्मिक कथा से भिक्षुओं का शिक्षण किया, उन्हें प्रेरित किया, उन्हें उत्साहित किया तथा उन्हें संप्रहर्षित किया। उस समय जब भगवान शिक्षा-पद-युक्त धार्मिक कथा से भिक्षुओं का शिक्षण कर रहे थे, उन्हें प्रेरित कर रहे थे, उन्हें उत्साहित कर रहे थे, उन्हें संप्रहर्षित कर रहे थे, उस समय मेरे मन में अशांति हुई, असंतोष हुआ –'यह श्रमण बना-बना कर मीठी-मीठी बातें कर रहा है।' तब भगवान सङ्कवा में यथारुचि विहार करके राजगृह की ओर चारिका के लिए निकल पड़े। भंते! भगवान के चले जाने के थोड़ी ही देर बाद मेरे मन में कौकृत्य हुआ, पश्चात्ताप हुआ – यह मेरे अलाभ की ही बात है, लाभ की नहीं है, यह मेरा दुर्लभ ही है, सुलाभ नहीं है जो भगवान के शिक्षा-पद-युक्त धार्मिक कथा से भिक्षुओं का शिक्षण करते समय, उन्हें प्रेरित करते समय, उन्हें उत्साहित करते समय, उन्हें संप्रहर्षित करते समय मेरे मन में अशांति हुई, असंतोष हुआ – 'यह श्रमण बना-बना कर मीठी-मीठी बातें कर रहा है।' क्यों न मैं भगवान के पास जाऊं, और भगवान के पास अपराध को अपराध के रूप में स्वीकार करूं? भंते! गलती हो गई, मेरी मूर्खता थी, मूढ़ता थी, मेरा दुष्कृत्य था, जो भगवान के शिक्षा-पद-युक्त धार्मिक कथा से भिक्षुओं का शिक्षण करते समय, उन्हें प्रेरित करते समय, उन्हें उत्साहित करते समय, उन्हें संप्रहर्षित करते समय मेरे मन में अशांति हुई, असंतोष हुआ – 'यह श्रमण बना-बना कर मीठी-मीठी बातें कर रहा है।' भंते! भगवान मेरे अपराध को अपराध के रूप में स्वीकार करें ताकि मैं भविष्य में संयत रह सकूं।"

"निश्चय ही काश्यप तूने गलती की, तेरी मूर्खता थी, मूढ़ता थी, तेरा दुष्कृत्य था, जो मेरे शिक्षा-पद-युक्त धार्मिक कथा से भिक्षुओं का शिक्षण करते समय, उन्हें प्रेरित करते समय, उन्हें उत्साहित करते समय, उन्हें संप्रहर्षित

करते समय तेरे मन में अशांति हुई, तेरे मन में असंतोष हुआ – 'यह श्रमण बना-बना कर मीठी-मीठी बातें कर रहा है।' क्योंकि काश्यप, तू गलती को गलती जानकर उसे यथोचित रूप से स्वीकार कर रहा है, हम तेरी इस भूल को स्वीकार करते हैं। काश्यप! आर्य-विनय के अनुसार इससे उन्नति ही होती है जो अपने अपराध को अपराध के रूप में स्वीकार करता है और भविष्य में संयत रहता है।

"हे काश्यप! चाहे कोई भिक्षु 'स्थविर' हो, लेकिन यदि वह शिक्षा-कामी न हो, शिक्षा ग्रहण करने की प्रशंसा करने वाला न हो, जो दूसरे अशिक्षा-कामी भिक्षु हों उन्हें शिक्षा की ओर प्रेरित नहीं करता है, जो दूसरे शिक्षा-कामी भिक्षु हैं उनकी उचित समय पर यथार्थ सच्ची प्रशंसा नहीं करता, काश्यप! इस प्रकार के स्थविर भिक्षु की मैं भी प्रशंसा नहीं करता। यह किसलिए? 'शास्ता इसकी प्रशंसा करते हैं' सोच दूसरे भिक्षु उसकी संगति कर सकते हैं। जो उसकी संगत करेंगे वे उसका अनुकरण करेंगे। जो उसका अनुकरण करेंगे, वह उनके लिए चिरकाल तक अहित, दुःख का कारण होगा। इसलिए काश्यप! मैं इस प्रकार के भिक्षु की प्रशंसा नहीं करता।

"हे काश्यप! चाहे कोई भिक्षु 'बीच की आयु' का हो,... चाहे कोई भिक्षु 'नया' हो, लेकिन यदि वह शिक्षा-कामी न हो, शिक्षा ग्रहण करने की प्रशंसा करने वाला न हो, जो दूसरे अशिक्षा-कामी भिक्षु हों उन्हें शिक्षा की ओर आकर्षित नहीं करता है, जो दूसरे शिक्षा-कामी भिक्षु हों उनकी उचित समय पर, यथार्थ सच्ची प्रशंसा न करता हो, काश्यप! इस प्रकार के नये भिक्षु की भी मैं प्रशंसा नहीं करता। यह किसलिए? 'शास्ता इसकी प्रशंसा करते हैं' सोच दूसरे भिक्षु उसकी संगत कर सकते हैं। जो उसकी संगत करेंगे, वे उसका अनुकरण करेंगे। जो उसका अनुकरण करेंगे, वह उनके लिए चिरकाल तक अहित, दुःख का कारण होगा। इसलिए काश्यप! मैं इस प्रकार के भिक्षु की प्रशंसा नहीं करता।

"हे काश्यप! चाहे कोई भिक्षु 'स्थविर' हो, लेकिन यदि वह शिक्षा-कामी हो, शिक्षा ग्रहण करने की प्रशंसा करने वाला हो, जो दूसरे अशिक्षा-कामी भिक्षु हों उन्हें शिक्षा की ओर आकर्षित करता हो, जो दूसरे शिक्षा-कामी भिक्षु हों उनकी उचित समय पर यथार्थ सच्ची प्रशंसा करता हो, काश्यप! इस प्रकार के स्थविर भिक्षु की मैं प्रशंसा करता हूं। यह किसलिए? 'शास्ता इसकी प्रशंसा करते हैं' सोच दूसरे भिक्षु उसकी संगति कर सकते हैं। जो उसकी संगति करेंगे वे उसका अनुकरण करेंगे। जो उसका अनुकरण करेंगे वह उनके लिए

चिरकालतक हित सुख के लिए होगा। इसलिए काश्यप! मैं इस प्रकार के भिक्षु की प्रशंसा करता हूं।

"हे काश्यप! चाहे कोई भिक्षु 'बीच की आयु' का हो... चाहे कोई भिक्षु 'नया' हो, लेकिन यदि वह शिक्षा-कामी हो, शिक्षा ग्रहण करने की प्रशंसा करने वाला हो, जो दूसरे अशिक्षा-कामी भिक्षु हों उन्हें शिक्षा की ओर आकर्षित करता हो, जो दूसरे शिक्षा-कामी भिक्षु हों उनकी उचित समय पर यथार्थ सच्ची प्रशंसा करता हो, काश्यप! इस प्रकार के नये भिक्षु की मैं प्रशंसा करता हूं। यह किसलिए? 'शास्ता इसकी प्रशंसा करते हैं' सोच दूसरे भिक्षु उसकी संगति कर सकते हैं। जो उसकी संगति करेंगे वे उसका अनुकरण करेंगे। जो उसका अनुकरण करेंगे वह उनके लिए चिरकालतक हित सुख के लिए होगा। इसलिए काश्यप! मैं इस प्रकार के भिक्षु की प्रशंसा करता हूं।"

* * * * *

(१०) ५. नमक वर्ग

१. अत्यावश्यक सुत्त

९३. "भिक्षुओ, कृषक-गृहपति के लिए ये तीन अविलंब करने योग्य कर्तव्य हैं। कौन-से तीन?

"यहां, भिक्षुओ, कृषक-गृहपति जल्दी-जल्दी खेत में हल जोत कर उसकी मिट्टी ठीक करता है, जल्दी-जल्दी खेत में हल जोत कर मिट्टी ठीक करके बीजों को बोता है, तथा जल्दी-जल्दी बीजों को बोकर जल्दी-जल्दी पानी देता भी है, बंद भी करता है। भिक्षुओ, ये तीन कृषक-गृहपति के अविलंब करने योग्य कर्तव्य हैं।

"भिक्षुओ, उस कृषक-गृहपति के पास ऐसा कोई ऋद्धि-बल या प्रताप नहीं है, जिससे वह यह कर सके कि 'आज ही मेरे धान उग जायं, कल दाने पड़ जायं और परसों पक जायं।' भिक्षुओ, समय आता है जब उस कृषक-गृहपति के वे धान उगते भी हैं, उनमें दाने पड़ते भी हैं और वे पकते भी हैं।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, ये तीन भिक्षु के करने योग्य कर्तव्य हैं। कौन-से तीन?

"अधिशील-संबंधी शिक्षा का ग्रहण, अधिचित्त-संबंधी शिक्षा का ग्रहण, तथा अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा का ग्रहण।

"भिक्षुओ, ये तीन भिक्षु के अविलंब करने योग्य कर्तव्य हैं।

"भिक्षुओ, उस भिक्षु का ऐसा कोई ऋद्धि-बल या प्रताप नहीं होता जिससे वह कह सके कि 'आज ही उपादान-रहित हो मेरा चित्त आस्रव-विमुक्त हो जाय, कल हो जाय अथवा परसों हो जाय।' लेकिन भिक्षुओ! समय आता है जब अधिशील, अधिचित्त तथा अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षाओं के अनुसार आचरण करते-करते उपादान-रहित हो चित्त आस्रव-विमुक्त हो जाता है।

"इसलिए भिक्षुओ, ठीक इस प्रकार सीखना चाहिए – 'श्रेष्ठतर शील शिक्षा के लिए हमारी तीव्र इच्छा होगी, श्रेष्ठतर चित्त-शिक्षा के लिए हमारी तीव्र इच्छा होगी, श्रेष्ठतर प्रज्ञा-शिक्षा के लिए हमारी तीव्र इच्छा होगी।' भिक्षुओ, इसी प्रकार तुम्हें सीखना चाहिए।"

२. प्रविवेक (एकांत) सुत्त

९४. "भिक्षुओ, अन्य मतों के परिव्राजक तीन प्रकार की अल्पेच्छताओं (प्रविवेकों, एकांतों) को प्रज्ञापित करते हैं। कौन-सी तीन?

"चीवर संबंधी, पिंडपात (=भोजन) संबंधी तथा शयनासन संबंधी।

"भिक्षुओ, अन्य मतों के परिव्राजकों का चीवर संबंधी प्रविवेक इस प्रकार है – वे सन के कपड़े भी धारण करते हैं, सन-मिश्रित कपड़े भी पहनते हैं, शव-वस्त्र (=कफन) भी पहनते हैं, कूड़े के ढेर पर फेंके हुए वस्त्र भी पहनते हैं, (वृक्ष-विशेष की) छाल के कपड़े भी पहनते हैं, अजिन (=मृग) की खाल भी पहनते हैं, अजिन (मृग) की खाल की पट्टियों से बुना वस्त्र भी पहनते हैं, कुश (घास) का बना वस्त्र भी पहनते हैं, छाल (=वाक) के वस्त्र भी पहनते हैं, फलक (=छाल) का वस्त्र भी पहनते हैं, केशों से बना कंबल भी पहनते हैं, पूंछ के बालों का बना कंबल भी पहनते हैं तथा उल्लू के परों का बना कपड़ा भी पहनते हैं। भिक्षुओ, अन्य मतों के परिव्राजकों का चीवर संबंधी 'प्रविवेक' इस प्रकार है।

"भिक्षुओ, अन्य मतों के परिव्राजकों का पिंडपात (=भोजन) संबंधी 'प्रविवेक' इस प्रकार है – वे शाक खाने वाले भी होते हैं, स्यामाक खाने वाले भी होते हैं, नीवार (-धान) के खाने वाले भी होते हैं, दद्दुल (-धान) के खाने वाले भी होते हैं, हट (-शाक) के खाने वाले भी होते हैं, टूटे धान (=कणी) के खाने वाले भी होते हैं, माण्ड खाने वाले भी होते हैं, खली खाने वाले भी होते हैं, तिनके खाने वाले भी होते हैं, गोबर खाने वाले भी होते हैं, जंगल के पेड़ों से गिरे फलों तथा जड़ों को खाकर ही रहने वाले भी होते हैं।

"भिक्षुओ, अन्य मतों के परिव्राजकों का शयनासन संबंधी 'प्रविवेक' इस प्रकार है – अरण्य-वास, वृक्ष के तले रहना, श्मशान में रहना, जंगल में रहना, खुले आकाश के नीचे रहना, पलाल (सूखी घास) की ढेरी पर रहना, तथा फूस के घर में रहना।

"भिक्षुओ, अन्य मतों के परिव्राजक इन तीन प्रकार के एकांतों, अल्पेच्छताओं (प्रविवेकों) को प्रज्ञापित करते हैं।

"भिक्षुओ, इस धर्मवनय में भिक्षु की ये तीन अल्पेच्छताएं हैं। कौन-सी तीन?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलवान होता है, उसकी दुःशीलता का प्रहाण हो गया रहता है, उससे वह 'पृथक' हो जाता है; वह सम्यक-दृष्टि वाला होता है, उसकी मिथ्या-दृष्टि का प्रहाण हो गया रहता है, उससे वह 'पृथक' हो जाता है; वह क्षीणास्रव होता है, उसके आस्रवों का प्रहाण हो गया रहता है, वह उनसे 'पृथक' हो जाता है। भिक्षुओ, क्योंकि भिक्षु शीलवान होता है, उसकी दुःशीलता का प्रहाण हो गया रहता है, उससे वह 'पृथक' हो जाता है; वह सम्यक-दृष्टि वाला होता है, उसकी मिथ्या-दृष्टि का प्रहाण हो गया रहता है, उससे वह 'पृथक' हो जाता है; वह क्षीणास्रव होता है, उसके आस्रवों का प्रहाण हो गया रहता है, वह उनसे 'पृथक' हो जाता है – 'इसलिए वह अग्र-प्राप्त कहलाता है, सार-प्राप्त कहलाता है, शुद्ध कहलाता है, सार में प्रतिष्ठित कहलाता है।'

"भिक्षुओ, जैसे किसी कृषक-गृहपति का धान का खेत तैयार हो। कृषक-गृहपति उसे जल्दी-जल्दी कटवाये, जल्दी-जल्दी कटवाकर उसे जल्दी-जल्दी इकट्ठा कराये, जल्दी-जल्दी इकट्ठा कराकर उसे जल्दी-जल्दी उठवाये, जल्दी-जल्दी उठवाकर उसका ढेर लगवाये, जल्दी-जल्दी उसका ढेर लगवाकर जल्दी-जल्दी दंवरी करवाये, जल्दी-जल्दी दंवरी कराकर जल्दी-जल्दी पुआल पृथक कराये, जल्दी-जल्दी पुआल पृथक कराकर जल्दी-जल्दी भूसा पृथक कराये, जल्दी-जल्दी भूसा पृथक कराकर जल्दी-जल्दी उसे छाज (सूप) से उड़वाये, जल्दी-जल्दी छाज से उड़वाकर जल्दी-जल्दी इकट्ठा करवाये, जल्दी-जल्दी इकट्ठा करवाकर जल्दी-जल्दी कुटवाये, जल्दी-जल्दी कुटवाकर जल्दी-जल्दी 'भूसी' पृथक कराये –ऐसा होने से भिक्षुओ, उस कृषक-गृहपति के वे चावल श्रेष्ठ होंगे, सारवान होंगे, शुद्ध होंगे तथा सार में प्रतिष्ठित होंगे।

"इसी प्रकार भिक्षुओ! क्योंकि भिक्षु शीलवान होता है, उसकी दुःशीलता का प्रहाण हो गया रहता है, उससे वह पृथक हो जाता है; वह सम्यक-दृष्टि वाला होता है, उसकी मिथ्या-दृष्टि का प्रहाण हो गया रहता है, उससे वह

पृथक हो जाता है; वह क्षीणास्रव होता है, उसके आस्रवों का प्रहाण हो गया रहता है, वह उनसे पृथक हो जाता है – 'इसलिए वह अग्र-प्राप्त कहलाता है, सार-प्राप्त कहलाता है, शुद्ध कहलाता है तथा सार में प्रतिष्ठित कहलाता है।'"

३. शरद सुत्त

९५. "भिक्षुओ, जैसे शरद-ऋतु में जब आकाश बादल-रहित हो साफ हो जाता है, उस समय आकाश में ऊपर उठता हुआ सूर्य, सारे आकाश के अंधेरे को दूर करके चमकता है, तपता है तथा प्रकाशित होता है, उसी प्रकार भिक्षुओ, जब आर्य-श्रावक को रज-रहित, मल-रहित धर्म-चक्षु उत्पन्न हो जाता है, तब भिक्षुओ, उसके इस ज्ञान के उत्पादन के साथ-साथ ही तीन संयोजनों का नाश हो जाता है – सत्काय-दृष्टि का, विचिकित्सा का तथा शीलव्रत परामर्श का।

"इसके बाद अभिध्या तथा व्यापाद यह दो धर्म निःशेष हो जाते हैं। तब वह कामभोगों से पृथक हो, अकुशल-धर्मों से पृथक हो प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है, जिसमें वितर्क रहते हैं, विचार रहते हैं, जो एकांतवास से उत्पन्न होता है तथा जिसमें प्रीति और सुख रहते हैं। भिक्षुओ, यदि आर्य-श्रावक उस समय मृत्यु को प्राप्त हो जाये तो उस समय वह किसी ऐसे संयोजन से बँधा नहीं रहता जिस बंधन के कारण उसका पुनः इस लोक में आगमन हो।"

४. परिषद सुत्त

९६. "भिक्षुओ, परिषद के ये तीन प्रकार हैं। कौन-से तीन?

अग्र (श्रेष्ठ)-परिषद, व्यग्र (गुटों में बँटी)-परिषद, समग्र (एकजुट)-परिषद।

"भिक्षुओ, अग्र-परिषद किसे कहते हैं?

"यहां, भिक्षुओ, जिस परिषद में स्थविर भिक्षु अल्पेच्छ होते हैं, शिथिल नहीं होते, पतन की ओर अग्रसर नहीं होते, एकांतसेवन के प्रति उदासीन नहीं होते, अप्राप्त की प्राप्ति के लिए, जो हस्तगत नहीं है उसे हस्तगत करने के लिए, जिसका साक्षात नहीं हुआ है उसका साक्षात करने के लिए प्रयत्नशील होते हैं, उनके अनुयायी भी उनका अनुकरण करते हैं, वे भी अल्पेच्छ होते हैं, शिथिल नहीं होते, पतन की ओर अग्रसर नहीं होते, एकांतसेवन के प्रति उदासीन नहीं होते, अप्राप्त की प्राप्ति के लिए, जो हस्तगत नहीं हुआ है उसे हस्तगत करने के

लिए, जिसका साक्षात नहीं हुआ है उसका साक्षात करने के लिए प्रयत्नशील होते हैं। भिक्षुओ, इस प्रकार की परिषदअग्र-परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, व्यग्र परिषद कौन-सी होती है?

"यहां, भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु परस्पर झगड़ा करते हैं, कलह करते हैं, विवाद करते हैं, एक दूसरे को शब्दशूल से बींधते रहते हैं –भिक्षुओ, इस प्रकार की परिषदव्यग्र परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, समग्र-परिषद कौन-सी होती है?

"यहां, भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु मिल-जुलकर प्रसन्नतापूर्वक, बिना विवाद करते हुए, दूध-पानी की तरह मिले हुए, एक दूसरे को प्रेमभरी दृष्टि से सम्यक प्रकार से देखते हुए विहार करते हैं –भिक्षुओ, इस प्रकार की परिषद समग्र-परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, जिस समय भिक्षु मिल-जुलकर प्रसन्नतापूर्वक, बिना विवाद करते हुए, दूध-पानी की तरह मिले हुए, एक दूसरे को प्रेमभरी दृष्टि से सम्यक प्रकार से देखते हुए विहार करते हैं, उस समय भिक्षुओ, भिक्षु बहुत पुण्यार्जन करते हैं। उस समय भिक्षुओ! भिक्षु ब्रह्म-विहार करते हैं, जो कि उनका यह मुदिता व्याप्त चित्त से प्राप्त चित्त-विमुक्ति के साथ रहना है। प्रमुदित के मन में प्रीति पैदा होती है, प्रीति-युक्त की काया प्रश्रब्ध होती है, वह प्रश्रब्ध काया वाला सुख का अनुभव करता है, उस सुखी का चित्तसमाधिस्थ होता है।

"जैसे भिक्षुओ, ऊपर पहाड़ पर भारी वर्षा होने से वह पानी नीचे की ओर बहता हुआ पर्वत की कंदराओं, दरारों आदि को भर देता है, पर्वत की कंदरायें, दरारें आदि भर कर छोटे-छोटे गड्ढों को भर देता है, छोटे-छोटे गड्ढे भर कर बड़े-बड़े गड्ढे भर देता है, बड़े-बड़े गड्ढे भर कर छोटी-छोटी नदियां भर देता है, छोटी-छोटी नदियां भर कर बड़ी-बड़ी नदियां भर देता है, बड़ी-बड़ी नदियां भर कर समुद्र को भर देता है।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, जिस समय भिक्षु मिल-जुलकर प्रसन्नतापूर्वक, बिना विवाद करते हुए, दूध-पानी की तरह मिले हुए, एक दूसरे को प्रेमभरी दृष्टि से देखते हुए विहार करते हैं, उस समय भिक्षुओ, भिक्षु बहुत पुण्यार्जन करते हैं। उस समय भिक्षुओ, भिक्षु ब्रह्म-विहार करते हैं जो कि उनका यह मुदिता व्याप्त चित्त से प्राप्त चित्त-विमुक्ति के साथ रहना है। प्रमुदित के मन में प्रीति पैदा होती है, प्रीति-युक्त की काया प्रश्रब्ध होती है, वह प्रश्रब्ध काया वाला सुख का अनुभव करता है, उस सुखी का चित्तसमाधिस्थ होता है।

"भिक्षुओ, ये तीन प्रकार की परिषदहोती हैं।"

५. आजानीय (श्रेष्ठ घोड़ा) सुत्त (प्रथम)

९७. "भिक्षुओ, तीन अंगों से युक्त श्रेष्ठ घोड़ा राजा के योग्य होता है, राजा का भोग्य होता है, राजा का अंग ही गिना जाता है। किन तीन अंगों से?

"यहां, भिक्षुओ, राजा का श्रेष्ठ घोड़ा वर्णयुक्त होता है, बलयुक्त होता है, गतियुक्त होता है। भिक्षुओ, इन तीन अंगों से युक्त श्रेष्ठ घोड़ा राजा के योग्य होता है, राजा का भोग्य होता है, राजा का अंग ही गिना जाता है।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, तीन अंगों से युक्त भिक्षु आदर करने योग्य होता है, आतिथ्य करने योग्य होता है, दान-दक्षिणा देने योग्य होता है, हाथ जोड़कर नमस्कार करने योग्य होता है, तथा लोक में श्रेष्ठ पुण्य-क्षेत्र होता है। किन तीन अंगों से ?

"भिक्षुओ, भिक्षु वर्ण से युक्त होता है, बल से युक्त होता है तथा गति से युक्त होता है।

"भिक्षुओ, भिक्षु वर्णवान कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलवान होता है। प्रातिमोक्ष के नियमों के अनुसार संयत रहने वाला, सदाचरण की गोचर-भूमि में ही विचरने वाला, अत्यंत छोटे दोष को करने में भी भय मानने वाला; वह शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु वर्णवानहोता है।

"और भिक्षुओ, भिक्षु बलवान कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु अकुशल धर्मों का प्रहाण करने के लिए, कुशल धर्मों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है। वह कुशल-धर्मों में सामर्थ्यवान रहता है, दृढ़-पराक्रमी रहता है, कंधे का जुआ नहीं गिराये रहता है। इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु बलवान होता है।

"और भिक्षुओ, भिक्षु गतिमान कैसे होता है?

"भिक्षुओ, भिक्षु 'यह दुःख है', इसे यथार्थ रूप से जानता है, 'यह दुःख-समुदय है', इसे यथार्थ रूप से जानता है... 'यह दुःख-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है' इसे यथार्थ रूप से जानता है – इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु गतिमान होता है।

"भिक्षुओ, इन तीन बातों से युक्त भिक्षु आवाहन करने योग्य है, पाहुना बनाने (अतिथ्य) योग्य है, दक्षिणा देने योग्य है, अंजलिबद्ध (प्रणाम) किये जाने योग्य है। लोगों का यही श्रेष्ठतम पुण्य-क्षेत्र है।"

६. आजानीय सुत्त (द्वितीय)

९८. "भिक्षुओ, तीन अंगों से युक्त श्रेष्ठ घोड़ा राजा के योग्य होता है, राजा का भोग्य होता है, राजा का अंग ही गिना जाता है। किन तीन अंगों से?

"यहां, भिक्षुओ, राजा का श्रेष्ठ घोड़ा वर्णयुक्त होता है, बलयुक्त होता है, गतियुक्त होता है। भिक्षुओ, इन तीन अंगों से युक्त श्रेष्ठ घोड़ा राजा के योग्य होता है, राजा का भोग्य होता है, राजा का अंग ही गिना जाता है।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, तीन अंगों से युक्त भिक्षु आदर करने योग्य होता है, आतिथ्य करने योग्य होता है, दान-दक्षिणा देने योग्य होता है, हाथ जोड़कर नमस्कार करने योग्य होता है तथा लोक का पुण्य-क्षेत्र होता है। किन तीन अंगों से?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु वर्ण से युक्त होता है, बल से युक्त होता है तथा गति से युक्त होता है।

"भिक्षुओ, भिक्षु वर्णवान कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलवान होता है। प्रातिमोक्ष के नियमों के अनुसार संयत रहने वाला, सदाचरण की ही गोचर-भूमि में विचरने वाला, अत्यंत छोटे दोष को करने में भी भय मानने वाला; वह शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु वर्णवानहोता है।

"और भिक्षुओ, भिक्षु बलवान कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु अकुशल धर्मों का प्रहाण करने के लिए, कुशल-धर्मों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नवान रहता है। वह कुशल-धर्मों के प्रति सामर्थ्यवान रहता है, दृढ़-पराक्रमी रहता है, कंधे का जुआ नहीं गिराये रहता है। इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु बलवान होता है।

"और भिक्षुओ, भिक्षु गतिमान कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु इस ओर के पांचों ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके परलोक में ही उत्पन्न होने वाला होता है, वहीं से परिनिर्वाण को प्राप्त होने वाला, उस लोक से यहां नहीं लौटने वाला।

"भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु गतिमान होता है। भिक्षुओ, इन तीन अंगों से युक्त भिक्षु आदर करने योग्य होता है... पुण्य-क्षेत्र होता है।"

७. आजानीय सुत्त (तृतीय)

९९. “भिक्षुओ, तीन अंगों से युक्त श्रेष्ठ घोड़ा राजा के योग्य होता है, राजा का भोग्य होता है, राजा का अंग ही गिना जाता है। किन तीन अंगों से?

“यहां, भिक्षुओ, राजा का श्रेष्ठ घोड़ा वर्णयुक्त होता है, बलयुक्त होता है, गतियुक्त होता है। भिक्षुओ, इन तीन अंगों से युक्त श्रेष्ठ घोड़ा राजा के योग्य होता है, राजा का भोग्य होता है, राजा का अंग ही गिना जाता है।

“इसी प्रकार भिक्षुओ, तीन अंगों से युक्त भिक्षु आदर करने योग्य होता है... पुण्य-क्षेत्र होता है। किन तीन अंगों से?

“यहां, भिक्षुओ, भिक्षु वर्ण से युक्त होता है, बल से युक्त होता है तथा गति से युक्त होता है।

“भिक्षुओ, भिक्षु वर्णवान कैसे होता है?

“यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलवान होता है। प्रातिमोक्ष के नियमों के अनुसार संयत रहने वाला... शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु वर्णवान होता है।

“और भिक्षुओ, भिक्षु बलवान कैसे होता है?

“यहां, भिक्षुओ, भिक्षु अकुशल धर्मों का प्रहाण करने के लिए... कंधे का जुआ नहीं गिराये रहता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु बलवान होता है।

“और भिक्षुओ, भिक्षु गतिमान कैसे होता है?

“यहां, भिक्षुओ, भिक्षु आस्रवों का क्षय करके अनास्रव चित्त-विमुक्ति को, प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर, विहार करता है। भिक्षुओ, भिक्षु इस प्रकार गतिमान होता है।

“भिक्षुओ, इन तीन अंगों से युक्त भिक्षु आदर करने योग्य होता है... लोक का पुण्य-क्षेत्र होता है।”

८. पोत्थक (मकचीकेश का बना कपड़ा) सुत्त

१००. “भिक्षुओ, छाल का नया वस्त्र भी दुर्वर्ण होता है, खुरदरा होता है, कम मूल्य का होता है। कुछ समय काम में लाया हुआ भी छाल का वस्त्र दुर्वर्ण होता है, खुरदरा होता है, कम मूल्य का होता है। पुराना भी छाल का वस्त्र दुर्वर्ण होता है, खुरदरा होता है, कम मूल्य का होता है। भिक्षुओ, छाल के पुराने वस्त्र को या तो हांड़ी पोंछने के काम में लाते हैं या कूड़े के ढेर पर फेंक देते हैं।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, यदि नया भिक्षु भी दुःशील होता है, पापी होता है, तो मैं यह उसका दुर्वर्ण होना ही कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे वह छाल का वस्त्र दुर्वर्ण होता है, वैसे ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"जो उसके साथ रहते हैं, उसकी संगति करते हैं, उसके आश्रय में रहते हैं तथा उसका अनुकरण करते हैं, उसके लिए दीर्घकाल तक यह अहित, दुःख का कारण होता है, तो मैं यह उसका खुरदरा होना कहता हूं। भिक्षुओ! जैसे वह छाल का कपड़ा खुरदरा होता है, वैसे ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"यह जिनके (दाताओं के) चीवर-पिंडपात-शयनासन-ग्लान-प्रत्यय ग्रहण करता है, उनके लिए यह न महान फल देने वाला होता है, न महान शुभपरिणामकारी। यह मैं उसका अल्प-मूल्यवान होना कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे वह छाल का कपड़ा कम मूल्य का होता है, वैसे ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"भिक्षुओ, यदि कोई मध्यम (जो भिक्षु न नया है और न स्थविर है) भिक्षु भी... यदि कोई स्थविर भी दुःशील होता है, पापी होता है, तो मैं यह उसका दुर्वर्ण होना ही कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे वह छाल का वस्त्र दुर्वर्ण होता है, वैसे ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"जो उसके साथ रहते हैं, उसकी संगति करते हैं, उसके आश्रय में रहते हैं, तथा उसका अनुकरण करते हैं, उनके लिए दीर्घकाल तक यह अहित, दुःख का कारण होता है, तो मैं यह उसका खुरदरा होना कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे वह छाल का कपड़ा खुरदरा होता है, वैसे ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"यह जिनके (दाताओं के) चीवर-पिंडपात-शयनासन तथा ग्लान-प्रत्यय ग्रहण करता है, उनके लिए यह न महान फल देने वाला होता है, न महान शुभपरिणामकारी। यह मैं उसका अल्प मूल्यवान होना कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे वह छाल का कपड़ा कम मूल्य का होता है, वैसे ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"भिक्षुओ, यदि ऐसा स्थविर भिक्षु भी संघ के बीच बैठकर कुछ बोलता है तो भिक्षु उसे कहते हैं –'तुम्हारे मूर्ख के, अपंडित (अज्ञानी) के बोलने से क्या लाभ! तुम भी समझते हो कि तुम्हारे पास कुछ बोलने योग्य है?' वह कुपित होकर, असंतुष्ट होकर मुँह से ऐसी बात निकालता है जिससे संघ उसे उसी प्रकार फेंक देता है जैसे कूड़े के ढेर पर छाल का कपड़ा।

"भिक्षुओ, काशी का नया वस्त्र भी सुंदर होता है, मुलायम (सुखदायी) होता है, बहुमूल्य होता है। कुछ समय काम में लाया हुआ भी काशी का वस्त्र सुंदर होता है, मुलायम होता है, बहुमूल्य होता है। पुराना भी काशी का वस्त्र

सुंदर होता है, मुलायम होता है, बहुमूल्य होता है। भिक्षुओ! काशी के पुराने वस्त्र में भी या तो रत्न लपेटे जाते हैं या उसे सुगंधित पेटी में रखते हैं।

"इसी प्रकार भिक्षुओ! यदि नया भिक्षु शीलवान कल्याणधर्मी हो, तो मैं इसे उसका सौंदर्य कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे वह काशी का सुंदर वस्त्र, वैसा ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"जो उसके साथ रहते हैं, उसकी संगति करते हैं, उसके आश्रय में रहते हैं, तथा उसका अनुकरण करते हैं, उनके लिए दीर्घकाल तक यह हित, सुख का कारण होता है, तो मैं यह उसका सुखदायी होना कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे यह काशी का वस्त्र मुलायम होता है, वैसा ही मैं उस व्यक्ति को कहता हूं।

"यह जिनके (दाताओं के) चीवर-पिंडपात-शयनासन, ग्लान-प्रत्यय ग्रहण करता है उनके लिए यह महान फल देने वाला होता है, महान शुभपरिणामकारी। यह मैं उसका बहुमूल्यवान होना कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे वह काशी का वस्त्र बहुमूल्यवान होता है, वैसा ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"भिक्षुओ, यदि कोई मध्यम आयु का भिक्षु भी... यदि कोई स्थविर भिक्षु भी शीलवान, कल्याणधर्मी होता है तो यह उसका सौंदर्य है। भिक्षुओ, जैसे वह काशी का सुंदर वस्त्र, वैसा ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"जो उसके साथ रहते हैं, उसकी संगति करते हैं, उसके आश्रय में रहते हैं तथा उनका अनुकरण करते हैं, उनके लिए दीर्घकाल तक यह हित, सुख का कारण होता है, तो मैं यह उसका सुखदायी होना कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे यह काशी का वस्त्र मुलायम होता है, वैसा ही मैं उस व्यक्ति को कहता हूं।

"यह जिनके (दाताओं के) चीवर-पिंडपात-शयनासन-ग्लान-प्रत्यय ग्रहण करता है उनके लिए यह महान फल देने वाला होता है, महान शुभपरिणामकारी। यह मैं उसका बहुमूल्यवान होना कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे वह काशी का वस्त्र बहुमूल्यवान होता है, वैसा ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"भिक्षुओ, यदि इस प्रकार का स्थविर भिक्षु संघ के बीच में कुछ बोलता है तो उस समय भिक्षु कहते हैं – 'आयुष्मानो! चुप रहो! स्थविर भिक्षु धर्म तथा विनय कह रहा है।' इसलिए भिक्षुओ, ठीक इसी प्रकार सीखना चाहिए कि काशी के वस्त्र के समान होंगे, छाल के वस्त्र के समान नहीं। भिक्षुओ, ऐसा ही तुम्हें सीखना चाहिए।"

९. नमक सुत्त

१०१. "भिक्षुओ, यदि कोई ऐसा कहता हो कि जैसा-जैसा भी यह आदमी कर्म करता है उसे वह सब भोगना ही होता है – तो ऐसा होने पर तो

श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करना असंभव हो जाता है, तथा दुःख का सम्यक अंत करने की गुंजाइश नहीं रहती। (लेकिन) भिक्षुओ, यदि कोई ऐसा कहे कि जिस प्रकार का भोग्य (वेदनीय)-कर्म वह करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है, तो ऐसा होने पर तो श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करना संभव हो जाता है, तथा दुःख का सम्यक अंत करने की गुंजाइश रहती है।

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी यदि कोई अल्पमात्र भी पाप-कर्म करता है तो वह उसे नरक में ही ले जाता है। लेकिन भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी यदि वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म करता है तो उसका फल वह इसी जीवन में भोग लेता है, बहुत क्या (आगे के लिए) अणु-मात्र भी नहीं बचा रहता।

"भिक्षुओ, किस प्रकार के आदमी का किया हुआ अल्पमात्र भी पाप-कर्म उसे नरक में ले जाता है?

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी अभावित-काय, अभावित-शील, अभावित-चित्त तथा अभावित-प्रज्ञा वाला होता है। वह तुच्छ होता है, महत्त्वहीन, गुणविहीन और दुःखी जीवन जीने वाला। भिक्षुओ, इस प्रकार के आदमी का किया हुआ अल्पमात्रभी पाप-कर्म उसे नरक में ले जाता है।

"भिक्षुओ, किस प्रकार के आदमी द्वारा किया गया वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म इसी जीवन में फल देता है, (आगे के लिए) बहुत क्या अणुमात्र भी नहीं बचा रहता?

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी भावित-काय, भावित-शील, भावित-चित्त तथा भावित-प्रज्ञ होता है। वह तुच्छ नहीं होता है, महान होता है तथा अनंत सुख-विहारी होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार का आदमी यदि वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म करता है, तो उसका फल वह इसी जीवन में भोग लेता है, बहुत क्या (आगे के लिए) अणु-मात्र भी नहीं बचा रहता।

"भिक्षुओ, जैसे कोई आदमी नमक का एक टुकड़ा छोटे पानी के कटोरे में डाले, तो भिक्षुओ, क्या मानते हो, क्या उस छोटे पानी के कटोरे में नमक का वह टुकड़ा डालने से उसका पानी नमकीन, अपेय नहीं हो जायगा?

"हां, भंते!"

"ऐसा क्यों?"

"भंते! पानी के कटोरे में थोड़ा-सा पानी है। वह नमक का टुकड़ा डालने से नमकीन, अपेय हो ही जायगा।"

"भिक्षुओ, जैसे कोई आदमी नमक का एक टुकड़ा गंगा नदी में फेंके ।तो भिक्षुओ, क्या मानते हो, क्या उस नमक के टुकड़े से उस गंगा नदी का पानी नमकीन, अपेय हो जायगा?"

"भंते! नहीं।"

"ऐसा क्यों?"

"भंते! गंगा नदी में महान जलराशि है। वह नमक के टुकड़े से नमकीन, अपेय नहीं होगी।"

"भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी यदि कोई अल्पमात्र भी पाप-कर्म करता है तो वह उसे नरक में ही ले जाता है। लेकिन भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी यदि वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म करता है तो उसका फल वह इसी जीवन में भोग लेता है, बहुत क्या (आगे के लिए) अणु-मात्र भी नहीं बचा रहता।

"भिक्षुओ, किस प्रकार के आदमी का किया हुआ अल्पमात्र भी पाप-कर्म उसे नरक में ले जाता है?

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी अभावित-काय... थोड़े (पाप) से भी दुःख भोगने वाला। भिक्षुओ, इस प्रकार के आदमी द्वारा किया हुआ अल्पमात्र भी पाप-कर्म उसे नरक में ले जाता है।

"भिक्षुओ, किस प्रकार के आदमी द्वारा किया गया वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म इसी जीवन में फल देता है, (आगे के लिए) बहुत क्या, अणुमात्र भी नहीं बचा रहता। यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी भावित-काय...अनंत सुख विहारी होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार के आदमी द्वारा किया गया वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म इसी जीवन में फल देता है, (आगे के लिए) बहुत क्या अणु-मात्र भी नहीं बचा रहता।

"भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी आधे कार्षापण[1] (के ऋण लेने) के लिए भी बंदी बना लिया जाता है, कार्षापण के लिए भी तथा सौ कार्षापणों के लिए भी बंदी बना लिया जाता है। भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी आधे कार्षापण (के ऋण लेने) के लिए भी बंदी नहीं बनाया जाता, कार्षापण के लिए भी नहीं तथा सौ कार्षापण के लिए भी नहीं।

"भिक्षुओ, कैसा आदमी आधे कार्षापण के लिए भी बंदी बना लिया जाता है, कार्षापण के लिए भी तथा सौ कार्षापणों के लिए भी बंदी बना लिया जाता है? भिक्षुओ, एक आदमी दरिद्र होता है, अल्प-सामर्थ्य वाला होता है, अल्प-भोगों वाला होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार का आदमी आधे कार्षापण के

१ पालि 'कहापण' (सं. कार्षापण) का अर्थ तांबे का वर्गाकार सिक्का होता है।

लिए भी बंदी बना लिया जाता है, कार्षापण के लिए भी, सौ कार्षापण के लिए भी।

"भिक्षुओ, कैसा आदमी आधे कार्षापण के लिए भी बंदी नहीं बनाया जाता, कार्षापण के लिए भी नहीं, सौ कार्षापण के लिए भी नहीं? भिक्षुओ, एक आदमी धनवान होता है, महाधनवान होता है, बहुत-भोगों वाला। भिक्षुओ, इस प्रकार का आदमी आधे कार्षापण के लिए भी बंदी नहीं बनाया जाता, कार्षापण के लिए भी नहीं, सौ कार्षापण के लिए भी नहीं।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, एक आदमी यदि कोई अल्पमात्र भी पाप-कर्म करता है तो वह उसे नरक में ही ले जाता है। लेकिन भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी यदि वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म करता है तो उसका फल वह इसी जीवन में भोग लेता है, बहुत क्या (आगे के लिए) अणु-मात्र भी नहीं बचा रहता।

"भिक्षुओ, किस प्रकार के आदमी का किया हुआ अल्पमात्र भी पाप-कर्म उसे नरक में ले जाता है?

"यहां, भिक्षुओ, यदि कोई आदमी अभावित-काय... थोड़े (पाप) से भी दुःख भोगने वाला। भिक्षुओ, इस प्रकार के आदमी द्वारा किया हुआ अल्पमात्र भी पाप-कर्म उसे नरक में ले जाता है। भिक्षुओ, किस प्रकार के आदमी द्वारा किया गया वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म इसी जीवन में फल देता है? (आगे के लिए) बहुत क्या, अणु-मात्र भी नहीं बचा रहता? यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी भावित-काय... अनंत सुख-विहारी होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार के आदमी द्वारा किया गया वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म इसी जीवन में फल देता है (आगे के लिए) बहुत क्या, अणु-मात्र भी नहीं बचा रहता।

"जैसे भिक्षुओ, कोई भेड़ मारने वाला वा भेड़-घातक कसाई हो। वह चोरी से भेड़ ले जाने वाले किसी आदमी को पीट भी सकता है, बांध भी सकता है और मार भी डाल सकता है अथवा यथापराध दंड दे सकता है; किंतु चोरी से भेड़ ले जाने वाले ही किसी दूसरे आदमी को न तो वह पीट ही सकता है, न बांध ही सकता है, न मार ही डाल सकता है और न यथापराध दंड दे सकता है।

"भिक्षुओ, भेड़ चुराकर ले जाने वाले किस तरह के आदमी को भेड़ मारने वाला वा भेड़-घातक कसाई पीट भी सकता है, बांध भी सकता है, मार भी डाल सकता है अथवा यथापराध दंड भी दे सकता है?

"यहां, भिक्षुओ, एक आदमी दरिद्र होता है, अल्प-सामर्थ्य वाला होता है, अल्प-भोगों वाला होता है। ऐसे भेड़ चुराकर ले जाने वाले आदमी को भेड़

मारने वाला वा भेड़-घातक कसाई पीट भी सकता है, बांध भी सकता है, मार भी डाल सकता है अथवा यथापराध दंड भी दे सकता है।

"भिक्षुओ, भेड़ चुराकर ले जाने वाले किस तरह के आदमी को भेड़ मारने वाला वा भेड़-घातक कसाई न पीट ही सकता है, न बांध ही सकता है, न मार ही डाल सकता है अथवा न यथापराध दंड दे सकता है?

"यहां, भिक्षुओ, कोई आदमी धनी होता है, महाधनवान होता है, महा भोगों वाला होता है, राजा होता है, राजा का महामात्य होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार के भेड़ चुराकर ले जाने वाले आदमी को भेड़ मारने वाला वा भेड़-घातक कसाई न पीट ही सकता है, न बांध ही सकता है और न (जान से) मार डाल सकता है अथवा न यथापराध दंड दे सकता है। बल्कि, वह हाथ जोड़कर उसे कहता है – मालिक! या तो मेरी भेड़ दे दो या भेड़ का मूल्य दे दो!

"इसी प्रकार भिक्षुओ, एक आदमी यदि कोई अल्पमात्र भी पाप-कर्म करता है तो वह उसे नरक में ही ले जाता है। लेकिन भिक्षुओ, कोई आदमी यदि वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म करता है तो उसका फल वह इसी जीवन में भोग लेता है, (आगे के लिए) बहुत क्या, अणु-मात्र भी नहीं बचता।

"भिक्षुओ, किस प्रकार के आदमी का किया हुआ अल्पमात्र भी पाप-कर्म उसे नरक में ले जाता है?

"यहां, भिक्षुओ, यदि कोई आदमी अभावित-काय... थोड़े (पाप) से भी दुःख भोगने वाला। भिक्षुओ, इस प्रकार के आदमी द्वारा किया हुआ अल्पमात्र भी पाप-कर्म उसे नरक में ले जाता है। भिक्षुओ, किस प्रकार के आदमी द्वारा किया गया वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म इसी जीवन में फल देता है। (आगे के लिए) बहुत क्या, अणु-मात्र भी नहीं बचा रहता?

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी भावित-काय... अनंत सुख-विहारी होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार के आदमी द्वारा किया गया वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म भी इसी जीवन में फल देता है। (आगे के लिए) बहुत क्या, अणु-मात्र भी नहीं बचा रहता।

"भिक्षुओ, यदि कोई ऐसा कहता हो कि जैसा-जैसा भी यह आदमी कर्म करता है उसे वह सब भोगना ही होता है – तो ऐसा होने पर तो श्रेष्ठ-जीवन व्यतीत करना असंभव हो जाता है (तथा) दुःख का सम्यक अंत करने की गुंजाइश नहीं रहती। (लेकिन) भिक्षुओ, यदि कोई ऐसा कहे कि जिस प्रकार का भोग्य (=वेदनीय) कर्म वह करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है, तो ऐसा

होने पर तो श्रेष्ठ-जीवन व्यतीत करना संभव हो जाता है तथा दुःख का सम्यक अंत करने की गुंजाइश रहती है।"

१०. स्वर्णकार (मिट्टी दूर करने वाला) सुत्त

१०२. "भिक्षुओ, स्वर्ण (अयस्क) में मैल होते हैं, मिट्टी, बालू, कंकड़, गिट्टी। उन्हें मिट्टी दूर करनेवाला वा मिट्टी दूर करनेवाले का शागिर्द द्रोणी में डालकर धोता है, अच्छी तरह धोता है, मलकर धोता है ताकि उस मैल का प्रहाण हो जाय, वह दूर हो जाय। ऐसा करनेपर भी कुछ-कुछ सामान्य मैल रह ही जाते हैं महीन कंकड़ और मोटी गिट्टी... ऐसा कर चुकने पर भी कुछ-न-कुछ सूक्ष्ममैल रह ही जाते हैं जैसे महीन बालू और काली धूल...।

"तब स्वर्ण-कण ही शेष रह जाते हैं। तब सुनार या सुनार का शागिर्द उस सोने को धरिया में डालकर तपाता है, अच्छी तरह तपाता है, फिर भी शुद्ध नहीं होता है। वह स्वर्ण तपा हुआ होता है, अच्छी तरह तपा हुआ होता है, किंतु शुद्ध नहीं होता, न वह कोमल होता है, न गढ़नीय होता है, न प्रभास्वर होता है; वह काम में लाने पर टूट जाता है।

"भिक्षुओ, समय आता है जब वह सुनार अथवा सुनार का शागिर्द उस सोने को तपाता है, अच्छी तरह तपाता है और साफ भी करता है। वह सोना तपाया हुआ होता है, अच्छी तरह तपाया हुआ होता है, साफ होता है। वह कोमल होता है, गढ़नीय होता है और प्रभास्वर होता है। वह काम में लानेपर टूटता नहीं। जो-जो गहना बनाना चाहता है – चाहे करधनी हो, चाहे कुंडल हो, चाहे कंठा हो, चाहे माला हो – वह जो कुछ बनाना चाहे उसके लिए उसका उपयोग कर सकता है।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, श्रेष्ठतर-चित्त की प्राप्ति में लगे हुए भिक्षु के बड़े-बड़े दोष रहते हैं – कायिक दुष्चरित (दुराचरण), वाचिक दुष्चरित, (दुराचरण), मानसिक दुष्चरित, (दुराचरण)। समझदार (ज्ञानी, पंडित) भिक्षु उन्हें छोड़ता है, त्यागता है, उनका पूरी तरह प्रहाण (परित्याग) करता है। ऐसा करने पर सामान्य दोष रह जाते हैं – काम-वितर्क, व्यापाद-वितर्क, विहिंसा-वितर्क। ज्ञानी, पंडित भिक्षु उन्हें छोड़ता है, त्यागता है, उनका पूरी तरह प्रहाण करता है। ऐसा करनेपर भी सूक्ष्म दोष रह जाते हैं – जाति-संबंधी वितर्क, जनपद-संबंधी वितर्क, अनवज्ञा-संबंधी वितर्क अर्थात वैसा वितर्क जिसमें वह यह सोचता है कि दूसरे उससे घृणा न करे दूसरे उसका आदर करे। ज्ञानी, पंडित भिक्षु उन्हें छोड़ता है, त्यागता है, उनका पूरी तरह प्रहाण करता है। उसके पूरी तरह प्रहाण होने पर धर्म-वितर्क ही शेष रहते हैं। उस समय जो समाधि होती है, वह न शांत

होती है, न प्रणीत होती है, न प्रश्रब्ध होती है, न एकाग्रता-युक्त होती है। वह संस्कारोंको जैसे-तैसे रोक कर प्राप्त की हुई होती है।

"भिक्षुओ, समय आता है जब वह चित्त अपने में ही स्थिर होता है, बैठ जाता है, एकाग्र हो जाता है, समाधि-प्राप्त हो जाता है। उस समय जो समाधि होती है, वह शांत होती है, प्रणीत होती है, प्रश्रब्ध होती है, एकाग्र होती है। वह संस्कारों को जैसे-तैसे रोक प्राप्त की हुई नहीं होती। वह अभिज्ञा के द्वारा साक्षात करने योग्य जिस-जिस धर्म की ओर मन को झुकाता है, उसे-उसे ही साक्षीभाव से प्राप्त कर लेता है – जहां तक उसकी पहुँच हो[1]। (पूर्वजन्मों में विशेष रूप से किये गये कुशल कर्म तथा वर्तमान जीवन में किये गये पादक ध्यान -- ये दो कारण जब-जब पूर्ण होते हैं, प्रयत्न के अनुपात में उस-उस अभिज्ञा की प्राप्ति होती है जिस-जिस ओर वह मन को झुकाता है।)

"यदि वह यह इच्छा करे कि मैं अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करूं –एक होकर भी अनेक हो जाऊं, अनेक होकर भी एक हो जाऊं, प्रकट हो जाऊं, अदृश्य हो जाऊं, दीवार के पार, प्राकार के पार, पर्वत के पार अनिरुद्ध चला जाऊं, जैसे आकाश में; पृथ्वी पर भी उतराना-डूबना करूं जैसे पानी में; पानी के भी ऊपर-ऊपर चलूं जैसे पृथ्वी पर; आकाश में भी पालथी मारकर जाऊं जैसे कोई पक्षी हो; इस प्रकार के ऋद्धि-मान, इस प्रकार के महाप्रतापी चंद्र-सूर्य को भी हाथ से छू लूं तथा ब्रह्मलोक तक भी सशरीर पहुँच जाऊं –तो वह उसे-उसे ही प्राप्त कर लेता है –चाहे जहां तक उसकी पहुँच हो।

"यदि वह इच्छा करे कि मैं अलौकिक ,विशुद्ध, दिव्य-श्रोत्र-धातु से दोनों प्रकार के शब्द सुनूं –दिव्य भी तथा मानुषी भी, दूर के भी, समीप के भी –तो वह उसे-उसे ही प्राप्त कर लेता है – जहां तक उसकी पहुँच हो।

"यदि वह इच्छा करे –मैं दूसरे सत्त्वों के, दूसरे प्राणियों के चित्त को अपने चित्त से जान लूं –सराग-चित्त को सराग-चित्त जान लूं, राग-रहित चित्त को राग-रहित चित्त जान लूं, सद्वेष-चित्त को सद्वेष-चित्त जान लूं, द्वेष-रहित चित्त को द्वेष-रहित चित्त जान लूं; स-मोह चित्त को स-मोह चित्त जान लूं, वीतमोह-चित्त को वीतमोह-चित्त जान लूं; स्थिर-चित्त को स्थिर-चित्त जान लूं, चंचल-चित्त को चंचल-चित्त जान लूं; महापरिमाण (=महद्गत) चित्त को महापरिमाण-चित्त जान लूं, अ-महापरिमाण को अ-महापरिमाण जान लूं। स-उत्तर चित्त को स-उत्तर चित्त जान लूं। अनुत्तर-चित्त को अनुत्तर-चित्त जान

१ पालि के **'सति सतिआयतने'** का अर्थ 'जहां तक उसकी पहुँच हो' है (पहुँच – अपनी पारमी के अनुसार अर्थात अपने पूर्व जन्मों के हेतु तथा वर्तमान जीवन में अभिज्ञापादक ध्यान के अनुसार)।

लूं; एकाग्र-चित्त को एकाग्र-चित्त जान लूं; एकाग्रता-रहित चित्त को एकाग्रता-रहित चित्त जान लूं। विमुक्त-चित्त को विमुक्त-चित्त जान लूं, अविमुक्त-चित्त को अविमुक्त-चित्त जान लूं – तो वह उसे-उसे ही जान लेता है – जहां तक उसकी पहुँच हो।

"यदि वह इच्छा करे –मैं अनेक प्रकार के पूर्व-जन्मों को याद करूं, एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार जन्म... सौ जन्म, हजार जन्म, लाख जन्म, अनेक संवर्त-कल्प, अनेक विवर्त-कल्प, मैं अमुक जगह था, यह मेरा नाम था, यह गोत्र था, यह आहार था, इस सुख-दुःख का अनुभव किया, इतनी आयु तक जीवित रहा; वहां से च्युत होकर अमुक जगह उत्पन्न हुआ, वहां भी मेरा यह नाम था, यह गोत्र था, यह वर्ण था, यह आहार था, इस सुख-दुःख का मैंने अनुभव किया, इतनी आयु तक जीवित रहाः वहां से च्युत होकर यहां उत्पन्न हुआ, इस प्रकार विवरण-सहित, उद्देश्य-सहित अनेक प्रकार के पूर्व-जन्मों का स्मरण करूं –तो वह उसे-उसे ही स्मरण कर लेता है –जहां तक उसकी पहुँच हो।

"यदि वह इच्छा करे –मैं अलौकिक, दिव्य, विशुद्ध चक्षु से मरते-उत्पन्न होते, अच्छे-बुरे, सुवर्ण-दुर्वर्ण, सुगति-प्राप्त, दुर्गति-प्राप्त सत्त्वों को जानूं –सत्त्वों के कर्मानुसार सत्त्वों की उत्पत्ति को अच्छी तरह जानूं – ये प्राणी कायिक दुष्कर्म से युक्त हैं, वाचिक दुष्कर्म से युक्त हैं, मानसिक दुष्कर्म से युक्त हैं, ये आर्य (=श्रेष्ठ) जनों के निंदक हैं, मिथ्या-दृष्टि वाले हैं, मिथ्या-दृष्टि-युक्त कर्म करने वाले हैं, वे शरीर न रहने पर, मरने के बाद दुर्गति में पड़कर, पतित होकर नरक में पैदा हुए; अथवा ये प्राणी कायिक सुचरित से युक्त हैं, वाचिक सुचरित से युक्त हैं, मानसिक सुचरित से युक्त हैं, श्रेष्ठजनों के निंदक नहीं हैं, सम्यक-दृष्टि वाले हैं, सम्यक-दृष्टि के अनुसार कर्म करने वाले हैं, वे शरीर न रहने पर, मरने के बाद सुगति को प्राप्त हो स्वर्ग लोक में उत्पन्न हुए –इस प्रकार मैं अलौकिक, दिव्य, विशुद्ध, चक्षु से मरते-उत्पन्न होते, अच्छे-बुरे, सुवर्ण-दुर्वर्ण, सुगति-प्राप्त, दुर्गति-प्राप्त सत्त्वों को जानूं, सत्त्वों के कर्मानुसार सत्त्वों की उत्पत्ति को अच्छी तरह जानूं –तो वह उसे-उसे ही जान लेता है – जहां तक उसकी पहुँच हो।

"यदि वह इच्छा करे –आस्रवों का क्षय कर अनास्रव चित्त-विमुक्ति प्रज्ञा-विमुक्ति को, इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करूं – तो वह उसे-उसे ही प्राप्त कर लेता है – जहां तक उसकी पहुँच हो।"

११. निमित्त सुत्त

१०३. "भिक्षुओ, श्रेष्ठतर चित्त की साधना में लगे हुए भिक्षु को समय-समय पर तीन बातों को मन में जगह देनी चाहिए – समय-समय पर समाधि-निमित्त को मन में जगह देनी चाहिए, समय-समय-पर प्रयत्न प्रग्रह--निमित्त को मन में जगह देनी चाहिए तथा समय-समय पर उपेक्षा-निमित्त को मन में जगह देनी चाहिए।

"भिक्षुओ, यदि श्रेष्ठतर-चित्त की साधना में लगा हुआ भिक्षु केवल समाधि-निमित्त को ही मन में जगह देता है तो इसकी संभावना है कि वह चित्त आलस्य की ओर झुक जाय। भिक्षुओ, यदि श्रेष्ठतर-चित्त की साधना में लगा हुआ भिक्षु केवल प्रयत्न प्रग्रह-निमित्त को ही मन में जगह देता है तो इसकी संभावना है कि वह चित्त उद्धतपन की ओर झुक जाय। भिक्षुओ, यदि श्रेष्ठतर चित्त की साधना में लगा हुआ भिक्षु केवल उपेक्षा-निमित्त को ही मन में जगह देता है तो इसकी संभावना है कि वह चित्त आस्रवों के क्षय के लिए सम्यक रूप से समाधिस्थ न हो। क्योंकि भिक्षुओ, श्रेष्ठतर-चित्त की साधना में लगा हुआ भिक्षु समय-समय पर समाधि-निमित्त को मन में जगह देता है, समय-समय पर प्रयत्न-निमित्त को मन में जगह देता है, समय-समय पर उपेक्षा-निमित्त को मन में जगह देता है, इसलिए वह चित्त मृदु, कोमल हो जाता है, कमनीय हो जाता है, प्रभास्वर हो जाता है तथा टूटता नहीं है। वह आस्रवों का क्षय करने के लिए सम्यक प्रकार से सम्माधिस्थ होता है।

"भिक्षुओ, जैसे सुनार या सुनार का शागिर्द अंगीठी तैयार करता है, अंगीठी तैयार करके अंगीठी को लीपता है, अंगीठी को लीप कर संडासी से स्वर्ण लेकर उसे अंगीठी में रखता है, तब वह बीच-बीच में उसे तपाता है, बीच-बीच में उस पर पानी के छींटे देता है, बीच-बीच में वह परीक्षण करता है। भिक्षुओ, यदि वह सुनार या सुनार का शागिर्द उस स्वर्ण को एकदम तपाता ही रहे तो निश्चय से वह स्वर्ण जल जायगा। भिक्षुओ, यदि वह सुनार या सुनार का शागिर्द उस सोने पर निरंतर पानी के छींटे ही डालता रहे तो वह स्वर्ण ठंडा पड़ जायगा। भिक्षुओ, यदि वह सुनार या सुनार का शागिर्द उस स्वर्ण का परीक्षण ही करता रहे तो संभव है कि वह स्वर्ण अच्छी तरह से बने ही नहीं। क्योंकि भिक्षुओ, सुनार या सुनार का शागिर्द उस स्वर्ण को समय-समय पर तपाता है, समय-समय पर उस पर पानी के छींटे देता है, समय-समय पर उसका परीक्षण करता है, इसलिए वह स्वर्ण मृदु, कोमल तथा कमनीय होता है, प्रभास्वर होता है। वह टूटता नहीं है। वह काम में लाये जाने के योग्य होता है।

उससे जो-जो गहना बनाना हो, चाहे करधनी हो, चाहे कुंडल हो, चाहे कंठा हो, चाहे स्वर्ण-माला हो – वह जो कुछ बनाना चाहे उसके लिए उसका उपयोग कर सकता है।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, श्रेष्ठ-चित्त की साधना में लगे हुए भिक्षु को समय-समय पर तीन बातों को मन में जगह देनी चाहिए – समय-समय पर समाधि-निमित्त को मन में जगह देनी चाहिए, समय-समय पर प्रयत्न प्रग्रह-निमित्त को मन में जगह देनी चाहिए, समय-समय पर उपेक्षा-निमित्त को मन में जगह देनी चाहिए। भिक्षुओ, यदि श्रेष्ठतर-चित्त की साधना में लगा हुआ भिक्षु केवल समाधि-निमित्त को ही मन में जगह देता है तो इसकी संभावना है कि यह चित्त आलस्य की ओर झुक जाय। भिक्षुओ, यदि श्रेष्ठतर-चित्त की साधना में लगा हुआ भिक्षु केवल प्रयत्न प्रग्रह-निमित्त को ही मन में जगह देता है तो इसकी संभावना है कि वह चित्त उद्धतपन की ओर झुक जाय। भिक्षुओ, यदि श्रेष्ठतर-चित्त की साधना में लगा हुआ भिक्षु केवल उपेक्षा-निमित्त को ही मन में जगह देता है तो इसकी संभावना है कि वह चित्त आस्रवों के क्षय के लिए सम्यक रूप से समाधिस्थ न हो। क्योंकि भिक्षुओ, श्रेष्ठतर-चित्त की साधना में लगा हुआ भिक्षु समय-समय पर समाधि-निमित्त को मन में जगह देता है, समय-समय पर प्रयत्न प्रग्रह-निमित्त को मन में जगह देता है, समय-समय पर उपेक्षा-निमित्त को मन में जगह देता है, इसलिए वह चित्त मृदु, कोमल हो जाता है, कमनीय हो जाता है, प्रभास्वर हो जाता है तथा टूटता नहीं है। वह आस्रवों का क्षय करने के लिए सम्यक रूप से समाधिस्थ होता है। वह अभिज्ञा के द्वारा साक्षात करने योग्य जिस-जिस धर्म की ओर मन को झुकाता है, उसे-उसे ही प्राप्त कर लेता है – चाहे जहां तक उसकी पहुँच हो।

"वह यदि इच्छा करे कि मैं अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करूं... छह अभिज्ञाओं को जानूं... आस्रवों का क्षय कर... साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करूं –उसे-उसे ही प्राप्त कर लेता है – चाहे जहां तक उसकी पहुँच हो।"

* * * * *

विषय-सूची

त्रिक -निपात (११-१८)

३. तृतीय पंचाशतक

३. तृतीय पंचाशतक

(११) १. संबोधि वर्ग

१. पूर्वसंबोध सुत्त

१०४. भिक्षुओ, बोधि-प्राप्ति से पूर्व, जब मैं संबुद्ध नहीं था, जब मैं बोधिसत्व था, तब मेरे मन में यह जिज्ञासा पैदा हुई –"लोक में 'आस्वाद' क्या होता है? लोक में 'दुष्परिणाम' क्या होता है? लोक में 'विमुक्ति' (=निस्सरण) क्या है?" तब भिक्षुओ, मेरे मन में यह हुआ –लोक में जो किसी भी प्रत्यय के फलस्वरूप सुख, सौमनस्य पैदा होता है यही लोक में 'आस्वाद' है; लोक में जो अनित्यता है, जो दुःख है, जो परिवर्तनशीलता (विपरिणामधर्मता) है, यही लोक में 'दुष्परिणाम' है; लोक में जो छंद (इच्छा)-राग का विनयन करना है, जो छंद-राग का प्रहाण है यही लोक में 'विमुक्ति' है।

"भिक्षुओ, मैंने जब तक इस लोक के 'आस्वाद' को 'आस्वाद' करके यथार्थ रूप से नहीं जाना, 'दुष्परिणाम' को 'दुष्परिणाम' करके यथार्थ रूप से नहीं जाना, 'निस्सरण' को 'निस्सरण' करके यथार्थ रूप से नहीं जाना, तब तक मैंने भिक्षुओ, इस स-देव, स-मार, स-ब्रह्म लोक में –जहां श्रमण-ब्राह्मण रहते हैं तथा जहां देव-मनुष्य रहते हैं –यह नहीं कहा कि मुझे अनुत्तर सम्यक संबोधि प्राप्त हो गई। क्योंकि भिक्षुओ, अब मैंने लोक के 'आस्वाद' को 'आस्वाद' करके यथार्थ रूप से जान लिया, 'दुष्परिणाम' को 'दुष्परिणाम' करके यथार्थ रूप से

जान लिया, 'निस्सरण' को 'निस्सरण' करके यथार्थ रूप से जान लिया, इसलिए भिक्षुओ, मैंने इस स-देव, स-मार, स-ब्रह्म लोक में –जहां श्रमण-ब्राह्मण रहते हैं तथा जहां देव-मनुष्य रहते हैं –यह कहा कि मुझे अनुत्तर सम्यक संबोधि प्राप्त हो गई, मुझे 'ज्ञान' हो गया, मुझे 'दृष्टि' उत्पन्न हो गई –'मेरी विमुक्ति अचल है, मेरा यह अंतिम जन्म है, मेरा अब पुनर्भव नहीं है।'"

२. आस्वाद सुत्त (प्रथम)

१०५. "भिक्षुओ, मैंने लोक में 'आस्वाद' की खोज की; लोक में जो 'आस्वाद' है उसे जाना और लोक में जितना 'आस्वाद' है उस सब को भी प्रज्ञा से भली प्रकार जाना। भिक्षुओ, मैंने लोक में 'दुष्परिणाम' की खोज की। लोक में जो 'दुष्परिणाम' है उस सब को भी प्रज्ञा से भली प्रकार जाना। भिक्षुओ, मैंने लोक में 'निस्सरण' (विमुक्ति) की खोज की। लोक में जो 'निस्सरण' है उस सब को भी प्रज्ञा से भली प्रकार जाना।

"भिक्षुओ, मैंने जब तक इस लोक के 'आस्वाद' को 'आस्वाद' करके यथार्थ रूप से नहीं जाना; 'दुष्परिणाम' को 'दुष्परिणाम' करके यथार्थ रूप से नहीं जाना, 'निस्सरण' को 'निस्सरण' करके यथार्थ रूप से नहीं जाना, तब तक मैंने भिक्षुओ, इस स-देव, स-मार, स-ब्रह्म लोक में –जहां श्रमण-ब्राह्मण रहते हैं तथा जहां देव-मनुष्य रहते हैं –यह नहीं कहा कि मुझे अनुत्तर सम्यक संबोधि प्राप्त हो गई। क्योंकि मैंने भिक्षुओ, अब लोक के 'आस्वाद' को 'आस्वाद' करके यथार्थ रूप से जान लिया, 'दुष्परिणाम' को 'दुष्परिणाम' करके यथार्थ रूप से जान लिया, 'निस्सरण' को 'निस्सरण' करके यथार्थ रूप से जान लिया; इसलिए भिक्षुओ, मैंने इस स-देव, स-मार, स-ब्रह्म लोक में –जहां श्रमण-ब्राह्मण रहते हैं तथा जहां देव-मनुष्य रहते हैं –यह कहा कि मुझे अनुत्तर सम्यक संबोधि प्राप्त हो गई, मुझे 'ज्ञान' हो गया, मुझे 'दृष्टि' उत्पन्न हो गई –मेरी विमुक्ति अचल है, मेरा यह अंतिम जन्म है, मेरा अब पुनर्भव नहीं है।"

३. आस्वाद सुत्त (द्वितीय)

१०६. "भिक्षुओ, यदि लोक में 'आस्वाद' न हो तो ये प्राणी संसार में आसक्त न हों। क्योंकि भिक्षुओ, लोक में 'आस्वाद' है, इसलिए प्राणी लोक में आसक्त होते हैं। भिक्षुओ, यदि लोक में 'दुष्परिणाम' न हो तो ये प्राणी संसार से विरक्त न हों। क्योंकि भिक्षुओ, लोक में 'दुष्परिणाम' है, इसलिए प्राणी लोक से विरक्त होते हैं। भिक्षुओ, यदि लोक में 'निस्सरण' न हो तो प्राणी लोक से विमुक्त न हों। क्योंकि भिक्षुओ, लोक में 'निस्सरण' है, इसीलिए प्राणी लोक से विमुक्त होते हैं।

“भिक्षुओ, जब तक प्राणी संसार के ‘आस्वाद’ को ‘आस्वाद’ करके यथार्थ रूप से न जान लेते, संसार के ‘दुष्परिणाम’ को ‘दुष्परिणाम’ करके यथार्थ रूप से न जान लेते, संसार के ‘निस्सरण’ को ‘निस्सरण’ करके यथार्थ रूप से न जान लेते, तब तक भिक्षुओ, प्राणी इस स-देव, स-मार, स-ब्रह्म लोक से – जहां श्रमण-ब्राह्मण रहते हैं तथा जहां देव-मनुष्य रहते हैं – बाहर न निकलते, विसंयुक्त न होते, विप्रमुक्त न होते, बंधन-मुक्त चित्त से विहार न कर सकते। क्योंकि प्राणियों ने संसार के ‘आस्वाद’ को ‘आस्वाद’ करके यथार्थ रूप से जान लिया, संसार के ‘दुष्परिणाम’ को ‘दुष्परिणाम’ करके यथार्थ रूप से जान लिया, संसार के ‘निस्सरण’ को ‘निस्सरण’ करके यथार्थ रूप से जान लिया, इसीलिए भिक्षुओ, प्राणी इस स-देव, स-मार, स-ब्रह्म लोक से... बाहर निकलकर, विसंयुक्त होकर, विप्रमुक्त होकर, बंधन-मुक्त चित्त से विहार करते हैं।”

४. श्रमण-ब्राह्मण सुत्त

१०७. “भिक्षुओ, जो श्रमण या ब्राह्मण लोक के ‘आस्वाद’ को ‘आस्वाद’ करके, लोक के ‘दुष्परिणाम’ को ‘दुष्परिणाम’ करके, लोक के ‘निस्सरण’ (विमुक्ति) को ‘निस्सरण’ करके यथार्थ रूप से नहीं जानते, भिक्षुओ, न मैं उन श्रमणों की श्रमणों में गिनती करता हूं, न उन ब्राह्मणों की ब्राह्मणों में गिनती करता हूं, और न वे आयुष्मान इसी जीवन में ‘श्रामण्य’ वा ‘ब्राह्मण्य’ को साक्षात कर विहार करते हैं।

“भिक्षुओ, जो श्रमण या ब्राह्मण लोक के ‘आस्वाद’ को ‘आस्वाद’ करके, लोक के ‘दुष्परिणाम’ को ‘दुष्परिणाम’ करके, लोक के ‘निस्सरण’ को ‘निस्सरण’ करके यथार्थ रूप से जान लेते हैं, भिक्षुओ, मैं उन्हीं श्रमणों की ‘श्रमणों’ में गिनती करता हूं, उन्हीं ब्राह्मणों की ‘ब्राह्मणों’ में गिनती करता हूं; वे आयुष्मान इसी जीवन में ‘श्रामण्य’ वा ‘ब्राह्मण्य’ को साक्षात कर विहार करते हैं।”

५. रोदन सुत्त

१०८. “भिक्षुओ, यह जो ‘गाना’ है, यह आर्य-विनय के अनुसार ‘रोना’ ही है। भिक्षुओ, यह जो नाचना है, यह आर्य-विनय के अनुसार ‘पागलपन’ ही है। भिक्षुओ, यह जो देर तक दांत निकालकर हँसना है, यह आर्य-विनय के अनुसार ‘बचपना’ ही है। इसलिए भिक्षुओ, यह जो गाना है, यह सेतु ध्वंसनीय है, यह जो नाचना है, यह सेतु ध्वंसनीय है। धर्मप्रमुदित संत पुरुषों का मुस्कराना ही पर्याप्त है।”

६. अतृप्ति सुत्त

१०९. "भिक्षुओ, इन तीन बातों से तृप्ति नहीं होती। कौन-सी तीन बातों से?

"भिक्षुओ, सोने से तृप्ति नहीं होती; भिक्षुओ, सुरा-मेरय के पीने से तृप्ति नहीं होती; भिक्षुओ, मैथुन से तृप्ति नहीं होती। भिक्षुओ, इन तीन बातों का सेवन करने से तृप्ति नहीं होती।"

७. अरक्षित सुत्त

११०. एक समय अनाथपिण्डिक गृहपति भगवान के पास पहुँचा। पहुँच कर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे अनाथपिण्डिक गृहपति को भगवान ने यह कहा –

"गृहपति! चित्त अरक्षित रहने से कायिक-कर्मभी अरक्षित रहते हैं, वाचिक-कर्मभी अरक्षित रहते हैं, मानसिक-कर्मभी अरक्षित रहते हैं। जिसके काया, वाणी तथा मन के कर्म अरक्षित रहते हैं, उसके काया, वाणी, मन के कर्म 'चूते' (रिसते, स्रावी – तृष्णा के कारण स्राव वाले) हैं। जिसके काया, वाणी तथा मन के कर्म 'चूते' हैं, उसके काया, वाणी तथा मन के कर्म 'सड़े' होते हैं। जिसके काया, वाणी तथा मन के कर्म 'सड़े' होते हैं, उसका मरना अच्छी तरह नहीं होता, उसकी कालक्रिया (मृत्यु) अच्छी तरह नहीं होती।

"गृहपति! जैसे यदि कूटागार (शिखर वाला घर) अच्छी तरह से आच्छादित न हो, तो शिखर भी अरक्षित रहता है, कड़ियां भी अरक्षित रहती हैं तथा दीवार भी अरक्षित रहती है। शिखर भी चूता है, कड़ियां भी चूती हैं, दीवार भी चूती है। शिखर भी सड़ जाता है, कड़ियां भी सड़ जाती हैं, दीवार भी सड़ जाती है। इसी प्रकार गृहपति! चित्त के अरक्षित रहने पर कायिक-कर्म भी अरक्षित रहता है... कालक्रिया अच्छी तरह नहीं होती।

"गृहपति! चित्त रक्षित रहने से कायिक-कर्मभी रक्षित रहते हैं, वाचिक-कर्मभी रक्षित रहते हैं, मानसिक-कर्मभी रक्षित रहते हैं। जिसके काया, वाणी तथा मन के कर्म रक्षित रहते हैं, उसके काया, वाणी तथा मन के कर्म 'चूते' नहीं। जिसके काया, वाणी तथा मन के कर्म 'चूते' नहीं, उसके काया, वाणी तथा मन के कर्म 'सड़ते' नहीं। जिसके काया, वाणी तथा मन के कर्म 'सड़ते' नहीं, उसका मरना अच्छी तरह होता है, उसकी कालक्रिया भी अच्छी तरह होती है।

"गृहपति! जैसे यदि कूटागार (शिखर-गृह) अच्छी तरह से आच्छादित हो, तो शिखर भी सुरक्षित रहता है, कड़ियां भी सुरक्षित रहती हैं तथा दीवार भी सुरक्षित रहती है। शिखर भी नहीं चूता, कड़ियां भी नहीं चूतीं, दीवार भी नहीं चूती। शिखर भी नहीं सड़ता, कड़ियां भी नहीं सड़तीं, दीवार भी नहीं सड़ती। इसी प्रकार गृहपति! चित्त के सुरक्षित रहने पर कायिक-कर्म भी सुरक्षित रहते हैं... कालक्रिया भी अच्छी तरह होती है।"

८. दूषित-चित्त सुत्त

१११. एक ओर बैठे अनाथपिण्डिक गृहपति को भगवान ने यह कहा – "गृहपति! चित्त के खराब हो जाने (द्वेषयुक्त हो जाने पर) पर काया, वाणी तथा मन के कर्म भी खराब हो जाते हैं। जिसके काया, वाणी तथा मन के कर्म खराब हो जाते हैं, उसका मरना भी अच्छा नहीं होता, उसकी मृत्यु भी अच्छी नहीं होती।

"गृहपति! जैसे यदि कूटागार अच्छी तरह आच्छादित न हो तो शिखर भी खराब हो जाता है, कड़ियां भी खराब हो जाती हैं, दीवार भी खराब हो जाती है; इसी प्रकार गृहपति! चित्त के खराब होने पर काया, वाणी तथा मन के कर्म खराब होते हैं। जिसके काया, वाणी तथा मन के कर्म खराब हो जाते हैं, उसका मरना भी अच्छा नहीं होता, उसकी मृत्यु भी अच्छी नहीं होती।

"गृहपति! चित्त के खराब न होने पर (द्वेषयुक्त न होने पर) काया, वाणी तथा मन के कर्म भी खराब नहीं होते, उसका मरना भी अच्छा होता है, उसकी मृत्यु भी अच्छी होती है।

"जैसे गृहपति! कूटागार की छत अच्छी तरह से आच्छादित हो, तो शिखर भी खराब नहीं होता, कड़ियां भी खराब नहीं होतीं, दीवार भी खराब नहीं होती; इसी प्रकार गृहपति! चित्त के खराब न होने पर काया, वाणी तथा मन के कर्म भी खराब नहीं होते। जिसके काया, वाणी तथा मन के कर्म खराब नहीं होते, उसका मरना भी अच्छा होता है, उसकी मृत्यु भी अच्छी होती है।"

९. हेतु सुत्त (प्रथम)

११२. "भिक्षुओ! कर्मों की उत्पत्ति के तीन हेतु (=निदान) हैं। कौन-से तीन?

"लोभ कर्मों की उत्पत्ति का हेतु है, द्वेष कर्मों की उत्पत्ति का हेतु है तथा मोह कर्मों की उत्पत्ति का हेतु है।

"भिक्षुओ, जिस कर्म के मूल में लोभ है, जो लोभ से उत्पन्न हुआ है, जिसका हेतु लोभ है, जिसकी उत्पत्ति लोभ से हुई है वह अकुशल कर्म है, वह सदोष कर्म है, उस कर्म का फल दुःख है, उस कर्म से कर्म का समुदय होता है, उस कर्म से कर्म का निरोध नहीं होता। भिक्षुओ, जिस कर्म के मूल में द्वेष है... जिसके मूल में मोह है, जो मोह से उत्पन्न हुआ है, जिसका हेतु मोह है, जिसकी उत्पत्ति मोह से हुई है वह अकुशल कर्म है, वह सदोष-कर्म है, उस कर्म का फल दुःख है, उस कर्म से कर्म का समुदय होता है, उस कर्म से कर्म का निरोध नहीं होता।

"भिक्षुओ, कर्मों की उत्पत्ति के ये तीन हेतु हैं।

"भिक्षुओ, कर्मों की उत्पत्ति के ये तीन हेतु हैं। कौन-से तीन?

"अलोभ कर्मों की उत्पत्ति का हेतु है, अद्वेष कर्मों की उत्पत्ति का हेतु है, अमोह कर्मों की उत्पत्ति का हेतु है।

"भिक्षुओ, जिस कर्म के मूल में अलोभ है, जो अलोभ से उत्पन्न हुआ है, जिसका हेतु अलोभ है, जिसकी उत्पत्ति अलोभ से हुई है वह कुशल कर्म है, वह निर्दोष कर्म है, उस कर्म का फल सुख है, उस कर्म से कर्म का निरोध होता है, उस कर्म से कर्म का समुदय नहीं होता। भिक्षुओ, जिस कर्म के मूल में अद्वेष है... जिस कर्म के मूल में अमोह है, जो अमोह से उत्पन्न हुआ है, जिसका हेतु अमोह है, जिसकी उत्पत्ति अमोह से हुई है, वह कुशल-कर्म है, वह निर्दोष-कर्म है, उस कर्म का फल सुख है, उस कर्म से कर्म का निरोध होता है, उस कर्म से कर्म का समुदय नहीं होता। भिक्षुओ! कर्मों की उत्पत्ति के ये तीन हेतु हैं।"

१०. हेतु सुत्त (द्वितीय)

११३. "भिक्षुओ! कर्मों की उत्पत्ति के ये तीन हेतु हैं। कौन-से तीन?

"भिक्षुओ, भूतकाल के छंद-राग-स्थानीय (छंद-राग के जो कारण हैं उन) विषयों को लेकर छंद (=इच्छा) उत्पन्न होता है; भिक्षुओ! भविष्य के छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंद उत्पन्न होता है; भिक्षुओ, वर्तमान के छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंद उत्पन्न होता है।

"भिक्षुओ! भूतकाल के छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंद कैसे उत्पन्न होता है? भूतकाल के छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर चित्त में वितर्क पैदा होते हैं, चित्त में विचार पैदा होते हैं। उनसे छंद की उत्पत्ति होती है। छंद (=इच्छा) उत्पन्न होने पर व्यक्ति उन विषयों से संयुक्त हो जाता है। भिक्षुओ! यह जो सराग चित्त है, इसे ही मैं संयोजन कहता हूं। इसी प्रकार भिक्षुओ! भूतकाल के छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंद उत्पन्न होता है।

"और भिक्षुओ! भविष्य कालके छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंद कैसे उत्पन्न होता है? भविष्य कालके छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर चित्त में वितर्क पैदा होते हैं, विचार पैदा होते हैं। उनसे छंद की उत्पत्ति होती है, छंद उत्पन्न होने पर व्यक्ति उन विषयों से संयुक्त हो जाता है। भिक्षुओ! यह जो सराग चित्त है, इसे ही मैं संयोजन कहता हूं। इसी प्रकार भिक्षुओ! भविष्य काल के छंद-राग-स्थानीयविषयों को लेकर छंदउत्पन्न होता है।

"और भिक्षुओ! वर्तमान के छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंद कैसे उत्पन्न होता है? वर्तमान कालके छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर चित्त में वितर्क पैदा होते हैं, विचार पैदा होते हैं। उनसे छंद की उत्पत्ति होती है। छंद उत्पन्न होने पर व्यक्ति उन विषयों से संयुक्त हो जाता है। भिक्षुओ! यह जो सराग चित्त है, इसे ही मैं संयोजन कहता हूं। इसी प्रकार भिक्षुओ, वर्तमान के छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंद उत्पन्न होता है। भिक्षुओ! कर्मों की उत्पत्ति के ये तीन हेतु हैं।

"भिक्षुओ! कर्मों की उत्पत्तिके ये तीन हेतु हैं। कौन-से तीन?

"भिक्षुओ, भूतकाल के छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंद उत्पन्न नहीं होता। भिक्षुओ! भविष्य के छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंद उत्पन्न नहीं होता। भिक्षुओ! वर्तमान के छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंद उत्पन्न नहीं होता।

"भिक्षुओ, भूतकाल के छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंद कैसे उत्पन्न नहीं होता?

"भिक्षुओ, वह भूतकाल के छंद-राग-स्थानीय विषयों का भावी फल अच्छी तरह जानता है, भावी फलजानकर उनसे पृथक होता है, पृथक होकर, चित्त से हटाकर, प्रज्ञा से बींध करदेखता है। इस प्रकार भिक्षुओ, भूतकालके छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंदउत्पन्न नहीं होता।

"और भिक्षुओ, भविष्य कालके छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंद कैसे उत्पन्न नहीं होता?

"भिक्षुओ, वह भविष्यकाल के छंद-राग-स्थानीय विषयों का भावी फल अच्छी तरह जानता है, भावी फलजानकर उनसे पृथक होता है, पृथक होकर, चित्त से हटा कर, प्रज्ञा से बींध करदेखता है। इस प्रकार भिक्षुओ, भविष्यकाल के छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंदउत्पन्न नहीं होता।

"और भिक्षुओ, वर्तमान के छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंद कैसे उत्पन्न नहीं होता?

"भिक्षुओ, वह वर्तमान काल के छंद-राग-स्थानीय विषयों का भावी फल अच्छी तरह जानता है, भावी फल जानकर उनसे पृथक होता है, पृथक होकर, चित्त से हटाकर, प्रज्ञा से बींध कर देखता है। इस प्रकार भिक्षुओ! वर्तमान के छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंदउत्पन्न नहीं होता।

"भिक्षुओ, कर्मों की उत्पत्ति के ये तीन हेतु हैं।"

* * * * *

(१२) २. अपाय (नरक) वर्ग

१. नरक गामी सुत्त

११४. "भिक्षुओ, इन (पाप-धर्मों) को न छोड़ने वाले तीन जन अपायगामी हैं, नरक गामी हैं। कौन-से तीन?

"जो अब्रह्मचारी होकर ब्रह्मचारी का स्वांग भरता है, जो परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का आचरण करने वाले शुद्ध ब्रह्मचारी पर झूठा दोष लगाता है, तथा जिसका ऐसा मत होता है या ऐसी दृष्टि होती है कि, 'कामभोगों में दोष नहीं है', सो वह कामभोगों में निःसंकोच पड़ता है। भिक्षुओ, इन (पाप-धर्मों) को न छोड़ने वाले तीन जन अपायगामी हैं, नरक गामी हैं।"

२. दुर्लभ सुत्त

११५. "भिक्षुओ, संसार में इन तीन का प्रादुर्भाव दुर्लभ है। किन तीन का?

"भिक्षुओ, संसार में तथागत अर्हत सम्यक संबुद्ध का प्रादुर्भाव दुर्लभ है। संसार में तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म के उपदेष्टा का प्रादुर्भाव दुर्लभ है। संसार में कृतज्ञ, कृतवेदी का प्रादुर्भाव दुर्लभ है।

"भिक्षुओ, संसार में इन तीन का प्रादुर्भाव दुर्लभ है।"

३. अपरिमेय सुत्त

११६. "भिक्षुओ, संसार में तीन प्रकार के लोग हैं। कौन-से तीन?

"आसानी से मापे जा सकने योग्य, कठिनाई से मापे जा सकने योग्य, न मापे जा सकने योग्य।

"भिक्षुओ, आसानी से मापा जा सकने वाला व्यक्ति कैसा होता है?

"भिक्षुओ, एक व्यक्ति होता है उद्धत, मानी, चपल, मुखर, असंयतभाषी, मूढ़, असंप्रज्ञानी, असमाहित, भ्रांतचित्त, असंयत-इंद्रिय। भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति आसानी से मापा जा सकने वाला व्यक्ति कहलाता है।

"भिक्षुओ, कठिनाई से मापा जा सकने वाला व्यक्ति कैसा होता है?

"भिक्षुओ, एक व्यक्ति होता है अनुद्धत, अमानी, अचपल, अमुखर, संयत-भाषी, अमूढ़, संप्रज्ञानी, समाहित, अभ्रांत-चित्त, संयत-इंद्रिय। भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति कठिनाई से मापा जा सकने वाला व्यक्तिहोता है।

"भिक्षुओ, न मापे जा सकने वाला व्यक्ति कैसा होता है?

"यहां, भिक्षुओ, एक भिक्षु अर्हत होता है, क्षीणास्रव होता है। भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति न मापा जा सकनेवाला व्यक्ति होता है। भिक्षुओ, संसार में ये तीन प्रकार के लोग हैं।"

४. आनेञ्ज सुत्त

११७. "भिक्षुओ, संसार में तीन तरह के लोग हैं? कौन-से तीन?

"यहां, भिक्षुओ, एक व्यक्ति सब रूप-संज्ञाओं को पार कर, प्रतिघ-संज्ञाओं कोअस्त कर, नानत्व-संज्ञा कोमन से निकाल, 'आकाशअनंत है' करकेआकाशानन्त्यायतनकोप्राप्त हो विहरता है। वह उसका आनंद लेता है, उसे चाहता है और उससे सुखी होता है। उस ध्यान में स्थित रहकर, उसी में लगा रहकर, उसी में प्रायः विहार करते रहकर, उस ध्यानावस्था को प्राप्त वह जब मरता है, तब वह आकाशानन्त्यायतन के देवताओं के साथ उत्पन्न होता है। भिक्षुओ, आकाशानन्त्यायतनके देवताओं कीबीस हजार कल्पआयु होती है। सामान्य पृथग्जन आयु पर्यंत रहकर, जब तक उन देवताओं कीआयु है उसे बिताकरनरक कोभी जा सकताहै, पशु-योनि में भी उत्पन्न हो सकता है, प्रेत-योनि में भी उत्पन्न हो सकताहै। लेकिनजो भगवान का श्रावक है वह वहां आयु पर्यंत रहकर, जितनी उन देवताओं की आयु होती है, उतनी बिताकर उसी भव में परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाता है। भिक्षुओ, गति तथा उत्पत्ति के बारे में यह विशेषता है, यह खास बात है, यह भेद है ज्ञानी आर्य श्रावक तथा अज्ञानी पृथग्जन में।

"फिर भिक्षुओ, एक व्यक्ति सब तरह से आकाशानन्त्यायतन को पार कर 'विज्ञान अनंत है' करकेविज्ञानानन्त्यायतन कोप्राप्त हो विहरता है। वह उसका आनंद लेता है, उसे चाहता है और उससे सुखी होता है। उस ध्यान में स्थित रहकर, उसी में लगा रहकर, उसी में प्रायः विहार करते रहकर, उस ध्यानावस्था कोप्राप्त वह जब मरता है तब वह विज्ञानानन्त्यायतन के देवताओं के साथ उत्पन्न होता है। भिक्षुओ, विज्ञानानन्त्यायतन के देवताओं की चालीस हजार कल्पकी आयु होती है। सामान्य पृथग्जन आयु पर्यंत रहकर, जब तक उन देवताओं कीआयु है उसे बिताकरनरक कोभी जा सकताहै, पशु-योनि में भी उत्पन्न हो सकताहै, प्रेत-योनि में भी उत्पन्न हो सकताहै। लेकिनजो

भगवान का श्रावक है वह वहां आयु पर्यंत रहकर जितनी उन देवताओं की आयु होती है उतनी बिताकर उसी भव में परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाता है। भिक्षुओ, गति तथा उत्पत्ति के बारे में यह विशेषता है, यह खास बात है, यह भेद है, ज्ञानी आर्य श्रावक तथा अज्ञानी पृथग्जन में।

"फिर भिक्षुओ, एक व्यक्ति सब तरह से विज्ञानानन्त्यायतन को पार कर 'कुछ नहीं है' करके आकिञ्चन्ययतन को प्राप्त कर विहार करता है। वह उसका आनंद लेता है, उसे चाहता है और उससे सुखी होता है। उस ध्यान में स्थित रह कर, उसी में लगा रहकर, उसी में प्रायः विहार करते रहकर, उस ध्यानावस्था को प्राप्त वह जब मरता है तब वह आकिञ्चन्यायतन के देवताओं के साथ उत्पन्न होता है। भिक्षुओ, आकिञ्चन्यायतन के देवताओं की साठ हजार कल्प की आयु होती है। सामान्य पृथग्जन आयु पर्यंत रहकर, जब तक उन देवताओं की आयु है, उसे बिताकर नरक को भी जा सकता है, पशु-योनि में भी उत्पन्न हो सकता है, प्रेत-योनि में भी उत्पन्न हो सकता है। लेकिन जो भगवान का श्रावक है वह वहां आयु पर्यंत रहकर, जितनी उन देवताओं की आयु होती है उतनी बिताकर उसी भव में परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाता है। भिक्षुओ, गति तथा उत्पत्ति के बारे में यह विशेषता है, यह खास बात है, यह भेद है ज्ञानी आर्य श्रावक तथा अज्ञानी पृथग्जन में।

"भिक्षुओ, संसार में ये तीन प्रकार के लोग हैं।"

५. असफलता-सफलता[1] सुत्त

११८. "भिक्षुओ, ये तीन असफलताएं हैं। कौन-सी तीन?

"शील पालन में असफल होना, चित्त (समाधि) की प्राप्ति में असफल होना, दृष्टि (प्रज्ञा) के अधिगम में असफल होना।

"भिक्षुओ, शील पालन में असफल होना किसे कहते हैं?

"भिक्षुओ, एक व्यक्ति प्राणी-हिंसा करता है, चोरी करता है, कामभोग संबंधी मिथ्याचार करता है, झूठ बोलता है, चुगली खाता है, कठोर बोलता है, व्यर्थ बोलता है। भिक्षुओ, इसे शील पालन में असफल होना कहते हैं।

---

१ पालि **'विपत्ति'** हिन्दी **'विपत्ति'** का पर्याय नहीं है। हिन्दी **'विपत्ति'** का अर्थ 'संकट' 'नाश' 'आफत' आदि है। पालि **'विपत्ति'** का अर्थ 'असफलता' है। पालि **'सील विपत्ति'** का अर्थ 'शील पालन में असफल होना' है। उसी तरह पालि 'सम्पदा' का अर्थ हिन्दी 'संपदा' नहीं है। हिन्दी **'संपदा'** का अर्थ 'धनसंपत्ति' 'ऐश्वर्य' आदि है। पालि **'सम्पदा'** का अर्थ 'सफलता' है। पालि **'सील सम्पदा'** का अर्थ 'शील पालन में सफल होना' है।

'विपत्ति' तथा **'सम्पदा'** पालि वाङ्मय में पारिभाषिक शब्द हैं।

"भिक्षुओ, चित्त (समाधि) की प्राप्ति में असफल होना किसे कहते हैं?

"भिक्षुओ, एक व्यक्ति लोभी होता है, क्रोधी होता है। भिक्षुओ, इसे चित्त (समाधि) की प्राप्ति में असफल होना कहते हैं।

"भिक्षुओ, दृष्टि (प्रज्ञा) के अधिगम में असफल होना किसे कहते हैं?

"भिक्षुओ, एक व्यक्ति मिथ्या-दृष्टि वाला होता है, विपरीत-मति (विपरीत दर्शन वाला)-दान का, यज्ञ का, आहुति का, सुकृत-दुष्कृत कर्मों का फल नहीं, यह लोक नहीं, परलोक नहीं, माता नहीं, पिता नहीं, च्युत होकर उत्पन्न होने वाले प्राणी नहीं, संसार में कोई सन्मार्ग-गामी, सुपथ-गामी श्रमण-ब्राह्मण नहीं जो इस लोक तथा परलोक को स्वयं जानकर साक्षात कर उसकी बात करते हों – वह ऐसा मानने वाला होता है। भिक्षुओ, इसे दृष्टि (प्रज्ञा) के अधिगम में असफल होना कहते हैं।

"भिक्षुओ, शील पालन में असफल होने के कारण प्राणी शरीर के न रहने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति में पड़कर नरक में पैदा होते हैं, अथवा चित्त (समाधि) की प्राप्ति में असफल होने के कारण प्राणी शरीर के न रहने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति में पड़कर नरक में पैदा होते हैं अथवा दृष्टि (प्रज्ञा) के अधिगम में असफल होने के कारण प्राणी, शरीर के न रहने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति में पड़कर नरक में पैदा होते हैं। भिक्षुओ, ये तीन असफलताएं हैं।

"भिक्षुओ, ये तीन सफलताएं हैं? कौन-सी तीन?

"शील पालन में सफल होना, चित्त (समाधि) की प्राप्ति में सफल होना तथा दृष्टि (प्रज्ञा) के अधिगम में सफल होना।

"भिक्षुओ, शील पालन में सफल होना क्या है?

"यहां, भिक्षुओ! एक व्यक्ति प्राणी-हिंसा से विरत होता है, चोरी से विरत होता है, कामभोग संबंधी मिथ्याचार से विरत होता है, झूठ बोलने से विरत होता है, चुगली खाने से विरत होता है, कठोर बोलने से विरत रहता है तथा व्यर्थ बोलने से विरत रहता है। भिक्षुओ, इसे शील पालन में सफल कहते हैं।

"और भिक्षुओ! चित्त (समाधि) की प्राप्ति में सफल होना क्या है?

"यहां, भिक्षुओ! एक व्यक्ति अलोभी होता है, अक्रोधी होता है। भिक्षुओ, इसे चित्त (समाधि) की प्राप्ति में सफल होना कहते हैं।

"और भिक्षुओ! दृष्टि (प्रज्ञा) के अधिगम में सफल होना किसे कहते हैं?

"यहां, भिक्षुओ! एक व्यक्ति सम्यक-दृष्टि वाला होता है, सीधी-समझ वाला –दान का, यज्ञ का, आहुति, सुकृत-दुष्कृत कर्मों का फल-विपाक है, यह

लोक है, परलोक है, माता है, पिता है, च्युत होकर उत्पन्न होने वाले प्राणी हैं, लोक में सन्मार्ग-गामी, सुपथ-गामी, श्रमण-ब्राह्मण हैं जो इस लोक तथा परलोक को स्वयं जानकर, साक्षात कर उनकी बात करते हैं –वह ऐसा मानता है। भिक्षुओ! इसे दृष्टि (प्रज्ञा) के अधिगम में सफल होना कहते हैं।

"भिक्षुओ, शील पालन में सफल होने के कारण प्राणी शरीर के न रहने पर, मरने के बाद सुगति को प्राप्त हो स्वर्गलोक में जन्म ग्रहण करते हैं या भिक्षुओ, चित्त (समाधि) की प्राप्ति में सफल होने के कारण प्राणी शरीर छूटने पर, मरने के बाद सुगति को प्राप्त हो स्वर्गलोक में जन्म ग्रहण करते हैं अथवा भिक्षुओ, दृष्टि (प्रज्ञा) के अधिगम में सफल होने के कारण प्राणी शरीर छूटने पर, मरने के बाद सुगति को प्राप्त हो स्वर्गलोक में जन्म ग्रहण करते हैं।

"भिक्षुओ, ये तीन सफलताएं हैं।"

६. अनुलोम मार्ग सुत्त

११९. "भिक्षुओ, तीन असफलताएं हैं। कौन-सी तीन?

"शील पालन में असफल होना, चित्त (समाधि) की प्राप्ति में असफल होना, दृष्टि (प्रज्ञा) के अधिगम में असफल होना... (पूर्वानुसार)

"भिक्षुओ, जैसे ऊपर फेंका हुआ पासा जहां-जहां भी गिरता है, निश्चित ही ठीक गिरकर प्रतिष्ठित हो जाता है, इसी प्रकार भिक्षुओ, शील पालन में असफल होने के कारण प्राणी... में पैदा होते हैं (नरक में गिरना निश्चित है), अथवा चित्त (समाधि) की प्राप्ति में असफल होने के कारण... पैदा होते हैं अथवा दृष्टि (प्रज्ञा) के अधिगम में असफल होने के कारण... पैदा होते हैं। भिक्षुओ, ये तीन असफलताएं हैं।

"भिक्षुओ, ये तीन सफलताएं हैं? कौन-सी तीन?

"शील पालन में सफल होना, चित्त (समाधि) की प्राप्ति में सफल होना, दृष्टि (प्रज्ञा) के अधिगम में सफल होना।

"भिक्षुओ, जैसे ऊपर फेंका हुआ पासा जहां-जहां भी गिरता है, ठीक ही गिरता है, इसी प्रकार भिक्षुओ, शील पालन में सफल होने के कारण प्राणी... जन्म ग्रहण करते हैं, अथवा चित्त (समाधि) की प्राप्ति में सफल होने के कारण प्राणी... जन्म ग्रहण करते हैं, अथवा दृष्टि (प्रज्ञा) के अधिगम में सफल होने के कारण प्राणी... जन्म ग्रहण करते हैं। भिक्षुओ, ये तीन सफलताएं हैं।"

७. कर्मांत सुत्त

१२०. "भिक्षुओ, ये तीन असफलताएं हैं। कौन-सी तीन?

"कर्मांत (सम्यक कर्म) करने में असफल होना, आजीव (सम्यक आजीविका) प्राप्त करने में असफल होना, दृष्टि (सम्यक दृष्टि) के अधिगम में असफल होना।

"भिक्षुओ, कर्मांत (सम्यक कर्म) करने में असफल होना किसे कहते हैं?

"यहां, भिक्षुओ, एक व्यक्ति प्राणी-हिंसा करता है... व्यर्थ बोलता है। भिक्षुओ, इसे कर्मांत करने में असफल होना कहते हैं।

"और भिक्षुओ, आजीव प्राप्त करने में असफल होना किसे कहते हैं?

"यहां, भिक्षुओ, एक व्यक्ति मिथ्या-जीवी होता है, मिथ्या-आजीविका से जीविका चलाता है। भिक्षुओ, इसे आजीव प्राप्त करने में असफल होना कहते हैं।

"और भिक्षुओ, दृष्टि के अधिगम में असफल होना किसे कहते हैं?

"यहां, भिक्षुओ, एक व्यक्ति मिथ्या-दृष्टि वाला, विपरीत-मति वाला होता है – दान का, यज्ञ का... जो इस लोक तथा परलोक को स्वयं जानकर, साक्षात कर उनकी बात करते हैं – ऐसा मानने वाला होता है। भिक्षुओ! इसे दृष्टि के अधिगम में असफल होना कहते हैं। भिक्षुओ, ये तीन असफलताएं हैं।

"भिक्षुओ, ये तीन सफलताएं हैं। कौन-सी तीन?

"कर्मांत करने में सफल होना, आजीव की प्राप्ति में सफल होना, दृष्टि के अधिगम में सफल होना।

"भिक्षुओ, कर्मांत करने में सफल होना क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, एक व्यक्ति प्राणी-हिंसा से विरत रहता है...व्यर्थ बोलने से विरत रहता है। भिक्षुओ, इसे कर्मांत करने में सफल होना कहते हैं।

"और भिक्षुओ, आजीव की प्राप्ति में सफल होना किसे कहते हैं?

"यहां, भिक्षुओ, एक व्यक्ति सम्यक जीवी होता है, वह सम्यक आजीविका से जीविका चलाता है। भिक्षुओ, इसे आजीव की प्राप्ति में सफल होना कहते हैं।

"और भिक्षुओ, दृष्टि के अधिगम में सफल होना किसे कहते हैं?

"भिक्षुओ, एक व्यक्ति सम्यक-दृष्टि वाला होता है... अविपरीत-दर्शी – दान का... जो इस लोक तथा परलोक को स्वयं जानकर, साक्षात कर उनकी बात करते हैं – ऐसा मानने वाला होता है। भिक्षुओ, इसे दृष्टि के अधिगम में सफल होना कहते हैं। भिक्षुओ, ये तीन सफलताएं हैं।"

८. शुचिता सुत्त (प्रथम)

१२१. "भिक्षुओ, ये तीन शुचिताएं हैं। कौन-सी तीन?

"काया की शुचिता, वाणी की शुचिता, मन की शुचिता।

"भिक्षुओ, काया की शुचिता किसे कहते हैं?

"यहां, भिक्षुओ, एक व्यक्ति प्राणी-हिंसा से विरत रहता है, चोरी से विरत रहता है। कामभोग संबंधी मिथ्याचार से विरत रहता है। भिक्षुओ, यह काया की शुचिता है।

"और भिक्षुओ, वाणी की शुचिता क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, एक व्यक्ति झूठ बोलने से विरत रहता है... चुगली खाने से विरत रहता है, कठोर बोलने से विरत रहता है तथा व्यर्थ बोलने से विरत रहता है। भिक्षुओ, इसे वाणी की शुचिता कहते हैं।

"और भिक्षुओ, मन की शुचिता क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, एक व्यक्ति निर्लोभी होता है, अक्रोधी होता है तथा सम्यक-दृष्टि वाला होता है। भिक्षुओ, यह मन की शुचिता है। भिक्षुओ, ये तीन शुचिताएं हैं।"

९. शुचिता सुत्त (द्वितीय)

१२२. "भिक्षुओ, ये तीन शुचिताएं हैं। कौन-सी तीन?

"काया की शुचिता, वाणी की शुचिता, मन की शुचिता।

"और भिक्षुओ, काया की शुचिता क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु प्राणी-हिंसा से विरत होता है, चोरी से विरत होता है, अब्रह्मचर्य से विरत होता है। भिक्षुओ, यह काया की शुचिता है।

"और भिक्षुओ, वाणी की शुचिता क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु झूठ से विरत होता है, चुगली खाने से विरत होता है, कठोर बोलने से विरत होता है तथा व्यर्थ बोलने से विरत होता है। भिक्षुओ, यह वाणी की शुचिता है।

"और भिक्षुओ, मन की शुचिता क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु अपने भीतर कामच्छंद (कामुकता) के विद्यमान होने पर 'मेरे भीतर कामच्छंद है', यह भली प्रकार जानता है। उसमें कामच्छंद नहीं होने पर 'मेरे भीतर कामच्छंद नहीं है', यह भली प्रकार जानता है। जिस तरह अनुत्पन्न कामच्छंद की उत्पत्ति होती है –उसे भली प्रकार जानता है। जिस

तरह उत्पन्न कामच्छंद का प्रहाण होता है –उसे भली प्रकार जानता है। जिस तरह प्रहीण कामच्छंद की भविष्य मे उत्पत्ति नहीं होती है – उसे भली प्रकार जानता है।

"अपने भीतर व्यापाद (द्वेष) विद्यमान होने पर 'मेरे भीतर द्वेष है', यह भली प्रकार जानता है। भीतर द्वेष नहीं होने पर 'मेरे भीतर द्वेष नहीं है', यह भली प्रकार जानता है। जिस तरह अनुत्पन्न द्वेष की उत्पत्ति होती है –उसे भली प्रकार जानता है। जिस तरह उत्पन्न द्वेष का प्रहाण होता है –उसे भली प्रकार जानता है। जिस तरह प्रहीण हुआ द्वेष फिर नहीं उत्पन्न होता है – उसे भली प्रकार जानता है।

"अपने भीतर आलस्य (=स्त्यान-मृद्ध) विद्यमान होने पर 'मेरे भीतर आलस्य है', यह भली प्रकार जानता है। उसमें आलस्य नहीं होने पर 'मेरे भीतर आलस्य नहीं है', यह भली प्रकार जानता है। जिस तरह अनुत्पन्न आलस्य की उत्पत्ति होती है –उसे भली प्रकार जानता है। जिस तरह उत्पन्न आलस्य का प्रहाण होता है –उसे भली प्रकार जानता है। जिस तरह प्रहीण हुआ आलस्य भविष्य में उत्पन्न नहीं होता है – उसे भली प्रकार जानता है।

"अपने भीतर उद्धतपन तथा पश्चात्ताप (औद्धत्य-कौकृत्य)विद्यमान होने पर 'मेरे भीतर उद्धतपन तथा पश्चात्ताप है', यह भली प्रकार जानता है। उसमे उद्धतपन तथा पश्चात्ताप नहीं होने पर 'उद्धतपन तथा पश्चात्ताप नहीं है' – यह भली प्रकार जानता है। जिस तरह अनुत्पन्न उद्धतपन तथा पश्चात्ताप की उत्पत्ति होती है –उसे भली प्रकार जानता है। जिस तरह उत्पन्न उद्धतपन तथा पश्चात्ताप का प्रहाण होता है –उसे भली प्रकार जानता है। जिस तरह प्रहीण हुआ उद्धतपन तथा पश्चात्ताप भविष्य में उत्पन्न नहीं होता है – उसे भली प्रकार जानता है।

"अपने भीतर संशय (विचिकित्सा) विद्यमान होने पर 'मेरे भीतर संशय है', यह भली प्रकार जानता है। भीतर संशय नहीं होने पर 'मेरे भीतर संशय नहीं है', यह भली प्रकार जानता है। जिस तरह अनुत्पन्न संशय की उत्पत्ति होती है –उसे भली प्रकार जानता है। जिस तरह उत्पन्न संशय का प्रहाण होता है –उसे भली प्रकार जानता है। जिस तरह प्रहीण संशय भविष्य में उत्पन्न नहीं होता है – उसे भली प्रकार जानता है। भिक्षुओ, यह मन की शुचिता है। भिक्षुओ, ये तीन शुचिताएं हैं।"

"कायसुचिं वचीसुचिं, चेतोसुचिं अनासवं।
सुचिं सोचेय्यसम्पन्नं, आहु निन्हातपापक"न्ति॥

[“जिसका काय (-कर्म) पवित्र है, वाणी पवित्र है तथा मन पवित्र है ऐसे पवित्र शुचि-भाव-संपन्न अनास्रव को पाप से स्वच्छ हुआ कहते हैं।”]

१०. मौन सुत्त

१२३. “भिक्षुओ ‘मौन’ तीन प्रकार का होता है। कौन-से तीन प्रकार का? काया का मौन, वाणी का मौन, मन का मौन। भिक्षुओ, काया का ‘मौन’ कैसा होता है?

“भिक्षुओ, भिक्षु प्राणी-हिंसा से विरत होता है, चोरी से विरत होता है, कामभोग संबंधी मिथ्याचार से विरत होता है। भिक्षुओ, यह काया का ‘मौन’ कहलाता है।

“और भिक्षुओ, वाणी का मौन कैसा होता है?

“यहां, भिक्षुओ, भिक्षु झूठ बोलने से विरत होता है, चुगली खाने से विरत होता है, कठोर बोलने से विरत होता है, व्यर्थ बोलने से विरत होता है। भिक्षुओ, यह वाणी का ‘मौन’ कहलाता है।

“और भिक्षुओ, मन का ‘मौन’ कैसा होता है?

“यहां, भिक्षुओ, भिक्षु आस्रवों का क्षय कर, अनास्रव चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में अपने आप जानकर, साक्षात कर, प्राप्तकर विहार करता है। भिक्षुओ, यह मन का ‘मौन’ कहलाता है।

“भिक्षुओ, ये तीन ‘मौन’ हैं।”

“कायमुनिं वचीमुनिं, चेतोमुनिं अनासवं।
मुनिं मोनेय्यसम्पन्नं, आहु सब्बप्पहायिन”न्ति॥

[“जिसकी काया ‘मौन’ है, जिसकी वाणी ‘मौन’ है, जिसका चित्त ‘मौन’ है – ऐसे मौन-युक्त, सर्वत्यागी अनास्रव जन को ‘मुनि’ कहते हैं।”]

* * * * *

(१३) ३. कुसिनार वर्ग

१. कुसिनार सुत्त

१२४. एक समय भगवान कुशीनारा में बलिहरण नाम के वन-खंड में विहार करते थे। वहां भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया –

“भिक्षुओ!”

"भदंत!" कहकर उन भिक्षुओं ने भगवान को प्रतिवचन दिया। भगवान ने यह कहा –

"भिक्षुओ, कोई एक भिक्षु किसी एक गांव या निगम के आश्रय में रहकर विहार करता है। कोई गृहस्थ या गृहस्थ-पुत्र आकर उसे अगले दिन के भोजन के लिए आमंत्रित करता है। भिक्षुओ! इच्छा करने वाला भिक्षु उसे स्वीकार कर लेता है। उस रात के बीत जाने पर, पूर्वाह्न समय होने पर, (चीवर) पहन, पात्र-चीवर ले, वह उस गृहस्थ वा गृहस्थ-पुत्र के घर पहुँचता है। जाकर बिछे आसन पर बैठता है। वह गृहपति वा गृहपति-पुत्र उस भिक्षु को बढ़िया खाना, बढ़िया भोजन अपने हाथ से परोसता है। उसके मन में होता है –अच्छा है यह गृहपति वा गृहपति-पुत्र बढ़िया खाना, बढ़िया भोजन मुझे अपने हाथ से परोसता है। उसके मन में यह भी होता है –क्या अच्छा हो यदि यह गृहपति वा गृहपति-पुत्र भविष्य में भी बढ़िया खाना, बढ़िया भोजन मुझे अपने हाथ से परोसे। उस भोजन में आसक्त होकर, मूर्च्छित होकर, वश में होकर, आदीनव (खतरा, बुरा परिणाम) न देखता हुआ, उससे विमुक्त होने की प्रज्ञा से विहीन हो वह उसे ग्रहण करता है। उसके मन में काम-वितर्क भी उठते हैं, व्यापाद-वितर्क भी उठते हैं तथा विहिंसा-वितर्क भी उठते हैं। भिक्षुओ, इस प्रकार के भिक्षु को दिये गये दान का मैं 'महान-फल' नहीं कहता। यह किसलिए? क्योंकि, भिक्षुओ, वह भिक्षु 'प्रमत्त' (प्रमादी) रहकर विहार करता है।

"इसी प्रसंग में, भिक्षुओ, कोई एक भिक्षु किसी एक गांव या निगम के आश्रय में रहकर विहार करता है। कोई गृहस्थ या गृहस्थ-पुत्र आकर उसे अगले दिन के भोजन के लिए आमंत्रित करता है। भिक्षुओ! इच्छा करने वाला भिक्षु उसे स्वीकार कर लेता है। उस रात के बीत जाने पर, पूर्वाह्न समय होने पर, (चीवर) पहन, पात्र-चीवर ले वह उस गृहस्थ वा गृहस्थ-पुत्र के घर पहुँचता है। जाकर बिछे आसन पर बैठता है। गृहपति वा गृहपति-पुत्र उस भिक्षु को बढ़िया खाना, बढ़िया भोजन अपने हाथ से परोसता है। उसके मन में यह नहीं होता – अच्छा है यह गृहपति या गृहपति-पुत्र बढ़िया-खाना, बढ़िया-भोजन मुझे अपने हाथ से परोसता है। उसके मन में यह भी नहीं होता है – क्या अच्छा हो यदि यह गृहपति या गृहपति-पुत्र भविष्य में भी बढ़िया-खाना, बढ़िया-भोजन मुझे अपने हाथ से परोसे। उस भोजन में आसक्त न हो, अमूर्च्छित रह कर, वशीभूत न हो, आदीनव देखता हुआ, उससे विमुक्त होने की प्रज्ञा से युक्त हो वह उसे ग्रहण करता है। उसके मन में निष्क्रमण-वितर्क उठते हैं, अद्वेष-संबंधी वितर्क उठते हैं, अविहिंसा-संबंधी

वितर्क उठते हैं। भिक्षुओ, इस प्रकार के भिक्षु को दिये गये दान का मैं 'महान फल' कहता हूं। यह किसलिए? भिक्षुओ, भिक्षु अप्रमादी रह विहार करता है।"

२. कलह सुत्त

१२५. "भिक्षुओ, जिस दिशा में भिक्षु आपस में झगड़ते हैं, कलह करते हैं, विवाद करते हैं, परस्पर एक दूसरे को शब्दशूल से बींधते हुए विचरते हैं, भिक्षुओ, उस दिशा में जाने की तो बात ही क्या, उस दिशा की ओर ध्यान देने से भी मुझे सुख नहीं होता। उनके बारे में मेरे मन में यह निश्चय हो जाता है कि उन आयुष्मानों ने तीन बातों को छोड़ दिया होगा और दूसरी तीन बातों को ही बढ़ाया होगा।

"किन तीन बातों को छोड़ दिया होगा? नैष्क्रम्य-वितर्क, अव्यापाद-वितर्क, अविहिंसा-वितर्क। इन तीन बातों को छोड़ दियाहोगा।

"किन तीन बातों को ही बढ़ाया होगा?

"काम-वितर्क, व्यापाद-वितर्क, विहिंसा-वितर्क। इन तीन बातों को ही बढ़ाया होगा।

"भिक्षुओ, जिस दिशा में भिक्षु आपस में झगड़ते हैं, कलह करते हैं, विवाद करते हैं, परस्पर एक दूसरे को शब्दशूल से बींधते हुए विचरते हैं, भिक्षुओ, उस दिशा में जाने की तो बात ही क्या, उस दिशा की ओर ध्यान देने से भी मुझे सुख नहीं होता। उनके बारे में मेरे मन में यह निश्चय हो जाता है कि उन आयुष्मानों ने इन तीन बातों को छोड़ दिया होगा और इन तीन बातों को ही बढ़ाया होगा।

"भिक्षुओ, जिस दिशा में भिक्षु समग्र-भाव से, प्रमुदित मन से, परस्पर विवाद न करते हुए, दूध-पानी बने हुए, एक दूसरे को प्रेम की दृष्टि से सम्यक प्रकार से देखते हुए विचरते हैं, भिक्षुओ, उस दिशा की ओर ध्यान देने की तो बात ही क्या, उस दिशा की ओर जाने में मुझे सुख मिलता है। उनके बारे में मेरे मन में निश्चय हो जाता है कि उन आयुष्मानों ने तीन बातों को छोड़ दिया होगा और तीन बातों को ही बढ़ाया होगा।

"किन तीन बातों को छोड़ दियाहोगा?

"काम-वितर्क, व्यापाद-वितर्क, विहिंसा-वितर्क। इन तीन बातों को छोड़ दिया होगा।

"किन तीन बातों को बढ़ाया होगा? नैष्क्रम्य-वितर्क ...बढ़ाया होगा। भिक्षुओ, जिस दिशा में भिक्षु समग्र-भाव से... सुख मिलता है। उनके बारे में... बढ़ाया होगा।"

३. गोतमक-चेतिय सुत्त

१२६. एक समय भगवान वैशाली के गोतमक चैत्य में विहार करते थे। वहां भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया –

“भिक्षुओ!”

“भदंत!” कहकर भिक्षुओं ने भगवान को प्रतिवचन दिया। भगवान ने यह कहा –

“भिक्षुओ, मैं पूरी तरह जानकर धर्म का उपदेश करता हूं, बिना पूरी तरह जाने नहीं; भिक्षुओ, मैं निदान (=हेतु)-सहित धर्मों का उपदेश देता हूं, बिना निदान के नहीं; भिक्षुओ, मैं प्रातिहार्य के साथ धर्मों का उपदेश करता हूं, बिना प्रातिहार्य के नहीं। जब मैं पूरी तरह जानकर धर्म का उपदेश करता हूं, बिना पूरी तरह जाने नहीं; जब मैं निदान-सहित धर्म का उपदेश करता हूं, बिना निदान के नहीं; जब मैं प्रातिहार्य के साथ धर्म का उपदेश करता हूं, बिना प्रातिहार्य के नहीं तब मेरे उपदेश के अनुसार आचरण होना ही चाहिए, मेरा अनुशासन माना ही जाना चाहिए। भिक्षुओ, तुम्हारी संतुष्टि के लिए, तुम्हारे संतोष के लिए, तुम्हारी प्रसन्नता के लिए यह पर्याप्त है कि –‘भगवान सम्यक संबुद्ध हैं, धर्म सु-आख्यात (भली प्रकार कहा गया) है, संघ सुमार्ग-गामी है।’” भगवान ने यह कहा।

संतुष्ट हुए उन भिक्षुओं ने भगवान के भाषण का अभिनंदन किया। इस ‘व्याख्या’ के कहे जाते समय सहस्री लोकधातु कांप उठी।

४. भरण्डुकालाम सुत्त

१२७. एक समय भगवान कोशल जनपद में चारिका करते हुए कपिलवस्तु पहुँचे। महानाम शाक्य ने सुना कि भगवान कपिलवस्तु में पहुँच गये हैं। तब महानाम शाक्य भगवान के पास गया। पास जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े महानाम शाक्य को भगवान ने यह कहा –

“महानाम! कपिलवस्तु जा। ऐसा निवासस्थान खोज जहां हम आज एक रात रहें।”

“भंते! अच्छा।” कहकर महानाम शाक्य ने भगवान को प्रतिवचन दिया और कपिलवस्तु में प्रवेश कर उसने सारी कपिलवस्तु में निवासस्थान खोजा। उसे कपिलवस्तु में कोई ऐसा निवासस्थान नहीं दिखाई दिया जहां भगवान एक रात रह सकें। तब महानाम शाक्य भगवान के पास गया। पास जाकर उसने भगवान से कहा –

“भंते! कपिलवस्तु में वैसा निवासस्थान नहीं है जहां भगवान आज एक रात रहें। भंते! यह भरण्डु कालाम है भगवान का पुराना सह-पाठी। आज रात भगवान उसके आश्रम में रहें।”

“महानाम! जा। शयनासन बिछा।”

“भंते! अच्छा” कह, महानाम शाक्य भगवान की बात सुन भरण्डु कालाम के आश्रम गया। जाकर शयनासन तैयार कर, पैर धोने के लिए पानी रखकर, भगवान के पास गया। जाकर भगवान से बोला –

“भंते! शयनासन बिछा है। पैर धोने के लिए पानी रखा है। अब भंते! भगवान जो इस समय करना हो करें।”

तब भगवान भरण्डु कालाम के आश्रम गये। पहुँचकर बिछे आसन पर बैठे। बैठकर पांव धोये। उस समय महानाम शाक्य के मन में यह विचार आया –

“आज भगवान का सत्संग करने का समय नहीं है। भगवान थके हैं। कल मैं भगवान की सेवा में आऊंगा।” वह भगवान को प्रणाम कर, प्रदक्षिणा करके चला गया।

अब महानाम शाक्य उस रात्रि के बीतने पर भगवान के पास गया। पास जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे महानाम शाक्य को भगवान ने यह कहा –

“महानाम! इस संसार में तीन प्रकार के शास्ता हैं। कौन-से तीन प्रकार के ?”

“महानाम! एक शास्ता कामनाओं का पूर्ण ज्ञान से (यथार्थतः) प्रज्ञापन करते हैं, रूप का नहीं, वेदनाओं का नहीं; महानाम! एक दूसरे शास्ता कामनाओं का पूर्ण ज्ञान से प्रज्ञापन करते हैं, रूप का पूर्ण ज्ञान से प्रज्ञापन करते हैं, वेदनाओं का नहीं; महानाम! एक तीसरे शास्ता कामनाओं का पूर्ण ज्ञान से प्रज्ञापन करते हैं, रूप का पूर्ण ज्ञान से प्रज्ञापन करते हैं और वेदनाओं का पूर्ण ज्ञान से प्रज्ञापन करते हैं। महानाम! संसार में ये तीन प्रकार के शास्ता हैं। महानाम! इन तीन प्रकार के शास्ताओं का एक ही निष्कर्ष है वा भिन्न-भिन्न निष्कर्ष है ?”

ऐसा कहे जाने पर भरण्डु कालाम ने महानाम शाक्य को यह कहा –

“महानाम! कह कि एक ही निष्कर्ष है।”

ऐसा कहने पर भगवान ने महानाम शाक्य को कहा –

"महानाम! कह अनेक।"

दूसरी बार भी भरण्डु कालाम ने महानाम शाक्य को यह कहा – "महानाम! कह एक।" दूसरी बार भी भगवान ने महानाम शाक्य को कहा – "महानाम! कह अनेक।" तीसरी बार भी भरण्डु कालाम ने महानाम शाक्य को कहा –"महानाम! कह एक।" तीसरी बार भी भगवान ने महानाम शाक्य को कहा – "महानाम! कह अनेक।"

तब भरण्डु कालाम के मन में यह हुआ –

"प्रतापी महानाम शाक्य के सामने श्रमण गौतम ने मेरा तीन बार खंडन कर दिया। मेरे लिए अच्छा है कि मैं कपिलवस्तु से निकल भागूं।"

तब भरण्डु कालाम कपिलवस्तु से चला गया। कपिलवस्तु से जो गया, सो गया। फिर लौटकर नहीं आया।

५. हत्थक सुत्त

१२८. एक समय भगवान श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम में विहार करते थे। उस समय अभिरूप हत्थक-देवपुत्र रात के बीतते सारे के सारे जेतवन को प्रकाशित कर भगवान के पास गया। पास जाकर 'भगवान के सामने खड़ा होऊंगा' सोच लड़खड़ाता था, इधर-उधर झुकता था किंतु खड़ा नहीं रह सकता था। जैसे घी या तेल को यदि बालू पर डाला जाए तो वह नीचे चला जाता है, ऊपर नहीं रहता, उसी प्रकार हत्थक देवपुत्र 'भगवान के सामने खड़ा होऊंगा' सोच लड़खड़ाता था, इधर-उधर झुकता था किंतु खड़ा नहीं रह सकता था।

तब भगवान ने हत्थक-देवपुत्र को यह कहा –"हत्थक! तू स्थूल रूप बना"। "भंते! अच्छा" कह हत्थक-देवपुत्र भगवान की बात सुन स्थूल रूप बनाकर भगवान को प्रणाम कर एक ओर खड़ा हुआ। एक ओर खड़े हुए हत्थक-देवपुत्र को भगवान ने यह कहा –

"हत्थक! मनुष्य रहते समय जो-जो बातें होती थीं, वे इस समय भी प्रवर्तित होती हैं?

"भंते भगवान! जो बातें पहले मनुष्य रहते समय होती थीं, वे बातें अब भी प्रवर्तित होती हैं और जो बातें पहले मनुष्य रहते नहीं होती थीं, वे भी अब प्रवर्तित होती हैं। जैसे भंते भगवान इस समय भिक्षुओं से, भिक्षुणियों से, उपासकों से, उपासिकाओं से, राजाओं से, राजमहामात्यों से, तैर्थिकों से, तैर्थिक-श्रावकों से परिवृत होकर विहार करते हैं; उसी प्रकार भंते, मैं भी

देवपुत्रों से परिवृत हो विचरण करता हूं। भंते! 'हत्थक-देवपुत्र से धर्म सुनेंगे' सोच दूर-दूर से देवपुत्र आते हैं।

"भंते! मैं तीन बातों से अतृप्त रहकर, असंतुष्ट रहकर ही मर गया। किन तीन से? भंते! मैं भगवान के दर्शन से अतृप्त रहकर ही मर गया। सद्धर्म श्रवण में भी मैं अतृप्त रहकर ही मर गया। भंते! मैं संघ की सेवा करने के विषय में भी अतृप्त रहकर ही मर गया।

"भंते! मैं इन तीन बातों के विषय में अतृप्त रहकर, असंतुष्ट रहकर ही मर गया।"

"नाहं भगवतो दस्सनस्स, तित्तिमज्झगा कुदाचनं।
सङ्घस्स उपट्ठानस्स, सद्धम्मसवनस्स च॥

"अधिसीलं सिक्खमानो, सद्धम्मसवने रतो।
तिण्णं धम्मानं अतित्तो, हत्थको अविहं गतो"ति॥

["मैं कभी भगवान के दर्शन से तृप्त नहीं हुआ, संघ की सेवा करने तथा सद्धर्म सुनने से तृप्त नहीं हुआ। श्रेष्ठतर-शील को सीखता हुआ, सद्धर्म सुनने में रत रहकर मैं हत्थक, तीनों विषयों में अतृप्त रहकर अविह (लोक को) गया।"]

६. उच्छिष्ट सुत्त

१२९. एक समय भगवान वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाय में विहार करते थे। तब भगवान पूर्वाह्न समय (चीवर) पहन कर तथा पात्र-चीवर लेकर वाराणसी में भिक्षाटन के लिए निकले। गो-योग-पिलक्ष (बरगद के पेड़ के नीचे जहां गायों की हाट लगती थी) स्थान पर भिक्षाटन करते समय भगवान ने एक भिक्षु को देखा जो (ध्यान-) सुख से रिक्त था, जो (ध्यान-) सुख से बाहर था, जो मूढ़-स्मृति था, जो असंप्रज्ञानी था, जो असमाहित था, जो विभ्रांत-चित्त था तथा जो असंयत-इंद्रिय था। उस भिक्षु को देखकर भगवान ने यह कहा –

"भिक्षु! तू अपने आपको जूठा सड़ा हुआ न बना। भिक्षु! यह असंभव है कि तू अपने आपको जूठा सड़ा हुआ बनाये, उसमें से दुर्गंध निकले और उस पर मक्खियां न बैठें, न मंडरायें।

भगवान का यह उपदेश सुना तो उस भिक्षु के मन में संवेग जागा। तब भगवान ने वाराणसी में भिक्षाटन कर, भोजन के अनंतर, भिक्षाटन से लौट चुकने पर, भिक्षुओं को आमंत्रित किया –

“भिक्षुओ! मैंने पूर्वाह्न समय (चीवर) पहन, पात्र-चीवर ले वाराणसी में भिक्षाटन के लिए प्रवेश किया। भिक्षुओ! मैंने गो-योग-पिलक्ष में भिक्षाटन के लिए घूमते समय एक भिक्षु को देखा जो (ध्यान-) सुख से रिक्त था, जो (ध्यान-) सुख से बाहर था, जो मूढ़-स्मृति था, जो असंप्रज्ञानी था, जो असमाहित था, जो विभ्रांत-चित्त था, जो असंयत-इंद्रिय था। उस भिक्षु को देखकर मैंने कहा –

“‘भिक्षु! तू अपने आपको जूठा सड़ा हुआ न बना। भिक्षु! यह असंभव है कि तू अपने आपको जूठा सड़ा हुआ बनाये, उसमें से दुर्गंध निकले और उस पर मक्खियां न बैठें, न मंडरायें।’

“भिक्षुओ, मेरे इस उपदेश से उस भिक्षु के मन में संवेग पैदा हो गया।

ऐसा कहने पर एक भिक्षु ने भगवानसे कहा –

“भंते! जूठन किसे कहते हैं? सड़ायँध किसे कहते हैं? मक्खियां किसे कहते हैं?

“भिक्षुओ! लोभ जूठन है, क्रोध सड़ायँध है, पापी अकुशल-वितर्क मक्खियां हैं। यह असंभव है कि भिक्षु अपने आपको जूठा जनाये, उसमें से दुर्गंध न निकले और उस पर मक्खियां न बैठें, न मंडरायें।”

“अगुत्तं चक्खुसोतस्मिं, इन्द्रियेसु असंवुतं।
मक्खिकानुपतिस्सन्ति, सङ्कप्पा रागनिस्सिता॥

“कटुवियकतो भिक्खु, आमगन्धे अवस्सुतो।
आरका होति निब्बाना, विघातस्सेव भागवा॥

“गामे वा यदि वारञ्ञे, अलद्धा समथमत्तनो।
परेति बालो दुम्मेधो, मक्खिकाहि पुरक्खतो॥

“ये च सीलेन सम्पन्ना, पञ्ञायूपसमेरता।
उपसन्ता सुखं सेन्ति, नासयित्वान मक्खिका।”ति॥

[“जब चक्षु तथा श्रोत्र इंद्रियां अरक्षित रहती हैं, जब इंद्रियां असंयत रहती हैं तब सराग संकल्प रूपी मक्खियां मंडराती हैं। जब भिक्षु ‘जूठा’ हो जाता है, जब सड़ांध पैदा होती है तब वह निर्वाण से दूर हो जाता है और विनाश का ही हिस्सेदार होता है। जो मूर्ख होता है, जो बुद्धिहीन होता है, वह सम्यकत्व को बिना प्राप्त किये, मक्खियों से घिरा हुआ, गांव या अरण्य में विचरता रहता है। जो शीलसंपन्न हैं, जो प्रज्ञावान हैं वे मक्खियों का नाश कर शांत हो सुखपूर्वक रहते हैं।”]

७. अनुरुद्ध सुत्त (प्रथम)

१३०. एक समय आयुष्मान अनुरुद्ध भगवान के पास गये। पास जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान अनुरुद्ध ने भगवान से यह कहा –

"भंते! मैं अलौकिक ,विशुद्ध, दिव्य चक्षु से देखता हूं कि स्त्रियां शरीर छूटने पर, मरने के बाद अधिकांश में दुर्गति को प्राप्त होती हैं, नरक में उत्पन्न होती हैं। भंते! किन-किन धर्मों से युक्त होने पर स्त्रियां शरीर छूटने पर मरने के बाद दुर्गति को प्राप्त होती हैं, नरक में जन्म ग्रहण करती हैं?

"अनुरुद्ध! तीन धर्मों से युक्त होने पर स्त्री शरीर छूटने पर, मरने के बाद दुर्गति को प्राप्त होती है, नरक में उत्पन्न होती है। कौन-से तीन?

"यहां, अनुरुद्ध! स्त्री पूर्वाह्न में मात्सर्य रूपी मल-युक्त चित्त से घर में निवास करती है, मध्याह्न में ईर्ष्या रूपी मल-युक्त चित्त से घर में निवास करती है, शाम के समय काम-राग रूपी मल-युक्त चित्त से घर में निवास करती है। अनुरुद्ध! इन तीन बातों से युक्त होने पर स्त्री शरीर छूटने पर मरने के बाद दुर्गति को प्राप्त होती है, नरक में उत्पन्न होती है।"

८. अनुरुद्ध सुत्त (द्वितीय)

१३१. एक बार आयुष्मान अनुरुद्ध आयुष्मान सारिपुत्त के पास पहुँचे। पास जाकर आयुष्मान सारिपुत्त के साथ कुशलक्षेम की बातचीत की। कुशलक्षेम की बातचीत समाप्त कर आयुष्मान अनुरुद्ध एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान अनुरुद्ध ने आयुष्मान सारिपुत्त को कहा –

"सारिपुत्त! मैं अलौकिक ,विशुद्ध, दिव्य चक्षु से सहस्रों लोकों को देखता हूं। मेरा आलस्य-रहित प्रयत्न आरंभ है। उपस्थित-स्मृति मूढ़ता विहीन है। शांत-शरीर उत्तेजना-रहित है। समाहित-चित्त एकाग्र है। लेकिन तब भी मेरा चित्त उपादान रहित होकर आस्रवों से विमुक्त नहीं होता।"

"आयुष्मान अनुरुद्ध! आपके मन में जो यह होता है कि मैं अलौकिक , विशुद्ध, दिव्य चक्षु से सहस्रों लोकों को देखता हूं – यह आपका मान है। आयुष्मान अनुरुद्ध! आपके मन में जो यह होता है कि मेरा आलस्य-रहित प्रयत्न आरंभ है, उपस्थित-स्मृति मूढ़ता-विहीन है, शांत-शरीर उत्तेजना-रहित है, समाहित-चित्त एकाग्र है – यह आपका उद्धतपन है। आयुष्मान अनुरुद्ध! आप के मन में जो यह होता है कि मेरा चित्त उपादान रहित होकर आस्रवों से विमुक्त नहीं होता –यह आपका कौकृत्य है। आयुष्मान अनुरुद्ध! अच्छा होगा

यदि आप इन तीनों बातों को छोड़कर, इन तीनों धर्मों को मन से निकालकर चित्त को अमृत-धातु (=निर्वाण) की ओर केंद्रित करें।"

तब आगे चलकर आयुष्मान अनुरुद्ध ने इन तीनों बातों को छोड़कर, इन तीनों धर्मों को मन से निकालकर, चित्त को अमृत-धातु की ओर केंद्रित किया। तब (उन धर्मों से) हट जाने से, अप्रमादी होकर प्रयत्न करने से, यत्नवान होकर विहार करने से आयुष्मान अनुरुद्ध ने अचिरकाल में ही, जिसके लिए कुलपुत्र घर का त्याग कर बेघर हो जाते हैं, उस ब्रह्मचर्य-मय सर्वश्रेष्ठ (पद) को इसी जीवन में, स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार किया। उन्होंने जान लिया कि जन्म (का कारण) क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्य-वास पूरा हो गया, करणीय समाप्त हो गया और यहां के लिए (अर्थात फिर जन्म लेने के लिए) कुछ शेष नहीं रहा। आयुष्मान अनुरुद्ध अर्हतों में से एक हुए।

९. प्रतिच्छन्न सुत्त

१३२. "भिक्षुओ, ये तीन छिपे-छिपे रहते हैं, खुले नहीं। कौन तीन?

"भिक्षुओ, स्त्रियां गुप्त रूप से काम करती हैं, खुलकर नहीं; भिक्षुओ, ब्राह्मण गुप्त रूप से मंत्र पाठ करते हैं, खुलकर नहीं; भिक्षुओ, मिथ्या-मत वाले अपने मत को गुप्त रखते हैं, खुले नहीं।

"भिक्षुओ, ये तीन खुले चमकते हैं, ढँके नहीं। कौन तीन?

"भिक्षुओ, चंद्रमंडल खुला चमकता है, आच्छादित नहीं; भिक्षुओ, सूर्य-मंडल खुला चमकता है, आच्छादित नहीं; इसी प्रकार तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म खुला चमकता है, आच्छादित नहीं।

"भिक्षुओ, ये तीन खुले चमकते हैं, ढँके नहीं।"

१०. रेख सुत्त

१३३. "भिक्षुओ, संसार में तीन तरह के व्यक्ति हैं। कौन-से तीन?

"पत्थर पर खिंची रेखा के समान व्यक्ति, पृथ्वी पर खिंची रेखा के समान व्यक्ति, पानी पर खिंची रेखा के समान व्यक्ति।

"भिक्षुओ, पत्थर पर खिंची रेखा के समान व्यक्ति कैसा होता है? भिक्षुओ, एक व्यक्ति प्रायः क्रोधित होता है। उसका वह क्रोध दीर्घकाल तक रहता है। जैसे भिक्षुओ, पत्थर पर खिंची रेखा शीघ्र नहीं मिटती, न हवा से, न पानी से, चिरस्थायी होती है, इसी प्रकार भिक्षुओ, यहां एक व्यक्ति प्रायः क्रोधित होता है। उसका वह क्रोध दीर्घकाल तक रहता है। भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति 'पत्थर पर खिंची रेखा समान व्यक्ति' कहलाता है।

"और भिक्षुओ, पृथ्वी पर खिंची रेखा के समान व्यक्ति कैसा होता है? भिक्षुओ, एक व्यक्ति प्रायः क्रोधित होता है। उसका वह क्रोध दीर्घकाल तक नहीं रहता। जैसे भिक्षुओ, पृथ्वी पर खिंची रेखा शीघ्र मिट जाती है, हवा से वा पानी से, चिरस्थायी नहीं होती। इसी प्रकार भिक्षुओ, यहां एक व्यक्ति प्रायः क्रोधित होता है। उसका क्रोध दीर्घकाल तक नहीं रहता। भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति 'पृथ्वी पर खिंची रेखा समान व्यक्ति' कहलाता है।

"और भिक्षुओ, पानी पर खिंची रेखा के समान व्यक्ति कैसा होता है? भिक्षुओ, कोई-कोईव्यक्ति ऐसा होता है कि यदि कडुवा भी बोला जाय, कठोर भी बोला जाय, अप्रिय भी बोला जाय तो भी वह जुड़ा ही रहता है, मिला ही रहता है, प्रसन्न ही रहता है। जिस प्रकार भिक्षुओ, पानी पर खिंची रेखा शीघ्र विलीन हो जाती है, चिरस्थायी नहीं होती; इसी प्रकार भिक्षुओ, कोई-कोईव्यक्ति ऐसा होता है जिसे यदि कडुवा भी बोला जाय, कठोर भी बोला जाय, अप्रिय भी बोला जाय तो भी वह जुड़ा ही रहता है, मिला ही रहता है, प्रसन्न ही रहता है। भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति 'पानी पर खिंची रेखा समान व्यक्ति' कहलाताहै।

"भिक्षुओ, संसार में ये तीन तरह के लोग हैं।"

* * * * *

(१४) ४. योद्धाजीव वर्ग

१. योद्धा सुत्त

१३४. "भिक्षुओ, तीन अंगों से युक्त योद्धा राजा के योग्य होता है, राजा का भोग्य होता है, राजा का अंग ही कहलाता है। किन तीन अंगोंसे?

"यहां, भिक्षुओ, जो ऐसा योद्धा होता है वह दूर तक बींधने वाला (तीर फेंकनेवाला) होता है, अक्षणवेधी (विद्युत गति से अचूक निशाना लगाने वाला होता है) तथा बड़े (तख्तों के) समूह को बींधने वाला होता है। भिक्षुओ, इन तीन बातों से युक्त योद्धा राजा के योग्य होता है, राजा का भोग्य होता है, राजा का अंग ही कहलाता है।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, तीन अंगों से युक्त भिक्षु आदरणीय होता है... लोगों के लिए सर्वश्रेष्ठ पुण्य-क्षेत्र होता है। किन तीन अंगों से?

"भिक्षुओ, ऐसा भिक्षु दूर तक बींधने वाला होता है, अक्षणवेधी होता है तथा बड़े समूह को बींधने वाला।

"भिक्षुओ, भिक्षु दूर तक बींधने वाला कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, वह भिक्षु जितना भी रूप है – चाहे भूतकाल का हो, चाहे वर्तमान का, चाहे भविष्य का, चाहे अपने भीतर का हो, अथवा बाहर का, चाहे स्थूल हो अथवा सूक्ष्म, चाहे बुरा हो अथवा भला, चाहे दूर हो अथवा समीप, इस सारे रूप को यथार्थ रूप से प्रज्ञा से इसी प्रकार देखता है कि 'यह न मेरा है, न यह मैं हूं और न यह मेरी आत्मा है।'

"भिक्षुओ, वह भिक्षु जितनी भी वेदना है – चाहे भूतकाल की हो, चाहे वर्तमान की, चाहे भविष्य की, चाहे अपने भीतर की हो, अथवा बाहर की, चाहे स्थूल हो अथवा सूक्ष्म, चाहे बुरी हो अथवा भली, चाहे दूर हो अथवा समीप, इस सारी वेदना को यथार्थ रूप से प्रज्ञा से इसी प्रकार देखता है कि 'यह न मेरी है, न यह मैं हूं और न यह मेरी आत्मा है।'

"भिक्षुओ, वह भिक्षु जितनी भी संज्ञा है – चाहे भूतकाल की हो, चाहे वर्तमान की, चाहे भविष्य की, चाहे अपने भीतर की हो अथवा बाहर की, चाहे स्थूल हो अथवा सूक्ष्म, चाहे बुरी हो अथवा भली, चाहे दूर हो अथवा समीप, इस सारी संज्ञा को यथार्थ रूप से प्रज्ञा से इसी प्रकार देखता है कि 'यह न मेरी है, न यह मैं हूं और न यह मेरी आत्मा है।'

"भिक्षुओ, वह भिक्षु जितने भी संस्कार हैं – चाहे भूतकाल के हों, चाहे वर्तमान के, चाहे भविष्य के, चाहे अपने भीतर के हों अथवा बाहर के, चाहे स्थूल हों अथवा सूक्ष्म, चाहे बुरे हों अथवा भले, चाहे दूर हों अथवा समीप, इन सारे संस्कारों को यथार्थ रूप से प्रज्ञा से इसी प्रकार देखता है कि 'यह न मेरे हैं, न यह मैं हूं और न यह मेरी आत्मा हैं।'

"भिक्षुओ, वह भिक्षु जितना भी विज्ञान है – चाहे भूतकाल का हो, चाहे वर्तमान का, चाहे भविष्य का, चाहे अपने भीतर का हो अथवा बाहर का, चाहे स्थूल हो अथवा सूक्ष्म, चाहे बुरा हो अथवा भला, चाहे दूर हो अथवा समीप, इस सारे विज्ञान को यथार्थरूप से प्रज्ञा से इसी प्रकार देखता है कि 'यह न मेरा है, न यह मैं हूं और न यह मेरी आत्मा है।' इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु दूर तक बींधने वाला होता है।

"और भिक्षुओ, भिक्षु अक्षणवेधी कैसे होता है?

"भिक्षुओ, भिक्षु 'यह दुःख है' इसे यथार्थ रूप से जानता है... 'यह दुःख निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है', इसे यथार्थ रूप से जानता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु अक्षणवेधी होता है।

"और भिक्षुओ, भिक्षु किस प्रकार बड़े समूह का बींधने वाला होता है?

“भिक्षुओ, भिक्षु महान अविद्या-स्कंध को चीर डालता है। भिक्षुओ, इन तीन अंगों से युक्त भिक्षु आदरणीय होता है... लोगों के लिए सर्वश्रेष्ठ पुण्य-क्षेत्र होता है।”

२. परिषद सुत्त

१३५. “भिक्षुओ, ये तीन तरह की परिषद होती हैं। कौन-सी तीन?

“प्रबुद्ध एवं विनीत परिषद (अट्ठकथा के अनुसार बिना प्रश्नोत्तर के विनीत अर्थात दुर्विनीत) प्रश्नोत्तर द्वारा विनीत परिषद एवं प्रमाण भर अर्थात जितना विनीत होना चाहिए उसकी मात्रा जानकर विनीत हुई परिषद।

“भिक्षुओ, ये तीन तरह की परिषदें हैं।”

३. मित्र सुत्त

१३६. “भिक्षुओ, तीन अंगों से युक्त मित्र की संगति करनी चाहिए। कौन-से तीन?

“भिक्षुओ, जो मित्र कठिनाई से दी जा सकने योग्य वस्तु देता है, कठिनाई से किया जा सकने वाला कार्य करता है, कठिनाई से सहन की जा सकने वाली बात सहन करता है। भिक्षुओ, इन तीन अंगों से युक्त मित्र की संगति करनी चाहिए।”

४. उत्पाद सुत्त

१३७. “भिक्षुओ, चाहे तथागत उत्पन्न हों, चाहे तथागत उत्पन्न न हों, यह धर्म-स्थिति, यह धर्म-नियम यूं ही रहता है – सभी संस्कार अनित्य हैं। इस नियम को तथागत पूर्णतया जान जाते हैं, इसका पूर्णतया ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। पूर्णतया जानकर, ज्ञान प्राप्त करके कहते हैं, उपदेश देते हैं, प्रज्ञापित करते हैं, स्थापित करते हैं, उघाड़ते हैं, व्याख्या करते हैं, प्रकट करते हैं कि ‘सभी संस्कार अनित्य हैं’।

“भिक्षुओ, चाहे तथागत उत्पन्न हों, चाहे तथागत उत्पन्न न हों, यह धर्म-स्थिति, यह धर्म-नियम यूं ही रहता है –सभी संस्कार दुःख हैं। इस नियम को तथागत पूर्णतया जान जाते हैं, इसका पूर्णतया ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। पूर्णतया जानकर, ज्ञान प्राप्त करके कहते हैं, उपदेश देते हैं, प्रज्ञापित करते हैं, स्थापित करते हैं, स्थापित करते हैं, उघाड़ते हैं, व्याख्या करते हैं, प्रकट करते हैं कि ‘सभी संस्कार दुःख हैं’।

“भिक्षुओ, चाहे तथागत उत्पन्न हों, चाहे तथागत उत्पन्न न हों, यह धर्म-स्थिति, यह धर्म-नियम यूं ही रहता है – सभी धर्म (=संस्कृत

धर्म+असंस्कृत धर्म) अनात्म हैं। इस नियम को तथागत पूर्णतया जान जाते हैं, इसका पूर्णतया ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। पूर्णतया जानकर, ज्ञान प्राप्त करके कहते हैं, उपदेश देते हैं, प्रज्ञापित करते हैं, स्थापित करते हैं, उघाड़ते हैं, व्याख्या करते हैं, प्रकट करते हैं कि'सभी धर्म अनात्म हैं'।"

५. केसकम्बलसुत्त

१३८. "भिक्षुओ, जितने भी धागों से बने वस्त्र हैं उनमें बालों से बना कंबल निकृष्ट कहलाता है। भिक्षुओ! बालों से बना कंबल जाड़े में ठंडा, गरमी में गरम, दुर्वर्ण, दुर्गंधयुक्त, अप्रिय स्पर्श वाला होता है; इसी प्रकार भिक्षुओ, जितने भी श्रमण-मत हैं उनमें मक्खली-मत निकृष्टतम कहा जाता है। भिक्षुओ! मूर्ख मक्खली का यह वाद है, यह मत है – 'न कर्म है, न क्रिया है, न पराक्रम है।'

"भिक्षुओ, भूतकाल में जितने भी अर्हत सम्यक-संबुद्ध हुए हैं, वे सभी भगवान कर्मवादी थे, क्रियावादी थे, पराक्रम-वादी थे। भिक्षुओ, मूर्ख मक्खली उनका भी खंडन (प्रतिषेध) करता है –'न कर्म है, न क्रिया है, न पराक्रम है।'

"भिक्षुओ, भविष्य में भी जो अर्हत, सम्यक संबुद्ध होंगे, वे सभी भगवान कर्मवादी, क्रियावादी तथा पराक्रम-वादी होंगे। भिक्षुओ, मूर्ख मक्खली उनका भी खंडन करता है –'न कर्म है, न क्रिया है, न पराक्रम है।'

"भिक्षुओ, मैं भी इस समय अर्हत सम्यक संबुद्ध हूं। मैं भी कर्मवादी हूं, क्रियावादी हूं, पराक्रम-वादी हूं। भिक्षुओ, मूर्ख मक्खली मेरा भी खंडन करता है –'न कर्म है, न क्रिया है, न पराक्रम है।'

"भिक्षुओ, जैसे नदी के मुँह पर कोई मनुष्य जाल बांधे, बहुत सी मछलियों के अहित के लिए, दुःख के लिए, दुर्भाग्य के लिए तथा विनाश के लिए। इसी प्रकार भिक्षुओ, मूर्ख मक्खली लोक में पैदा हुआ है, मानो लोक में आदमियों को जाल में फँसाने के लिए, बहुत प्राणियों के अहित के लिए, दुःख के लिए, दुर्भाग्य के लिए तथा विनाश के लिए।"

६. संपदा सुत्त

१३९. "भिक्षुओ, संपत्तियां तीन हैं। कौन-सी तीन?

"श्रद्धा-संपत्ति, शील-संपत्ति, प्रज्ञा-संपत्ति। भिक्षुओ, ये तीन संपत्तियां हैं।"

७. वृद्धि सुत्त

१४०. "भिक्षुओ, ये तीन वृद्धियां हैं। कौन-सी तीन?

"श्रद्धा-वृद्धि, शील-वृद्धि तथा प्रज्ञा-वृद्धि। भिक्षुओ, ये तीन वृद्धियां हैं।"

८. अदमनीय सुत्त

१४१. "भिक्षुओ, तीन अश्व-कुमारों (=बछेरों) का उपदेश देता हूं और तीन मनुष्य-कुमारों का। यह सुनो, अच्छी तरह मन में धारण करो, कहता हूं।"

"भंते! अच्छा" कहकर उन भिक्षुओं ने भगवान को प्रतिवचन दिया। भगवान ने यह कहा –

"भिक्षुओ, तीन प्रकार के बछेरे कौन-से होते हैं?

"यहां, भिक्षुओ, एक अश्व-कुमार गतियुक्त होता है, किंतु न तो वर्णयुक्त होता है और न आरोहण करने योग्य (उचित गुणों से संपन्न न होना)। भिक्षुओ, एक अश्व-कुमार गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है किंतु आरोहण योग्य नहीं होता। भिक्षुओ, एक अश्व-कुमार गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है और आरोहण योग्य भी। भिक्षुओ, ये तीन प्रकार के बछेरे होते हैं।

"और भिक्षुओ, तीन प्रकार के मनुष्य-कुमार कौन-से होते हैं?

"यहां, भिक्षुओ, एक मनुष्य-कुमार गतियुक्त होता है, किंतु न वर्ण युक्त होता है और न आरोहण योग्य। भिक्षुओ, एक तरुण गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है पर आरोहण योग्य नहीं। भिक्षुओ, एक तरुण गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है और आरोहण योग्य भी।

"और भिक्षुओ, मनुष्य-कुमार कैसे गतियुक्त होता है, किंतु न वर्णयुक्त और न आरोहण योग्य?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु 'यह दुःख है', इसे यथार्थ रूप से जानता है... 'यह दुःख निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है' इसे यथार्थ रूप से जानता है। यह उसमें 'गति' होना कहता हूं। अभिधर्म और अभिविनय के बारे में प्रश्न पूछे जाने पर कतरा जाता है, उत्तर नहीं देता। यह उसमें 'वर्ण' का न होना कहता हूं। वह चीवर-पिंडपात-शयनासन-ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य आदि चीजों को प्राप्त करने वाला नहीं होता। यह उसका 'आरोहण योग्य' न होना कहता हूं।

"और भिक्षुओ, मनुष्य-कुमार कैसे गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है किंतु 'आरोहण योग्य' नहीं होता?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु 'यह दुःख है' इसे यथार्थ रूप से जानता है... 'यह दुःख निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है' इसे यथार्थ रूप से जानता है। यह उसमें 'गति' होना कहता हूं। अभिधर्म और अभिविनय के बारे में प्रश्न पूछे जाने पर कतराता नहीं है, उत्तर देता है। यह उसमें 'वर्ण' का होना कहता हूं। वह चीवर-पिंडपात-शयनासन-ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य आदि चीजों को पाने वाला नहीं होता। यह उसका 'आरोहण योग्य' न होना कहता हूं।

"और भिक्षुओ, मनुष्य-कुमार कैसे 'गति' युक्त होता है, 'वर्णयुक्त' होता है और 'आरोहण योग्य' भी होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु 'यह दुःख है' इसे यथार्थ रूप से जानता है... 'यह दुःख निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है' इसे यथार्थ रूप से जानता है। यह उसमें 'गति' होना कहता हूं। अभिधर्म और अभिविनय के बारे में प्रश्न पूछे जाने पर कतराता नहीं, उत्तर देता है। यह उसमें 'वर्ण' का होना कहता हूं। चीवर-पिंडपात-शयनासन-ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य आदि चीजों का पाने वाला होता है। यह उसका 'आरोहण योग्य' होना कहता हूं। भिक्षुओ, इस प्रकार मनुष्य-कुमार गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है और आरोहण योग्य भी होता है। भिक्षुओ, ये तीन प्रकार के मनुष्य-कुमार हैं।"

९. परिष्कृत अश्व सुत्त

१४२. "भिक्षुओ, तीन प्रकार के श्रेष्ठ-अश्वों का उपदेश करता हूं और तीन प्रकार के श्रेष्ठ-पुरुषों का। वह सुनो, अच्छी तरह मन में धारण करो, कहता हूं।"

"अच्छा, भंते" कहकर उन भिक्षुओं ने भगवान को प्रतिवचन दिया। भगवान ने यह कहा –

"भिक्षुओ! तीन प्रकार के श्रेष्ठ-अश्व कौन-से हैं?

"यहां, भिक्षुओ, एक श्रेष्ठ-अश्व गतियुक्त होता है पर न वर्णयुक्त और न आरोहण योग्य। भिक्षुओ, एक श्रेष्ठ-अश्व गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है, किंतु आरोहण-योग्य नहीं। भिक्षुओ, एक श्रेष्ठ-अश्व गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है और आरोहण-योग्य भी। भिक्षुओ! ये तीन प्रकार के श्रेष्ठ-अश्व होते हैं।"

"भिक्षुओ! तीन प्रकार के श्रेष्ठ-पुरुष कौन-से होते हैं?

"यहां, भिक्षुओ, एक श्रेष्ठ-पुरुष गतियुक्त होता है पर न वर्णयुक्त और न आरोहण योग्य। भिक्षुओ, एक श्रेष्ठ-पुरुष गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता

है पर आरोहण-योग्य नहीं। भिक्षुओ, एक श्रेष्ठ-पुरुष गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है और आरोहण-योग्य भी।

"भिक्षुओ, किस प्रकार श्रेष्ठ-पुरुष गतियुक्त होता है, किंतु न वर्णयुक्त होता है और न आरोहण-योग्य?

"भिक्षुओ, भिक्षु पांच ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके न जन्म लेने वाला होता है, वहीं परिनिर्वृत्त होने वाला – उस लोक से न लौटने वाला। यह उसमें 'गति' होना कहता हूं। अभिधर्म और अभिविनय के बारे में प्रश्न पूछे जाने पर कतराता है, उत्तर नहीं देता। यह उसमें 'वर्ण' का न होना कहता हूं। वह चीवर-पिंडपात-शयनासन-ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य आदि चीजों का पाने वाला नहीं होता। यह उसका 'आरोहण योग्य' न होना कहता हूं। भिक्षुओ, इस प्रकार श्रेष्ठ-पुरुष गतियुक्त होता है, किंतु न वर्णयुक्त होता है और न आरोहण योग्य।

"भिक्षुओ, श्रेष्ठ-पुरुष किस प्रकार गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है, किंतु आरोहण योग्य नहीं?

"भिक्षुओ, भिक्षु पांच ओरंभागीय संयोजनों का क्षय कर जन्म न लेने वाला होता है, वहीं परिनिर्वृत्त होने वाला, उस लोक से न लौटने वाला। यह उसमें 'गति' का होना कहता हूं। अभिधर्म और अभिविनय के बारे में प्रश्न पूछने पर कतराता नहीं है, उत्तर देता है। यह उसमें 'वर्ण' का होना कहता हूं। वह चीवर... चीजों को पाने वाला नहीं होता। यह उसका 'आरोहण योग्य' न होना कहता हूं। इस प्रकार भिक्षुओ, श्रेष्ठ-पुरुष गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है; किंतु आरोहण-योग्य नहीं।

"भिक्षुओ, श्रेष्ठ-पुरुष किस प्रकार गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है और आरोहण योग्य होता है?

"भिक्षुओ, भिक्षु पांच... न लौटने वाला। यह उसमें 'गति' का होना कहता हूं। अभिधर्म और अभिविनय के बारे में प्रश्न पूछने पर कतराता नहीं, उत्तर देता है। यह उसमें 'वर्ण' का होना कहता हूं। वह चीवर... चीजों का पाने वाला होता है। यह उसका 'आरोहण योग्य' होना कहता हूं। भिक्षुओ, ये तीन श्रेष्ठ-पुरुष हैं।"

१०. श्रेष्ठ-अश्व सुत्त

१४३. "भिक्षुओ, तीन श्रेष्ठ दान्त (=प्रशिक्षित) अश्वों का उपदेश करता हूं और तीन श्रेष्ठ-पुरुषों का। वह सुनो, अच्छी तरह मन में धारण करो, कहता हूं।

"भिक्षुओ, तीन श्रेष्ठ-अश्व कैसे होते हैं?

"यहां, भिक्षुओ, एक श्रेष्ठ-अश्व गतियुक्त है, न वर्णयुक्त होता है... गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है, आरोहण योग्य होता है। भिक्षुओ, ये तीन श्रेष्ठ-अश्व हैं।

"भिक्षुओ, ये तीन श्रेष्ठ-अश्व हैं।

"और भिक्षुओ, तीन श्रेष्ठ-पुरुष कैसे होते हैं?

"यहां, भिक्षुओ, एक श्रेष्ठ-पुरुष... गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है और आरोहण योग्य होता है।

"भिक्षुओ, एक श्रेष्ठ-पुरुष कैसे गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है और आरोहण योग्य होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु आस्रवों का क्षय करके अनास्रव चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विचरता है। भिक्षुओ, यह उसमें 'गति' का होना कहता हूं। अभिधर्म और अभिविनय के बारे में पूछने पर कतराता नहीं है, उत्तर देता है, यह उसमें 'वर्ण' का होना कहता हूं। वह चीवर-पिंडपात-शयनासन-ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य आदि चीजों का पाने वाला हो। यह उसका 'आरोहण योग्य' होना कहता हूं। इस प्रकार भिक्षुओ! श्रेष्ठ-पुरुष गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है और आरोहण योग्य होता है।

"भिक्षुओ, ये तीन श्रेष्ठ-पुरुष हैं।"

११. मोरनिवाप सुत्त (प्रथम)

१४४. एक बार भगवान राजगृह के मोरनिवाप नाम के परिव्राजकाराम में विहार करते थे। वहां भगवान ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया –"भिक्षुओ!" "भदंत" कहकर उन भिक्षुओं ने भगवान को प्रतिवचन दिया। भगवान ने यह कहा –

"भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त भिक्षु अत्यंत (पूर्ण) प्रवीण होता है, पूर्ण योग-क्षेमी होता है, पूर्ण ब्रह्मचारी होता है, पूर्ण-उद्देश्य (पूर्ण-लक्षी) होता है तथा देव-मनुष्यों में श्रेष्ठ होता है। किन तीन धर्मों से?

"अशैक्ष शील-स्कंध से युक्त होता है, अशैक्ष समाधि-स्कंध से युक्त होता है, अशैक्ष प्रज्ञा-स्कंध से युक्त होता है। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त भिक्षु

अत्यंत प्रवीण होता है, पूर्ण योग-क्षेमी होता है, पूर्ण ब्रह्मचारी होता है, पूर्ण-उद्देश्य होता है तथा देव-मनुष्यों में श्रेष्ठ होता है।”

१२. मोरनिवाप सुत्त (द्वितीय)

१४५. “भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त भिक्षु अत्यंत प्रवीण... देव-मनुष्यों में श्रेष्ठ होता है। किन तीन धर्मों से?

“ऋद्धि-प्रातिहार्य से युक्त, देशना-प्रातिहार्य से युक्त, अनुशासनी-प्रातिहार्य से युक्त। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त भिक्षु अत्यंत प्रवीण होता है, पूर्ण योग-क्षेमी होता है, पूर्ण ब्रह्मचारी होता है, पूर्ण-उद्देश्य होता है तथा देव-मनुष्यों में श्रेष्ठ होता है।

१३. मोरनिवाप सुत्त (तृतीय)

१४६. “भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त भिक्षु अत्यंत प्रवीण... देव-मनुष्यों में श्रेष्ठ होता है। किन तीन धर्मों से?

“सम्यक-दृष्टि से, सम्यक-ज्ञान से और सम्यक विमुक्ति से। भिक्षुओ, इन धर्मों से युक्त भिक्षु, अत्यंत प्रवीण... देव-मनुष्यों में श्रेष्ठ होता है।”

* * * * *

(१५) ५. मंगल वर्ग

१. अकुशल सुत्त

१४७. “भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त प्राणी ऐसा होता है जैसे लाकर नरक में डाल दिया गया हो। किन तीन धर्मों से?

“अकुशल कायकर्म से, अकुशल वाणी के कर्म से, अकुशल मानसिक-कर्म से। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त प्राणी ऐसा होता है जैसे लाकर नरक में डाल दिया गया हो।

“भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त प्राणी ऐसा होता है जैसे लाकर स्वर्ग में डाल दिया गया हो। किन तीन धर्मों से?

“कुशल कायकर्म से, कुशल वाणी के कर्म से, कुशल मानसिक-कर्म से। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त प्राणी ऐसा होता है जैसे लाकर स्वर्ग में डाल दिया गया हो।”

२. सावद्य सुत्त

१४८. "भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त प्राणी ऐसा होता है जैसे लाकर नरक में डाल दिया गया हो। किन तीन धर्मों से?

"सदोष कायकर्मसे, सदोष वाणी के कर्मसे, सदोष मानसिक-कर्मसे। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त प्राणी ऐसा होता है जैसे लाकर नरक में डाल दिया गया हो।

"भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त प्राणी ऐसा होता है जैसे लाकर स्वर्ग में डाल दिया गया हो। किन तीन धर्मों से?

"निर्दोष कायकर्मसे, निर्दोष वाणी के कर्मसे, निर्दोष मानसिक-कर्मसे। भिक्षुओ, इन धर्मों से युक्त... डाल दिया गया हो।"

३. विषम सुत्त

१४९. "भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त... विषम कायकर्मसे, विषम वाणी के कर्मसे, विषम मानसिक-कर्मसे। भिक्षुओ, इन धर्मों से युक्त... नरक में लाकर डाल दिया गया हो।"

"भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त... अ-विषम कायकर्मसे, अ-विषम वाणी के कर्मसे, अ-विषम मानसिक-कर्मसे।

"भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त... स्वर्ग में डाल दिया गया हो।"

४. अशुचि सुत्त

१५०. "...अपवित्र कायकर्मसे, अपवित्र वाणी के कर्मसे, अपवित्र मानसिक-कर्मसे...।

"...पवित्र कायकर्मसे, पवित्र वाणी के कर्मसे, पवित्र मानसिक-कर्मसे। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त प्राणी ऐसा होता है जैसे लाकर स्वर्ग में डाल दिया गया हो।"

५. मूलोच्छेद सुत्त (प्रथम)

१५१. "भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान, सत्त्वहीन हो विचरता है (अर्थात मिथ्या-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), अवगुणी होता है, सदोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है। किन तीन धर्मों से?

"अकुशल कायकर्म से, अकुशल वाणी के कर्म से, अकुशल मानसिक-कर्मसे।

"भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान, सत्त्वहीन हो विचरता है (अर्थात मिथ्या-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), अवगुणी होता है, सदोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है।

"भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त पंडित, व्यक्त, सत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान नहीं हो सत्त्वयुक्त हो विचरता है (अर्थात सम्यक-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), गुणी होता है, निर्दोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय होता है और बहुत पुण्य कमाता है। किन तीन धर्मों से?

"कुशल कायकर्मसे, कुशल वाणी के कर्म से, कुशल मानसिक-कर्म से..."

६. मूलोच्छेद सुत्त (द्वितीय)

१५२. "...सदोष कायकर्म से, सदोष वाणी के कर्म से, सदोष मानसिक-कर्मसे...

"...निर्दोष कायकर्मसे, निर्दोष वाणी के कर्मसे, निर्दोष मानसिक-कर्म से..."

७. मूलोच्छेद सुत्त (तृतीय)

१५३. "...विषम कायकर्म से, विषम वाणी के कर्म से, विषम मानसिक-कर्मसे..."

"...अविषम कायकर्म से, अविषम वाणी के कर्म से, अविषम मानसिक-कर्मसे..."

८. मूलोच्छेद सुत्त (चतुर्थ)

१५४. "...अपवित्र कायकर्मसे, अपवित्र वाणी के कर्मसे, अपवित्र मानसिक-कर्मसे...

"...पवित्र कायकर्मसे, पवित्र वाणी के कर्मसे, पवित्र मानसिक-कर्मसे।

"भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त पंडित, व्यक्त, सत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान नहीं हो सत्त्वयुक्त हो विचरता है (अर्थात सम्यक-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), गुणी होता है, निर्दोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय होता है और बहुत पुण्य कमाता है।"

९. वंदना सुत्त

१५५. "भिक्षुओ, ये तीन वंदनाएं हैं। कौन-सी तीन?

"काय-वंदना, वाणी की वंदना, मन की वंदना। भिक्षुओ! ये तीन वंदनाएं हैं।"

१०. पूर्वाह्न सुत्त

१५६. "भिक्षुओ, जो प्राणी पूर्वाह्न के समय शरीर से सदाचरण करते हैं, वाणी से सदाचरण करते हैं, मन से सदाचरण करते हैं, भिक्षुओ, उन प्राणियों का वह सुपूर्वाह्न है। भिक्षुओ, जो प्राणी मध्याह्न में शरीर से सदाचरण करते हैं...मन से सदाचरण करते हैं उन प्राणियों का वह सुमध्याह्न है। भिक्षुओ, जो प्राणी शाम के समय शरीर से सदाचरण करते हैं...मन से सदाचरण करते हैं, भिक्षुओ, उन प्राणियों का वह सुसायह्न है।"

"सुनक्खत्तं सुमङ्गलं, सुप्पभातं सुहुट्ठितं।
सुखणो सुमुहुत्तो च, सुयिट्ठं ब्रह्मचारिसु॥

"पदक्खिणं कायकम्मं, वाचाकम्मं पदक्खिणं।
पदक्खिणं मनोकम्मं, पणीधि ते पदक्खिणे।
पदक्खिणानि कत्वान, लभन्तत्थे पदक्खिणे॥

"ते अत्थलद्धा सुखिता, विरूळ्हा बुद्धसासने।
अरोगा सुखिता होथ, सह सब्बेहि ञातिभी"ति॥

["(वही) सुनक्षत्र है, सुमंगल है, सुप्रभात है, सु-उत्थान है, सु-क्षण है, सु-मुहूर्त है, ब्रह्मचारियों के साथ सु-यज्ञ है। (शुभ) कायकर्म ही प्रदक्षिणा है, वाणी का कर्म ही प्रदक्षिणा है, मानसिक-कर्म प्रदक्षिणा है, प्रणिधान प्रदक्षिणा है। प्रदक्षिणा करने से यहां प्रदक्षिणा (उन्नति) की प्राप्ति होती है। उन अर्थों को प्राप्त करके सभी संबंधियों के साथ बुद्ध-शासन में अर्थसंपन्न हों, निरोग हों, सुखी हों।"]

* * * * *

(१६) ६. अचेलक वर्ग

१५७-१६३. "भिक्षुओ, तीन मार्ग (पटिपदा) हैं। कौन-से तीन?

"शिथिल मार्ग; कठोर मार्ग, मध्यम मार्ग।

"भिक्षुओ, शिथिल मार्ग कौन-सा है?

“यहां, भिक्षुओ, किसी-किसी का ऐसा मत होता है, ऐसी दृष्टि होती है – कामभोगों में दोष नहीं है। वह कामभोगों में जा पड़ता है। भिक्षुओ, यह ‘शिथिल मार्ग’ कहलाता है।

“भिक्षुओ, अतियों का कठोरमार्ग कौन-सा है?

“यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई नग्न होता है, शिष्टाचार-शून्य, हाथ चाटने वाला, ‘भदंत आयें’ कहने पर न आने वाला, ‘भदंत खड़े रहें’ कहने पर खड़ा न रहने वाला, लाया हुआ न खाने वाला, उद्देश्य से बनाया हुआ न खाने वाला और निमंत्रण भी न स्वीकार करने वाला होता है। वह न घड़े में से दिया हुआ लेता है, न ऊखल में से दिया हुआ लेता है, न किवाड़ की ओट से दिया हुआ लेता है, न मेढ़े के बीच में आ जाने से दिया हुआ, न दंड के बीच में पड़ जाने से लेता है, न मूसल के बीच में आ जाने से लेता है। वह दो जने खाते हों, उनमें से एक के उठकर देने पर नहीं लेता है, न गर्भिणी का दिया लेता है, न बच्चे को दूध पिलाती हुई का दिया लेता है, न पुरुष के पास गई हुई का दिया लेता है, न संग्रह किये हुए अन्न में से पकाया हुआ लेता है, न जहां कुत्ता खड़ा हो वहां से लेता है, न जहां मक्खियां उड़ती हों वहां से लेता है। वह न मछली खाता है, न मांस खाता है। न सुरा पीता है, न मेरय पीता है, न चावल का पानी पीता है। वह या तो एक ही घर से लेकर खाने वाला होता है या एक ही कौर खाने वाला; दो घरों से लेकर खाने वाला होता है या दो ही कौर खाने वाला... सात घरों से लेकर खाने वाला होता है या सात कौर खाने वाला। वह एक ही छोटी प्लेट से भी गुजारा करने वाला होता है... सात छोटी प्लेटों से भी गुजारा करने वाला होता है। वह दिन में एक बार भी खाने वाला होता है, दो दिन में एक बार भी खाने वाला होता है... सात दिन में एक बार भी खाने वाला होता है; इस प्रकार वह पंद्रह दिन में एक बार खाकर भी रहता है। वह शाक खाने वाला भी होता है, स्यामाक खाने वाला भी होता है, नीवार (धान) खाने वाला भी होता है, दद्दुल (धान) खाने वाला भी होता है, हट (शाक) खाने वाला भी होता है, कणाज-भात खाने वाला भी होता है, आचाम खाने वाला भी होता है, खली खाने वाला भी होता है, तिनके (घास) खाने वाला भी होता है, गोबर खाने वाला भी होता है, जंगल के पेड़ों से गिरे फल-मूल को खाने वाला भी होता है। वह सन के कपड़े भी धारण करता है, सन-मिश्रित कपड़े भी धारण करता है, शव-वस्त्र (कफन) भी पहनता है, फेंके हुए वस्त्र भी पहनता है, वृक्ष-विशेष की छाल के कपड़े भी पहनता है, अजिन (-मृग) की खाल भी पहनता है, अजिन (-मृग) की चमड़ी से बनी पट्टियों से बुना वस्त्र भी पहनता है, कुश का बना वस्त्र भी पहनता है, छाल (वाक) का वस्त्र भी पहनता है,

फलक (छाल) का वस्त्र भी पहनता है, केशोंसे बना कंबलभी पहनता है, पूंछ के बालों का बना कंबलभी पहनता है, उल्लू के परों का बना वस्त्र भी पहनता है। वह केश-दाढ़ी का लुंचन करनेवाला भी होता है। वह बैठने का त्याग कर निरंतर खड़ा ही रहने वाला भी होता है। वह उकड़ूंबैठ कर प्रयत्न करनेवाला भी होता है, वह कांटोंकी शय्या पर सोने वाला भी होता है। प्रातः, मध्याह्न, सायं – दिन में तीन बार पानी में जाने वाला होता है। इस तरह, वह नाना प्रकार से शरीर को कष्ट पीड़ा पहुँचाता हुआ विहार करता है। भिक्षुओ, यह 'कठोर मार्ग' कहलाता है।

"और भिक्षुओ, 'मध्यम मार्ग' कौन-सा है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है, श्रमशील, संप्रज्ञानी, स्मृतिमान तथा लोक में अभिध्या (लोभ)-दौर्मनस्य (द्वेष) को हटाकर; वेदनाओं में वेदनानुपश्यी होकर... चित्त में चित्तानुपश्यी होकर... धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर विहार करता है. श्रमशील, संप्रज्ञानी, स्मृतिमान तथा लोक में अभिध्या (लोभ)-दौर्मनस्य को हटाकर। भिक्षुओ, यह 'मध्यम मार्ग' कहलाता है। भिक्षुओ, ये तीन मार्ग हैं।" "भिक्षुओ, ये तीन मार्ग हैं। कौन-से तीन?

"शिथिल, कठोर मार्ग, मध्यम मार्ग।

"और भिक्षुओ, शिथिल मार्ग कौन-सा है? (पूर्वानुसार) भिक्षुओ, यह 'शिथिल मार्ग' कहलाता है।

"और भिक्षुओ, कठोर मार्ग कौन-सा है?

"...(पूर्वानुसार) भिक्षुओ, इसे 'कठोर मार्ग' कहते हैं।

"और भिक्षुओ, मध्यम मार्ग क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु अनुत्पन्न पापी अकुशल-धर्मोंको उत्पन्न न होने देने के लिए संकल्प करता है, प्रयत्न करता है, परिश्रम करता है, मन को काबू में रखता है। उत्पन्न पापी अकुशल-धर्मोंका प्रहाण करनेके लिए संकल्प करता है, प्रयत्न करता है, परिश्रम करता है, मन को काबू में रखता है। अनुत्पन्न कुशल धर्मों को उत्पन्न करनेके लिए संकल्प करता है, प्रयत्न करता है, परिश्रम करता है, मन को काबू में रखता है। उत्पन्न कुशलधर्मों को स्थित रखने के लिए, लोप न होने देने के लिए, अधिकाधिक बढ़ाने के लिए संकल्प करता है, प्रयत्न करता है, परिश्रम करता है, मन को काबू में रखता है। ...छंद-प्रयत्न-संस्कार युक्त ऋद्धि-पथ का अभ्यास करता है, वीर्य-समाधि, चित्त-समाधि, वीमंसा

(मीमांसा)-समाधि और प्रधान (=प्रयत्न) तथा संस्कार से युक्त ऋद्धि-पथ का अभ्यास करता है... श्रद्धा-इंद्रिय का अभ्यास करता है, वीर्य-इंद्रिय का अभ्यास करता है, स्मृति-इंद्रिय का अभ्यास करता है, समाधि-इंद्रिय का अभ्यास करता है, प्रज्ञा-इंद्रिय का अभ्यास करता है... श्रद्धा-बल का अभ्यास करता है, वीर्य-बल का अभ्यास करता है, स्मृति-बल का अभ्यास करता है, समाधि-बल का अभ्यास करता है, प्रज्ञा-बल का अभ्यास करता है, स्मृति-संबोधि अंग का अभ्यास करता है, धर्मविचय-संबोधि अंग का अभ्यास करता है, वीर्य-संबोधि अंग का अभ्यास करता है, प्रीति-संबोधि अंग का अभ्यास करता है, प्रश्रब्धि-संबोधि अंग का अभ्यास करता है, समाधि-संबोधि अंग का अभ्यास करता है, उपेक्षा-संबोधि अंग का अभ्यास करता है, सम्यक-दृष्टि का अभ्यास करता है, सम्यक-संकल्प का अभ्यास करता है, सम्यक-वाणी का अभ्यास करता है, सम्यक-कर्मांत का अभ्यास करता है, सम्यक-आजीविका का अभ्यास करता है, सम्यक-व्यायाम का अभ्यास करता है, सम्यक-स्मृति का अभ्यास करता है तथा सम्यक-समाधि का अभ्यास करता है। भिक्षुओ, यह 'मध्यम मार्ग' कहलाता है। भिक्षुओ, ये तीन मार्ग हैं।"

(१७) ७. कर्म पर्याय

१६४-१८३. "भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त प्राणी ऐसा होता है जैसे लाकर नरक में डाल दिया गया हो। किन तीन धर्मों से? स्वयं प्राणी-हिंसा करता है, दूसरे को प्राणी-हिंसा के लिए प्रेरित करता है और प्राणी-हिंसा का समर्थन करता है। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त प्राणी ऐसा ही होता है जैसे लाकर नरक में डाल दिया गया हो।

"भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त प्राणी ऐसा होता है जैसे लाकर स्वर्ग में डाल दिया गया हो। किन तीन धर्मों से?

"स्वयं प्राणी-हिंसा से विरत रहता है, दूसरे को प्राणी-हिंसा के लिए प्रेरित नहीं करता और प्राणी-हिंसा का समर्थन नहीं करता...

"...स्वयं चोरी करता है, दूसरे को चोरी के लिए प्रेरित करता है और चोरी का समर्थन करता है... स्वयं चोरी से विरत रहता है, दूसरे को चोरी के लिए प्रेरित नहीं करता और चोरी का समर्थन नहीं करता है...

"...स्वयं कामभोग संबंधी मिथ्याचार करने वाला होता है, दूसरे को कामभोग संबंधी मिथ्याचार के लिए प्रेरित करता है और कामभोग संबंधी

मिथ्याचार का समर्थन करता है... स्वयं कामभोग संबंधी मिथ्याचार से विरत होता है, दूसरे को कामभोग संबंधी मिथ्याचार के लिए प्रेरित नहीं करता और कामभोग संबंधी मिथ्याचार से विरत रहने का समर्थन करता है...

“...स्वयं झूठ बोलता है, दूसरे को झूठ बोलने के लिए प्रेरित करता है और झूठ बोलने का समर्थन करता है... स्वयं झूठ बोलने से विरत रहता है, दूसरे को झूठ बोलने के लिए प्रेरित नहीं करता और झूठ बोलने से विरत रहने का समर्थन करता है...

“...स्वयं चुगली खाता है, दूसरे को चुगली खाने के लिए प्रेरित करता है और चुगली खाने का समर्थन करता है... स्वयं चुगली खाने से विरत रहता है, दूसरे को चुगली खाने के लिए प्रेरित नहीं करता और चुगली खाने से विरत रहने का समर्थन करता है...

“...स्वयं कठोर बोलता है, दूसरे को कठोर बोलने के लिए प्रेरित करता है और कठोर बोलने का समर्थन करता है... स्वयं कठोर बोलने से विरत रहता है, दूसरे को कठोर बोलने के लिए प्रेरित नहीं करता है और कठोर बोलने से विरत रहने का समर्थन करता है...

“...स्वयं व्यर्थ बोलने वाला होता है, दूसरे को व्यर्थ बोलने के लिए प्रेरित करता है और व्यर्थ बोलने का समर्थन करता है... स्वयं व्यर्थ बोलने से विरत रहता है, दूसरे को व्यर्थ बोलने के लिए प्रेरित नहीं करता है और व्यर्थ बोलने से विरत रहने का समर्थन करता है...

“...स्वयं लोभी होता है, दूसरे को लोभ के लिए प्रेरित करता है और लोभ का समर्थन करता है... स्वयं लोभ से विरत रहता है, दूसरे को लोभ के लिए प्रेरित नहीं करता है और लोभ से विरत रहने का समर्थन करता है...

“...स्वयं क्रोधी होता है, दूसरे को क्रोध के लिए प्रेरित करता है और क्रोध का समर्थन करता है।... स्वयं क्रोध से विरत रहता है, दूसरे को क्रोध के लिए प्रेरित नहीं करता है और क्रोध से विरत रहने का समर्थन करता है।

“...स्वयं मिथ्या-दृष्टि वाला होता है, दूसरे को मिथ्या-दृष्टि की ओर प्रेरित करता है और मिथ्या-दृष्टि का समर्थन करता है... स्वयं सम्यक-दृष्टि वाला होता है, दूसरे को सम्यक-दृष्टि की ओर प्रेरित करता है और सम्यक-दृष्टि का समर्थन करता है।

"भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त प्राणी ऐसा होता है जैसे लाकर स्वर्ग में डाल दिया गया हो।"

(१८) ८. राग पर्याय

१८४. "भिक्षुओ, राग के अभिज्ञान के लिए इन तीन धर्मों की भावना करनी चाहिए।

"किन तीन की?

"शून्यता-समाधि की, अनिमित्त-समाधि की तथा अप्रणिहित-समाधि की। भिक्षुओ, राग के अभिज्ञान के लिए इन तीन धर्मों की भावना करनी चाहिए।

"भिक्षुओ, राग के परिज्ञान के लिए, परिक्षय के लिए, प्रहाण के लिए, क्षय के लिए, व्यय के लिए, वैराग्य के लिए, निरोध के लिए, त्याग के लिए तथा प्रतिनिसर्ग के लिए इन तीन धर्मों की भावना करनी चाहिए।

"द्वेष के ...मोह के ...क्रोधके ...,उपनाह के ...,म्रक्ष के ...,प्रदास के ..., ईर्ष्या के ..., मात्सर्य के ..., माया के ..., शठता के ..., जड़ता के ..., सारंभ के ...,मान के ...,अतिमान के ...,मद के ...तथा प्रमाद के अभिज्ञान के लिए, परिज्ञान के लिए, परिक्षय के लिए, प्रहाण के लिए, क्षय के लिए, व्यय के लिए, वैराग्य के लिए, निरोध के लिए, त्याग के लिए तथा प्रतिनिसर्ग के लिए इन तीन धर्मों की भावना करनी चाहिए।"

भगवान ने यह कहा। उन भिक्षुओं ने संतुष्ट होकर भगवान के भाषण का अभिनंदन किया।

एकक, द्विक तथा त्रिक निपात समाप्त।

परिशिष्ट

प्रातिमोक्ष - भिक्षु विनय के दो-सौ सत्ताईस नियमों का संग्रह।

प्रातिमोक्ष उद्देश - भिक्षु विनय के नियमों की व्याख्या।

प्रवारणा - वर्षावास के बाद किया जाने वाला एक संघकर्म।

तर्जनीय कर्म- कलहकारक या मूर्ख भिक्षु को संघ द्वारा दिया गया दण्ड। या तो उसे संघ से निष्कासित करने की धमकी दी जाती है या उसे निंदित किया जाता है।

नियस्य कर्म- गलत आचरण करने वाले भिक्षु को संघ द्वारा सलाह दी जाती है कि वह किसी आचार्य के संरक्षण में रहकर विनय नियमों का पालन करे।

प्रव्राजनीय कर्म- संघ द्वारा यह दण्ड वैसे भिक्षु को दिया जाता है जो गृहस्थों की हानि करते हैं, उनमें फूट डालते हैं या उन्हे बुरा-भला कहते हैं।

उत्क्षेपणीय कर्म- वैसे भिक्षुओं के विरुद्ध यह कर्म किया जाता है जो अपनी गलती न तो स्वीकार करते हैं और न उसका सुधार करते हैं।

परिवास - परीक्ष्यमाण अवधि को कहते हैं। संघादिशेष के दोषी भिक्षु को कुछ दिनों के लिए परिवास दिया जाता है। वह अलग-थलग रहता है और सभी भिक्षुओं की दृष्टि उस भिक्षु पर यह जानने के लिए रहती है कि वह सदाचरण का जीवन जीता है या नहीं। यह एक प्रकार से प्रायश्चित्त करने की अवधि है।

मूल प्रतिकर्षण - अगर परिवास या मानत्त के दौरान कोई भिक्षु दूसरा संघादिशेष अपराध करता है तो उसे नये सिरे से परिवास लेना होता है और परिवास में बिताया गया समय गिना नहीं जाता। इसे मूलप्रतिकर्षण कहते हैं।

मानत्त - अगर कोई भिक्षु संघादिशेष अपराध करके तुरंत किसी दूसरे भिक्षु को सूचित कर देता है तो उसे सिर्फ छह रातों तक प्रायश्चित करनी पड़ती है। इसे "मानत्त" कहते हैं।

अब्भान - छह रातों तक प्रायश्चित्त करने के बाद भिक्षु शुद्ध हो जाता है और वह संघ में वापिस लिए जाने योग्य हो जाता है। इसे "अब्भान" कहते हैं।

ओसारणीय कर्म- वैसे भिक्षु को जो प्रव्राजनीय, तर्जनीय, नियस्य, उत्क्षेपणीय कर्मों के कारण परिवास का दण्ड भुगत कर पश्चात्ताप की अवधि पूरा कर संघ में वापस आने योग्य हो गया है उसे संघ में वापस बुला लेना ओसारणीय कर्म है।

निस्सारणीय कर्म- अपराधी भिक्षु को संघ से बाहर निकालने को निस्सारणीय कर्म कहते हैं।

उपसम्पदा - उच्चतर प्रव्रज्या को उपसम्पदा कहते हैं जिसमें सामणेर या सिक्खमाना को पूरी तरह भिक्षु या भिक्षुणी बनाया जाता है।

ज्ञप्ति कर्म- संघ का वह कर्म जिसमें सिर्फ ज्ञप्ति की (औपचारिक प्रस्ताव की) जरूरत होती है "कम्मवाचा" की नहीं।"कम्मवाचा" का अर्थ है भिक्षुसंघ की राय अर्थात भिक्षुसंघ का मत कि वे इसका अनुमोदन करते हैं या नहीं।

ज्ञप्ति द्वितीय कर्म- जब प्रस्ताव एक बार लाया जाता है तो इसे ज्ञप्ति द्वितीय कर्म कहते हैं।

ज्ञप्ति चतुर्थ कर्म- जब प्रस्ताव तीन बार लाया जाता है तो इसे ज्ञप्ति चतुर्थ कर्म कहते हैं।

प्रज्ञप्ति - विनय संबंधी नियम को कहते हैं।

अप्रज्ञापित - जिसके बारे में नियम नहीं बना है।

प्रज्ञापित - जिसके बारे में नियम बना है।

अनुप्रज्ञप्ति - मूल नियम में जो जोड़ा या हटाया जाय और इस तरह नियम में परिवर्तन किया जाय।

सन्मुख विनय - झगड़ा को शांत करने या मुकदमा का फैसला करने की प्रक्रिया। इसके लिए चार शर्तें पूरी होनी चाहिएं– १. संघ के सम्मुख फैसला हो, २. फैसला करने के लिए कोई मुकदमा हो, ३. विनय के नियमों के अनुसार फैसला हो, ४. दोनों पक्षों की उपस्थिति अनिवार्य हो।

स्मृति विनय - यह अर्हत से संबंधित है। जब कोई भिक्षु किसी अर्हत पर दोषारोपण करता है तो अर्हत संघ से अपील करता है कि वह उसे इस दोष से मुक्त करे चूंकि वह ऐसा दोष कर ही नहीं सकता है। संघ ऐसा करता है। इसे स्मृति विनय कहते हैं।

अमूढ़ विनय - अगर कोई पागल भिक्षु कोई अपराध करता है तो संघ इस बात को जान कर कि वह पागल है उसके अपराध की अनदेखी करता है।

प्रतिज्ञात-करण - यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें अपराधी भिक्षु की बात सुनकर संघ इस बात पर सहमत होता है कि अपराधी भिक्षु सिर्फ सच ही कह रहा है। तब उसको कोई और दण्ड अपराधानुसार दिया जाता है।

येभूयिसका - बहुमत से किसी झगड़े का फैसला करना। इसमें वैसे भिक्षु ही भाग लेते हैं जिनको संघ योग्य समझता है।

तस्सपापियसिका - जब कोई भिक्षु यह कहे जाने पर कि उसने पाराजिक अपराध किया है, स्वीकार करने में टाल-मटोल करता है तो संघ उसे औपचारिक रूप में पापी भिक्षु घोषित करता है।

तृणविस्तारक - आगे कडुवाहट न बढ़े इसलिए भिक्षुओं के दो दलों के बीच झगड़े का फैसला आरोप-प्रत्यारोप को ढँक कर आपसी सहमति से किया जाता है। इसे तृणविस्तारक कहते हैं।